प्रवचन-क्रम

31.............................................................स्थितप्रज्ञ, सत्पुरुष है
...........................................................................................2
32....................................................................तू आप है अपनी रोशनाई
..........................................................................................22
33...............................................................................एकला चलो रे
..........................................................................................43
34...............................................................प्यासे को पानी की पहचान
..........................................................................................62
35..........................................................................जीवन ही मार्ग है
..........................................................................................79
36............................................................................अंतश्चक्षु खेल
........................................................................................100
37...................................................उपशांत इंद्रियां और कुशल सारथी
........................................................................................122
38...............................................................................कुछ खुला आकाश
........................................................................................144
39.........................................................अश्रद्धा नहीं, आत्मश्रद्धा
........................................................................................163
40..........................................................................चरैवेति चरैवेति
........................................................................................183
41....................................................................शब्दः शून्य के पंछी
........................................................................................203

इकतीसवां प्रवचन

## स्थितप्रज्ञ, सत्पुरुष है

सब्बत्थ वे सप्पुरिसा चजान्ति न कामकामा लपयन्ति संतो।
सुखेन फुट्ठा अथवा दुखेन न उच्चावचं पंडिता दस्सयन्ति।। 74।।

न अत्तहेतु न परस्स हेतु
न पुत्तमिच्छे न धनं न रट्ठं।
न इच्छेय्य अधम्मेन समिद्धिमत्तनो
स सीलवा पन्जवा धम्मिको सिया।। 75।।

अप्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो।
अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति।। 76।।

एक प्राचीन कथा हैः जंगल की राह से एक जौहरी गुजरता था। देखा उसने राह में, एक कुम्हार अपने गधे के गले में एक बड़ा हीरा बांधकर चल रहा है। चकित हुआ! पूछा कुम्हार से, कितने पैसे लेगा इस पत्थर के? कुम्हार ने कहा, आठ आने मिल जाएं तो बहुत। लेकिन जौहरी को लोभ पकड़ा। उसने कहा, चार आने में दे दे, पत्थर है, करेगा भी क्या?

पर कुम्हार भी जिद बांधकर बैठ गया, छह आने से कम न हुआ तो जौहरी ने सोचा कि ठीक है, थोड़ी देर में अपने आप आकर बेच जाएगा। वह थोड़ा आगे बढ़ गया। लेकिन कुम्हार वापस न लौटा तो जौहरी लौटकर आया; लेकिन तब तक बाजी चूक गई थी, किसी और ने खरीद लिया था। तो पूछा उसने कि कितने में बेचा? उस कुम्हार ने कहा कि हुजूर, एक रुपया मिला पूरा। आठ आने में बेच देता, छह आने में बेच देता, बड़ा नुकसान हो जाता।

उस जौहरी की छाती पर कैसा सदमा लगा होगा! उसने कहा, मूर्ख! तू बिल्कुल गधा है। लाखों का हीरा एक रुपए में बेच दिया?

उस कुम्हार ने कहा, हुजूर मैं अगर गधा न होता तो लाखों के हीरे को गधे के गले में ही क्यों बांधता? लेकिन आपके लिए क्या कहें? आपको पता था कि लाखों का हीरा है और पत्थर की कीमत में भी लेने को राजी न हुए!

धर्म का जिसे पता है, उसका जीवन अगर रूपांतरित न हो तो उस जौहरी की भांति गधा है। जिन्हें पता नहीं है, वे क्षमा के योग्य हैं; लेकिन जिन्हें पता है, उनको क्या कहें?

दो ही संभावनाएं हैंः या तो उन्हें पता ही नहीं है; सोचते हैं, पता है। और यही संभावना ज्यादा सत्यतर मालूम होती है। या दूसरी संभावना है कि उन्हें पता है और फिर भी गलत चले जाते हैं।

वह दूसरी संभावना संभव नहीं मालूम होती। जौहरी ने तो शायद चार आने में खरीद लेने की कोशिश की हो लाखों के हीरे को, लेकिन धर्म के जगत में यह असंभव है कि तुम्हें पता हो और तुम उससे विपरीत चले जाओ।

सुकरात का बड़ा बहुमूल्य वचन हैः ज्ञान ही चरित्र है। जिसने जान लिया, वह बदल गया। और अगर जानकर भी न बदले हो, तो समझना कि जानने में कहीं खोट है।

अक्सर मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, जानते तो हम हैं, लेकिन जीवन बदलता नहीं। यह तो उन्होंने मान ही लिया है कि जानते हैं; अब जीवन बदलने की राह देख रहे हैं।

मैं उनसे कहता हूं, पहली बात ही बेबुनियाद है, दूसरे की प्रतीक्षा ही न करो। तुमने अभी बुनियाद ही नहीं रखी और भवन उठाने की कोशिश में लग गए हो। पहले फिर से सोचो, तुम जानते हो? क्योंकि ऐसा कभी होता नहीं कि जो जानता हो और बदल न जाए। बदलाहट जानने के पीछे अपने आप चली आती है। वह सहज परिणाम है, उसके लिए कुछ करना भी नहीं पड़ता।

अगर बदलने के लिए जानने के अतिरिक्त भी कुछ करना पड़े तो समझना कि जानने में कोई कमी रह गई थी। जितनी कमी हो, उतना ही करना पड़ता है। वह जो कमी

है, उसकी पूर्ति ही कृत्य से करनी पड़ती है। बोध की कमी कृत्य से पूरी करनी पड़ती है; अन्यथा बोध पर्याप्त है।
बुद्ध का सारा संदेश यही है कि बोध पर्याप्त है। ठीक से देख लेना-- जिसको बुद्ध सम्यक दृष्टि कहते हैं, जिसको महावीर ने सम्यक दर्शन कहा है-- ठीक से देख लेना काफी है, काफी से ज्यादा है। ठीक से देख लेना इतनी बड़ी आग है कि तुम उस में ऐसे जल जाओगे, जैसे छोटा तिनका जल जाए। राख भी न बचेगी। तुम बचते चले जाते हो, क्योंकि आग असली नहीं है। आग-आग चिल्लाते जरूर हो, लगी कहीं नहीं है। आग शब्द ही है तुम्हारे लिए, शास्त्र ही है तुम्हारे लिए, सत्य नहीं।
धर्म तुम्हारे लिए शास्त्र-ज्ञान है। जीवन की किताब से तुमने वे सूत्र नहीं सीखे हैं। और जो भी शास्त्र में भटका, वह भटका। पाप भी इतना नहीं भटकाता, जितना शास्त्र भटका देते हैं। क्योंकि पाप में हाथ तो जलता है कम से कम। पाप में चोट तो लगती है, घाव तो बनते हैं। शास्त्र तो बड़ा सुरक्षित है; न हाथ जलते हैं, न चोट लगती है, उलटे अहंकार को बड़े आभूषण मिल जाते हैं। बिना जाने जानने का मजा आ जाता है। सिर पर मुकुट बंध जाते हैं। बुद्ध ने कहा है, जो जान ले स्वयं से, वही ज्ञानी है; वही ब्राह्मण है।
जो शास्त्र से जाने, वह ब्राह्मण-आभास; उससे बचना। और स्वयं कभी अपने जीवन में ऐसे उपद्रव मत करना कि जीवन को सीधे न जानकर शास्त्रों में खोजने निकल जाओ। जीवन में तो कोई डुबकी लगाता रहे तो आज नहीं कल किनारा पा जाएगा।
शास्त्रों में जिन ने डुबकियां लगायीं, उनके सपनों का कोई भी अंत नहीं है।
पृथ्वी पर इतने लोग धार्मिक दिखाई देते हैं, इतने लोग जानते हुए मालूम पड़ते हैं। क्या कमी है जानने की? अंबार लगे हैं। लोगों ने ढेर लगा लिए हैं जानने के। और उनकी तरफ नजर करो तो उनका जानना उनके ही काम न आया।
जो जानना अपने आप काम न आ जाए, उसे जानना ही न जानना।

अब हम इन सूत्रों में उतरने की कोशिश करें। बुद्ध ने इन्हें जीवन से सीखा था। शास्त्र से सीखना होता तो राजमहल में शास्त्र स्वयं आ जाते। पंडितों से सीखना होता, पंडित तो हाथ जोड़े, कतार बांधे सदा ही खड़े थे।
बुद्ध जीवन में उतरे; महल की सीढ़ियों से नीचे आए। वहां गए, जहां कच्चा जीवन है। वहां गए, जहां जीवन असुरक्षित है। जहां जीवन अपनी पूरी आग में तपता है। जीवन से सीधा संपर्क साधा, तब उन्होंने कुछ जाना। वह जानना बुद्धि का न रहा फिर। वह जानना उनकी समग्रता का हो गया।
और जब तुम्हारे रोम-रोम से जानना निकलता है, तुम्हारी श्वास-श्वास में गंध आ जाती है जानने की, जब तुम्हें चेष्टा भी नहीं करनी पड़ती कि तुम जो जानते हो उसे याद रखो; जब वह तुम्हारा होना ही हो जाता है, जिसे भूलने का ही उपाय न होगा, जिसे तुम कहीं भूलकर रख आ न सकोगे, जो तुम्हारे भीतर की अंतर-ध्वनि हो जाती है, जो तुम्हारी आवाज हो जाती है, तभी--तब इन सूत्रों का अर्थ बिल्कुल और होता है। अगर इन्हें तुमने शास्त्र की दृष्टि से देखा तो इनके अर्थ बदल जाते हैं। समझने की कोशिश करो। पहला सूत्र हैः
"सत्पुरुष सभी त्याग देते हैं। वे कामभोगों के लिए बात नहीं चलाते। सुख मिले या दुख, पंडित विकार प्रदर्शित नहीं करते।"
इसे तुम बुद्धि से पढ़ सकते हो--जैसा कि पढ़ा गया है सदियों से--और तब भयंकर हानि हो गई है। क्योंकि बुद्धि से तुम पढ़ोगे तो यह समझ में आएगाः सत्पुरुष सभी त्याग देते हैं। तो जोर लगता है त्याग पर। साफ है, वक्तव्य में कहीं कोई भूल-चूक नहीं है, सीधा है।
"सत्पुरुष सभी त्याग देते हैं।"
तुम जब इसे सुनोगे, तुम जब इसे गुनोगे--जीवन से नहीं, शास्त्र से; जब शब्द ही तुम्हारे भीतर एक तरंग बनकर विचार का जन्म देगा तो तुम्हें भी समझ में आएगा--सब छोड़ना होगा, तब तुम सत्पुरुष हो सकोगे। बस, भूल हो गई।
बुद्ध कह रहे हैं, सत्पुरुष सब छोड़ देते हैं। बुद्ध यह नहीं कह रहे हैं कि जो सब छोड़ देते हैं, वे सत्पुरुष हो जाते हैं। बुद्ध यह कह रहे हैं, सत्पुरुष हो जाओ, सब छूट जाता है। छूटना, छाया की तरह परिणाम है। छूटना, छोड़ना नहीं है।

फिर से दोहराऊं, "सत्पुरुष सभी त्याग देते हैं।"
अब सोचने का यह है कि त्यागने के कारण सत्पुरुष होते हैं, या सत्पुरुष होने के कारण त्याग देते हैं?
अगर बुद्ध को यही कहना था कि सब छोड़ने वाले सत्पुरुष हो जाते हैं, तो ऐसा ही कहा होता कि जो सब छोड़ देते हैं, वे सत्पुरुष हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं, सत्पुरुष सब छोड़ देते हैं। सत्पुरुष होना, छोड़ने से कोई अलग बात है। छोड़ना पीछे-पीछे आता है, जैसे गाड़ी चलती है तो चाक के निशान बन जाते हैं। तुम चलते हो, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चली आती है। उसको लाना थोड़े ही पड़ता है। तुम लौट-लौटकर देखते थोड़े ही हो कि छाया कहीं छूट तो नहीं गई; आती है कि नहीं आती? तुम छोड़ना भी चाहो तो भी छोड़ न सकोगे। छाया आती ही है। छाया तुम्हारी है, जाएगी कहां?
त्याग ज्ञान के पीछे ऐसे ही आता है, जैसे तुम्हारे पीछे छाया आती है-- परिणाम है। और जिन्होंने शास्त्र से पढ़ा, उन्होंने समझा, कारण है। कारण नहीं है त्याग। त्याग कर-कर के तुम बिल्कुल सूख जाओ, हड्डियां हो जाओ, सत्पुरुष न होओगे। भोजन का अभाव तुम्हें पीला कर जाए, लेकिन सत-बोध से उठी हुई स्वर्णिम आभा उससे प्रगट न होगी।
जो-जो पीला है, सभी सोना नहीं है। रोग से भी आदमी पीला पड़ जाता है; उसे पीतल समझना। बोध से भी आदमी के जीवन में स्वर्ण आभा प्रगट होती है, पर वह बात और। उसके सामने सूरज लजाते हैं, शर्माते हैं।
तो ध्यान रखना, त्याग पर जोर बुद्ध पुरुषों का बिल्कुल नहीं है; और उनकी हर वाणी में त्याग का उल्लेख है। और जिन्होंने भी पंडितों की तरह शास्त्रों में खोजा है, वे एक अरण्य में खो गए। कितना सुगम है अरण्य में खो जाना!
"सत्पुरुष सभी कुछ त्याग देते हैं।"
कितनी जल्दी मन में ख्याल उठता है, सूत्र मिल गया। सभी कुछ त्याग दो, सत्पुरुष हो जाओगे। काश, इतनी आसान बात होती! तब तो जो भिखारी हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे सत्पुरुष हो गए होते। जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे सत्पुरुष हो गए होते। तुम भी छोड़ दोगे तो तुम्हारे पास भी कुछ नहीं होगा, लेकिन इससे तुम सत्पुरुष न हो जाओगे।
मैंने सुना है, एक भिखारी एक संदूक वाले की दुकान में चला गया। रंग-बिरंगे संदूक देखकर उसे बड़ा रस आया। वह घूम-घूमकर संदूक देखने लगा। दुकानदार भी दिखाने लगा। कोई और ग्राहक थे भी नहीं। ऐसे तो संदेह लगा कि यह क्या संदूक खरीदेगा! क्योंकि संदूक में रखने के लिए कुछ चाहिए भी। लेकिन कोई ग्राहक था भी नहीं, तो दुकानदार ने उसमें रस लिया, उसे घुमाया, दिखाया। सब देखकर जब वह चलने लगा तो उसने कहा, खरीदेंगे नहीं? उसने कहा, ये किस काम में आते हैं? वह तो रंग, आकृतियां देखकर अंदर चला आया था। उसने पूछा, ये किस काम में आते हैं? उस दुकानदार ने कहा, हद हो गई। कपड़े-लत्ते रखने के काम आते हैं, खरीद लो, कपड़े-लत्ते रखना। तो उसने कहा, कपड़े-लत्ते इसमें रख लेंगे तो पहनेंगे क्या, तेरी ऐसी-तैसी? और तो कुछ है ही नहीं। यही कपड़े-लत्ते हैं, जो पहने हुए हैं।
लेकिन ऐसी अवस्था में भी तो तुम कहीं पहुंच नहीं जाते। नग्न होकर भी
तो तुम कहीं नहीं पहुंच जाते। तुम्हारे होने में, तुम्हारे पास क्या है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम दीन हो तो दीन हो, तुम धनी हो तो दीन रहते हो। तुम्हारे पास चीजें हों तो तुम वही हो, चीजें हट जाएं तो तुम वही हो।
तुम्हारा होना चीजों पर निर्भर नहीं है।
और तुम्हारे तथाकथित त्यागी भी यही समझाते हैं और तथाकथित भोगी भी यही समझाते हैं। दोनों का भरोसा चीजों में है। भोगी कहते हैं, चीजों को बढ़ाओ तो तुम्हारी आत्मा बढ़ जाएगी, तुम्हारा सुख बढ़ेगा, आनंद बढ़ेगा। त्यागियों की भाषा भी यही है। वे कहते हैं, चीजों को घटाओ तो तुम्हारी आत्मा बढ़ेगी।
अगर दोनों में ही चुनना हो तो भोगी थोड़ा गणित-पूर्ण मालूम होता है। वह कहता है, चीजों को बढ़ाओ तो तुम्हारी आत्मा बढ़ेगी। त्यागी कहता है, चीजों को घटाओ तो तुम्हारी आत्मा बढ़ेगी। अगर तर्क से ही चलना हो तो भोगी ही ठीक

कहता होगा। लेकिन भोगी का तर्क तुम्हें ठीक नहीं लगता, क्योंकि तुमने चीजें बढ़ाकर देख लीं और आत्मा नहीं बढ़ी। और त्यागी का तर्क ठीक लग जाता है--अपरिचित है। तुम सोचते हो, बढ़ाकर देख लिया, आत्मा नहीं बढ़ी, अब घटाकर देख लें। तो लोग त्याग में लग जाते हैं।
न तो चीजों के बढ़ने से बढ़ती है आत्मा, न चीजों के घटने से बढ़ती है आत्मा; आत्मा का चीजों से कुछ संबंध नहीं है। तुम्हारी छाया के बढ़ने से तुम बड़े होते हो? या कि तुम्हारी छाया के छोटे होने से तुम छोटे होते हो? मैंने सुना है, एक दिन सुबह एक लोमड़ी अपनी मांद के बाहर निकली। सुबह
का उगता सूरज था, बड़ी लंबी छाया बनी लोमड़ी की, दूर तक जाती थी। उसने सोचा, आज तो बड़ी मुश्किल हुई। नाश्ते के लिए कम से कम एक ऊंट की जरूरत पड़ेगी। इतनी बड़ी छाया! इतनी बड़ी मैं हूं। ऊंट से कम में काम न चलेगा।
वह ऊंट की तलाश में लग गई। दिनभर खोजती रही, भर दोपहरी में जब सूरज सिर
पर आ गया, अभी भी भूखी थी। ऊंट तो मिला न था, मिल भी जाता तो भी करती क्या? उसने लौटकर फिर छाया देखी, छाया सिकुड़कर बिल्कुल पैरों के पास आ गई थी।
उसने कहा, अब तो चींटी भी मिल जाए तो भी चल जाएगा।
छाया से तुम चलोगे तो यही गति होगी। न तो छाया के बड़े होने से तुम बड़े होते, न छाया के छोटे होने से तुम छोटे होते। परिग्रह यानी छाया। वस्तुएं यानी छाया। तुम्हारा मकान, तुम्हारी धन-दौलत, यानी छाया।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि भोगी का तर्क तो गलत है ही, त्यागी का तर्क
भी गलत है। बुद्ध पुरुषों ने यह तर्क नहीं दिया। बुद्ध पुरुष ऐसे तर्क देकर बुद्धू बनेंगे क्या? यह तो बात ही बुनियादी रूप से गलत है। यह तो आत्मा को वस्तुओं से गौण कर देना हुआ। अगर वस्तुओं के घटने-बढ़ने से आत्मा बढ़ती-छोटी होती हो तो आत्मा गौण हो गई, वस्तुएं प्रमुख हो गयीं।
न, बुद्ध पुरुषों ने कुछ और ही बात कही है। चूक हो गई है सुनने में, शास्त्र पढ़ने में।
"सत्पुरुष सभी त्याग देते हैं।"
इसलिए नहीं कि त्याग सत्पुरुष होने का मार्ग है, बल्कि जब तुम देखना शुरू करते हो, जब तुम्हारे भीतर सदबुद्धि का जन्म होता है, जब तुम ध्यान की अवस्था को उपलब्ध होते हो, जब तुम्हारे भीतर तरंगें विचारों की थोड़ी शांत होती हैं, आंखों की धूल थोड़ी झड़ती है, चेतना के बादल थोड़े हटते हैं, तुम्हारे भीतर थोड़ी जगह होती है जहां जागरण हो सके, भीतर का दीया थोड़ा जलता है, अंधेरा थोड़ा कटता है, वहां तुम अचानक देखते हो कि तुम जिन चीजों को मूल्य दे रहे थे, उनमें कोई भी मूल्य नहीं। जिन चीजों को तुमने अपना सारा जीवन समर्पित किया था, उन चीजों में कोई भी मूल्य नहीं। तुम छाया के लिए आत्मा गंवा रहे थे। मरते दम तक लोग गंवाए चले जाते हैं छाया के लिए आत्मा। मरते दम तक आदमी भिखारी बना रहता है। वस्तुओं की मांग जारी रहती है।
मुझे पीने दे पीने दे कि तेरे जामे-लाली में
अभी कुछ और है कुछ और है कुछ और है साकी
आदमी गिड़गिड़ाए ही चला जाता है कि अभी तेरे शराब के प्याले में थोड़ी और बाकी है, थोड़ी और बाकी है।
मुझे पीने दे पीने दे कि तेरे जामे-लाली में
अभी कुछ और है कुछ और है कुछ और है साकी
जिंदगी खोती चली जाती है, मौत की मूर्च्छा आने लगी, मौत की नींद घेरने लगी। और आदमी चिल्लाए चला जाता है, मुझे पीने दे, मुझे पीने दे।
मरते हुए आदमी को देखो। अभी भी जार-जार आंसू रो रहा है--उस जिंदगी के लिए, जिसमें कुछ भी न पाया; उस भाग-दौड़ के लिए, जो कहीं न पहुंचाई। और दौड़ना चाहता है। अगर कहीं कोई परमात्मा हो तो और मांग लेना चाहता है--चार दिन और मिल जाएं। जो मिले थे दिन, वे ऐसे ही गंवाए। और भी मिल जाएंगे तो ऐसे ही गंवाएगा। जिंदगी को हम छाया के मंदिरों में समर्पित किए हैं।
बहे जाते हो रवानी के साथ
उलटे पतवार घुमाओ तो जानें
संभलकर कदम रखने वाले बहुत हैं

पाने को सब कुछ गंवाओ तो जानें
लेकिन सब कुछ गंवाने के लिए वही राजी होता है, जिसे सब कुछ में कुछ भी नहीं है, यह दिखाई पड़ता है। हीरा उसी दिन तुम्हारे हाथ से छूटकर गिर जाता है, जिस दिन कंकड़ दिखाई पड़ता है। कंकड़ उसी क्षण उठकर आत्मा में विराजमान हो जाता है, जिस क्षण हीरा मालूम पड़ता है। अंततः तुम्हारा बोध निर्णायक है। तुम मूल्य देते हो, उठा लेते हो। तुम मूल्य नहीं देते, गिर जाता है। सारी बात तुम्हारे बोध की है, तुम्हारी दृष्टि की है, तुम्हारी प्रतीति की है।
चारों तरफ करोड़ों लोगों की भीड़ है, वह छाया के सहारे चल रही है। उसी में तुम पैदा होते हो। बचपन से तुम भी उसी की भाषा सीखने लगते हो। फिर इस भीड़ में एक छोटा सा तबका है त्यागियों का भी; वह भी इसी भीड़ में है। भला भीड़ पैर के बल चलती हो, वे सिर के बल शीर्षासन करते खड़े हैं, लेकिन भीड़ में हैं। भला भीड़ पूरब को जाती हो, वे पश्चिम को जाते हैं, लेकिन भीड़ में हैं। कुछ भेद नहीं है उनमें। भाषा उनकी भी वही है।
जिंदगी आधी से ज्यादा गुजर जाती है, जब तुम्हें थोड़ा सा समझ में आना शुरू होता है कि यह तो कुछ सार न हुआ। कमाया, वह कुछ गंवाया जैसा लगता है। जो पाया, वह सिर्फ मुंह में एक कडुवा स्वाद छोड़ गया है। कोई प्रतीति नहीं होती उपलब्धि की। ऐसा नहीं लगता कि जीवन की नियति पूरी हुई। ऐसा नहीं लगता कि हम कहीं पहुंचे, कोई मंजिल करीब आई। कोई बीज टूटा, वृक्ष बना, ऐसा मालूम नहीं होता। कोई दीया जला, रोशन हुआ, ऐसा मालूम नहीं होता। हाथ खाली के खाली लगते हैं।
तो स्वभावतः उस क्षण तुम्हें विपरीत तर्क पकड़ में आना शुरू होता है
कि भोगकर देख लिया, गलत था यह, संसारी गलत थे, अब त्यागियों की सुनना शुरू करते हो। आधी जिंदगी लोग संसार में गंवा देते हैं, कभी अगर होश भी आया तो आधी फिर संन्यास में गंवा देते हैं। तर्क वही है। पहले वस्तुएं इकट्ठी करते थे, अब वस्तुएं छोड़ते हैं; लेकिन नजर वस्तुओं पर लगी होती है।
नजर का भीतर जाना जरूरी है।
बहे जाते हो रवानी के साथ
उलटे पतवार घुमाओ तो जानें
और जब नजर भीतर की तरफ चलती है तो उलटे पतवार घूमते हैं। जब तक नजर बाहर की तरफ जाती है, तब तक तुम भीड़ के साथ चल रहे हो। तब तक तुम हो ही नहीं, भीड़ है। तुम नहीं हो, भीड़ है अंधों की, भीड़ है बहरों की, भीड़ है मुर्दों की; तुम नहीं हो। तब तक तुम धक्के-मुक्के में चलते चले जाते हो।
तुमने कभी मेलों में देखा कि अगर भीड़ की रवानी में पड़ जाओ तो तुम न भी जाना चाहो तो भी चलना पड़ता है, नहीं तो कुचल दिए जाओगे। सारी भीड़ जा रही है, भागी जा रही है, तुम्हें भी भागना पड़ता है। अगर खड़े होओगे तो गिरोगे। उलटे जाना मुश्किल है, खड़े होना मुश्किल है, चलना ही एकमात्र सहारा मालूम पड़ता है। इसलिए नहीं कि तुम चलना चाहते हो।
हजारों लोगों के भीतर झांककर मैंने पाया कि वे चलना नहीं चाहते, थक गए हैं। लेकिन चारों तरफ से भीड़ है--पत्नी है, बच्चे हैं, पति है, मां है, बाप है, मित्र है, परिवार है, दुकान है, बाजार है--सारी भीड़ भागी जा रही है। सारा संसार भागा जा रहा है। उस भागने के साथ न भागो तो कुचल दिए जाओगे।
बहे जाते हो रवानी के साथ
उलटे पतवार घुमाओ तो जानें
जिंदगी में जो पहली महत्वपूर्ण घटना घटती है किसी व्यक्ति के, वह है
कि आंख बंद हो और भीतर की तरफ पतवार घूमने लगे। चेतना की नाव भीतर की तरफ बहने लगे। संसारी भी भागा जा रहा है बाहर की तरफ--पूरब; तुम्हारा त्यागी भी भागा जा रहा है बाहर की तरफ--पश्चिम; धार्मिक व्यक्ति न तो पूरब जाता है, न पश्चिम; धार्मिक व्यक्ति भीतर की तरफ जाता है।
उलटे पतवार घुमाओ तो जानें
आंख बंद करता है, ताकि वस्तुओं का संसार खो जाए। और उसको जानने में लग जाता है, उसकी खोज में लग जाता है, जो मैं हूं। और वहां ऐसे हीरे हैं, वहां

ऐसे मोती हैं, वहां ऐसे स्वर्ण की वर्षा है, कि अगर बाहर के स्वर्ण व्यर्थ हो जाएं, आश्चर्य नहीं।
आश्चर्य तो तभी होगा कि जिसने भीतर झांका हो और उसे बाहर के मूल्य अभी
भी मूल्य बने रहें। यह असंभव है। जिसने एक बार भीतर झांका, जिसने बड़ी संपदा में अनुभूति पा ली, बाहर की संपदाएं अपने आप थोथी और व्यर्थ हो जाती हैं। तुलना पहली दफा पैदा होती है। पहली बार रोशनी मिलती है तो तुम जान पाते हो कि बाहर अंधेरा है। इसके पहले छोड़ने की बात ही गलत है।
भीतर रोशन हो जाने का नाम सत्पुरुष हो जाना है।
"सत्पुरुष सभी छंद-राग आदि त्याग देते हैं।"
जब भीतर का छंद बजने लगे तो कौन बाहर के छंदों का उपद्रव लेता है? जब भीतर की वीणा बजने लगे तो बाहर के सब स्वर शोरगुल हो जाते हैं।
श्री अरविंद ने कहा है कि जिसे पहले मैंने प्रकाश जाना था, भीतर के प्रकाश को जानकर पाया कि वह तो अंधेरा था। और जिसे मैंने पहले जीवन जाना था, भीतर के जीवन को जानकर पाया कि वह तो मृत्यु का ही बसेरा था। जिसे मैंने पहले अमृत जाना था, भीतर झांककर पाया कि वह तो जहर था। मैं किसके धोखे में पड़ा था?
पहली बार जीवन में क्रांति का सूत्रपात होता है, जब तुम भीतर की तरफ झांकते हो।
उलटे पतवार घुमाओ तो जानें
चेतना की सहज धारा बाहर की तरफ है, क्योंकि तुम उनके बीच पैदा होते हो,
जो सब बाहर की तरफ बहे जा रहे हैं। बच्चा तो अनुकरण करता है।
और इसलिए जीवन में बड़ी से बड़ी बात बुद्ध ने कही है, कल्याण मित्र खोज लेना है। कल्याण मित्र का अर्थ हैः ऐसे लोग, जो भीतर की तरफ बहे जा रहे हैं, जिन्होंने उलटी पतवार चलानी शुरू की। उनके पास बैठकर शांति में, मौन में, उनके चप्पुओं की भीतर जाती आवाज को सुनकर तुम्हारे भीतर भी भीतर जाने का भाव उदित होगा। तुम्हारे भीतर भी कोई सोई आकांक्षा जगेगी।
जैसे किसी पिंजड़े में बंद पक्षी को, आकाश में उड़ते पक्षी को देखकर उड़ने की आकांक्षा का जन्म होता है। पंख फड़फड़ाता है। याद आती है, मैं भी उड़ सकता था। यह आकाश की नीलिमा मेरी भी हो सकती थी। यह ओर-छोर हीन विस्तार मेरा ही था। पहली दफा कटघरा दिखाई पड़ता है। पहली बार चारों तरफ के सींखचे दिखाई पड़ते हैं। कल तक तो वह इसे घर ही समझा था, इसी में उछल-कूद लेता था। इसे ही जीवन समझा था, इसी में थोड़ी चहलकदमी कर लेता था, शोरगुल कर लेता था। समझा था, यही सब है।
कल्याण मित्रों के पास... बुद्ध ने भिक्षुओं का संघ बनाया, सिर्फ इसीलिए; कोई संगठन के लिए नहीं। संगठन से धर्म का क्या लेना-देना! संगठन तो धर्म का विरोधी है। बुद्ध ने भिक्षुओं का संघ बनाया--एक परिवार, जिसमें कारागृह में बंद व्यक्तियों को कारागृह के बाहर के पक्षियों का थोड़ा साथ मिल जाए। इसको हमने सत्संग कहा है। ताकि किसी और को देखकर तुम्हें भी अपने घर की याद आ जाए।
तुमने कभी ख्याल किया! अगर तुम परदेश में हो, वर्षों से परदेश में हो, अपनी भाषा भी नहीं बोल सकते, भूल ही गए हो, और अचानक किसी दिन तुम्हें अपने देश का कोई वासी मिल जाए, कैसे गले मिलकर तुम मिलते हो! कोई परिचय भी नहीं है इससे। इसे तुमने कभी देखा भी न था पहले। अपने देश में भी तुमने इसे कभी न जाना था। लेकिन वही रूप-रंग, वही आंख, वही ढंग--तत्क्षण तुम्हारी भाषा लौट आती है। तुम कैसे घुल-मिलकर इससे बात करते हो, जैसे जन्मों-जन्मों का बिछुड़ा कोई प्यारा मिल गया हो। अपरिचित आदमी है, लेकिन तुम्हारे देश का है, तुम्हारी भाषा बोलता है।
ठीक ऐसी ही घटना घटती है, जब तुम किसी सत्संग की धारा में पड़ जाते हो। तुम्हें अपने देश के लोग मिल गए। तुम्हें घर की तरफ लौटते लोग मिल गए। इनकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर सोई हुई यादों को जगा देगी। तुम्हारे पंख फड़फड़ाने लगेंगे। तुम्हारे जीवन में तुलना पैदा होगी। और तुम अब तक जिसे जीवन कहते थे, वह व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा। लेकिन थोड़ा स्वाद चाहिए। भीतर का स्वाद मिल जाए, बाहर व्यर्थ हो जाता है।

निश्चित ही सत्पुरुष सभी छंद-राग छोड़ देते हैं। भीतर का छंद मिल गया, छंदों का छंद मिल गया।
जिंदगी रक्स में है दोश पे मैखाना लिए
तिश्नगी खुद है छलकता हुआ पैमाना लिए
और जब जिंदगी खुद नाच रही हो भीतर!
जिंदगी रक्स में है दोश पे मैखाना लिए
और अपने कंधे पर ही मयखाना लिए जिंदगी खुद भीतर नाचती हो!
तिश्नगी खुद है...
और प्यास खुद हाथों में छलकता पैमाना लिए खड़ी हो, फिर बाहर की मधुशालाएं, फिर बाहर के नृत्य धीरे-धीरे दूर होते जाते हैं, दूर की आवाज होते जाते हैं। धीरे-धीरे, जैसे तारों जितना फासला तुम्हारे और उनके बीच हो जाता है। वह आवाज फिर तुम तक नहीं पहुंचती।
पहुंचती है अभी, क्योंकि तुम्हारा रस है वहां। जहां तुम्हारा रस है, वही तुम्हें सुनाई पड़ जाता है। जब रस भीतर बहने लगता है, बाहर के छंद खो जाते हैं, बाहर का राग-रंग खो जाता है। लेकिन ध्यान रखना, यह परिणाम है।
सत्पुरुषत्व को पाना कारण है, त्याग परिणाम है।
स्वयं को पाना कारण है, संन्यास परिणाम है।
संन्यास से किसी ने कभी स्वयं को नहीं पाया। स्वयं को पाने की यात्रा शुरू होती है तो संन्यास घटने लगता है।
"वे कामभोगों के लिए बात नहीं चलाते।"
जो आत्मभोग में लगा हो, वह क्यों कामभोग की बात चलाए? जिसका अपने से मिलन हो रहा हो, जो उस परम आनंद में डूब रहा हो, जिसके कूल-किनारे खोते जा रहे हों, जिसकी सरिता सागर में गिर रही हो, अब वह क्या बातें करे किनारों की? अब बूंद क्यों चिंतित हो अपनी सीमाओं के लिए? लेकिन सम्हलकर चलना; कामभोग छोड़ने से कोई आत्मभोग को उपलब्ध नहीं होता। आत्मभोग को उपलब्ध होने से कामभोग छूट जाते हैं।
इसे सदा याद रखना; क्योंकि दूसरा तर्क बड़ा सुविधापूर्ण है। और तुम्हें लगता है, अभी कर सकते हो। कामभोग छोड़ना है? छोड़ सकते हो। पकड़ा तुमने है, छोड़ भी सकते हो। पकड़ने से कुछ नहीं पाया, छोड़ने से भी कुछ न पाओगे। पकड़ने से दुख पाया, छोड़ने से भी दुख पाओगे। क्योंकि दुख तो उस बाहर जाती दृष्टि में ही समाया हुआ है।
तो मैं यहां भोगियों को दुखी देखता हूं और त्यागी होने के लिए आतुर देखता हूं। त्यागियों को दुखी देखता हूं और भोगी होने के लिए आतुर देखता हूं। जो स्थिति तुम्हारी है, वहीं दुख मालूम होता है।
इसे तुम ऐसा समझो तो आसान होगा। तुम अकेले थे, तब भी तुम दुखी थे। तब तुम किसी का साथ खोजते थे, विवाह कर लें, कोई संगी-साथी मिल जाए। फिर विवाह कर लिया, अब तुम विवाहित होकर दुखी हो। अब तुम सोचते हो, इससे तो अकेले ही होना अच्छा था। पता ही न था कि कितना सुख था अकेले होने में। मगर तुम यह मत सोचना कि संयोग से पत्नी मर जाए तो तुम बड़े सुखी हो जाओगे। पत्नी के मरते ही तुम अचानक दूसरी पत्नी की तलाश करने लगोगे। दो-चार दिन शायद तुम राहत ले लो, विश्राम कर लो, थक गए होओ ज्यादा, लेकिन जल्दी ही तुम पाओगे कि अकेले होने में बड़ी पीड़ा है। फिर तुम दो होना चाहते हो।
तुम्हारे भीतर भी त्याग और भोग का खेल चलता रहता है। अलग-अलग व्यक्ति
ही त्याग और भोग का खेल करते हैं, ऐसा नहीं। तुम्हारे भीतर, प्रत्येक के भीतर त्याग और भोग का खेल साथ-साथ चलता रहता है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
आत्म-जागरण न तो त्याग है, न भोग है; क्योंकि आत्म-जागरण बाहर से मुक्त होने की कला है। आत्म-जागरण स्व में ठहरने की, स्वस्थ होने की कला है। सत्पुरुष, बुद्ध उसी को कहते हैं, जिसने अपने होने में थिरता पा ली, जिसकी लौ अकंप जलने लगी।
"सुख मिले या दुख, पंडित विकार नहीं प्रदर्शित करते।"
अभी तो दुख मिलेगा तो तुम कैसे प्रगट करने से बचोगे अपनी प्रतिक्रिया? दुख मिलेगा, तुम दुखी हो जाओगे; चाहे तुम छिपाने की कोशिश भी

करो। यह भी हो सकता है कि दूसरे को तुम पता भी न चलने दो, पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; तुम दुखी हो जाओगे। सुख मिलेगा, तुम सुखी हो जाओगे।
अभी ऐसा होता है, जो भी घटना घटती है, उसके साथ तुम्हारा तादात्म्य हो जाता है। तुम दूर नहीं रह पाते। दुख आता है तो तुम दुख के साथ एक हो जाते हो। तुम कहने लगते हो, मैं दुखी। कहो न कहो, भीतर तुम जानने लगते हो, मैं दुखी। सुख आता है, तुम सुख के साथ एक हो जाते हो। तुम कहने लगते हो, मैं सुखी। सुख आता है, तुम्हारी चाल बदल जाती है। दुख आता है, तुम्हारी चाल बदल जाती है। दुख आता है, तुम ऐसे चलने लगते हो, जैसे मुर्दा। सुख आता है, तुम ऐसे नाचने लगते हो, जैसे जीवंत। अभी सुख और दुख तुम्हें पूरा का पूरा घेर लेते हैं। अभी तुम्हारा होना सुख-दुख के पार नहीं है, सुख-दुख के भीतर है। सत्पुरुष वही है, जिसके पास अपना होना है, प्रामाणिक होना है। सुख होता है तो वह जानता है कि सुख आया, लेकिन मैं सुख नहीं हूं। दुख आता है तो वह जानता है, दुख आया, लेकिन मैं दुख नहीं हूं। उसकी चाल में कोई भी फर्क नहीं पड़ता। उसके भीतर के छंद वैसे ही बने रहते हैं। उसके भीतर कुछ भी भेद नहीं पड़ता। वह दर्पण की भांति होता है। दर्पण के सामने कोई न रहे तो दर्पण खाली होने में भी प्रसन्न है। दर्पण के सामने कोई सुंदर छबि आ जाए तो भी ठीक, कोई कुरूप व्यक्ति आ जाए तो भी ठीक। दर्पण इससे कुछ विचलित नहीं होता। दर्पण अपने होने में थिर होता है।
सुबह होती है, शाम होती है। ऐसे ही दुख आते हैं, सुख आते हैं, चले जाते हैं। तुम्हारे पास से गुजरते हैं, रास्ते पर चलने वाले राहगीर हैं, तुम नहीं हो। जिसे जैसे ही इस बात का स्मरण आना शुरू हुआ कि मैं पृथक हूं सारे अनुभवों से, अनुभव मात्र मुझसे अलग हैं, मैं साक्षी हूं, उसके जीवन में सत्पुरुष की सीढ़ी लगी।
"सुख मिले या दुख, पंडित विकार नहीं प्रदर्शित करते।"
यह पंडित की परिभाषा हुई, कि बाहर कुछ भी घट जाए, उनके भीतर आकाश वैसा
का वैसा निराकार बना रहता है; कोई भेद नहीं आता। बादल आ जाएं आकाश में तो आकाश निर्विकार रहता है। बादल चले जाएं तो निर्विकार रहता है। आकाश को कुछ छूता ही नहीं--अस्पर्शित!
इसलिए ठीक सत्पुरुष संसार से भयभीत नहीं होगा। संसार उसे कलुषित नहीं
कर सकता। वह जंगल में जाकर छिप न जाना चाहेगा। अगर जंगल में पहले छिप भी गया होगा तो वापस लौट आएगा। क्या फर्क पड़ता है अब? जंगल हो कि बस्ती हो, मरघट हो कि बाजार हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस दिन तुम ऐसे हो जाते हो कि बाहर के द्वंद्व तुम्हें भीतर खंडित नहीं करते... ।
तुमने कभी ख्याल किया? पानी पर लकीर खींचो, खिंचती है, लेकिन खिंचते
ही मिट जाती है। रेत पर लकीर खींचो, खिंचती है, थोड़ी देर टिकती है; जब हवाएं आएंगी, कोई मिटाएगा, तब मिटेंगी। पत्थर पर लकीर खींचो, टिक जाती है; सदियों तक टिकी रहती है। आकाश में लकीर खींचो, खिंचती ही नहीं; मिटने का सवाल ही नहीं है।
इसी तरह के चार तरह के लोग होते हैं। पत्थर की तरह लोग, जिन पर कुछ खिंच जाता है तो मिटता ही नहीं, मिटाए नहीं मिटता। क्रोधित हो गए तो जिंदगीभर क्रोध को खींचते रहते हैं। किसी से दुश्मनी बन गई तो बन गई। अपने बच्चों को भी दे जाएंगे दुश्मनी वसीयत में, कि हम नहीं निपटा पाए, तुम निपटा लेना। हम नहीं मार पाए दुश्मन को, तुम मार डालना।
एक आदमी मर रहा था तो उसने अपने बेटों को अपने पास बुलाया और कहा कि मरते आदमी की इच्छा पूरी करो। तुम्हारा बाप--मैं मर रहा हूं। छोटी सी इच्छा है, वचन दे दो। बड़े बेटे तो जानते थे कि यह आदमी खतरनाक है। बाप हो तो क्या? यह जरूर कोई उपद्रव करवा जाएगा। और मरते को वचन दे दिया, पीछे पूरा न किया, वह भी ठीक न रहेगा। तो वे तो चुप रहे सिर झुकाए। छोटे बेटे को कुछ ज्यादा अंदाज न था बाप का; दूर पढ़ता था विश्वविद्यालय में। वह पास आ गया। उसने कहा कि आप जो कहें। बाप ने उसके कान में कहा कि बस, एक इच्छा रह गई है, कि जब मैं मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े करके पड़ोसियों के घर में डाल देना और पुलिस में रिपोर्ट कर देना कि जिंदा-जिंदा तो इन लोगों ने हमारे बाप को सताया ही, मरकर भी उसकी लाश के टुकड़े कर दिए। उसने अपने बेटे से कहा कि

मेरी आत्मा स्वर्ग की तरफ जाती हुई बड़ी प्रसन्न होगी यह देखकर कि पड़ोसी थाने की तरफ बंधे चले जा रहे हैं।
लोग अपनी दुश्मनियां, अपनी घृणाएं, अपने क्रोध वसीयत में दे जाते हैं। खुद तो जीवनभर जलते ही हैं, पीढ़ी दर पीढ़ी दुश्मनियां चलती हैं, शत्रुता चलती है। पारिवारिक, पुश्तैनी दुश्मनियां चलती हैं। लकीर जैसे पत्थर पर खिंच जाती है। यह अधिकतम जड़ स्थिति है चैतन्य की। जैसे तुम बिल्कुल ही सोए हुए हो, तुम्हें होश ही नहीं है।
फिर कुछ लोग हैं, जो रेत की तरह हैं--खिंचती है; आज खिंचती है, कल मिट जाती है। कुछ देर चलती है, घंटे-घड़ी, फिर शांत हो जाते हैं, ठीक हो जाता है। फिर कुछ लोग हैं, छोटे बच्चों की तरह, खींची भी नहीं--खिंचती है--इधर तुमने खींची भी नहीं, मिट जाती है। बच्चा क्रोधित होता है, उछल-कूद लिया, शोरगुल मचा लिया, भूल गया। अभी घड़ीभर पहले दूसरे बच्चे से कह रहा था, जिंदगीभर तुम्हारा मुंह न देखूंगा; और फिर पांच मिनट बाद दोनों साथ हाथ में हाथ डाले बैठे गपशप कर रहे हैं। बात आई-गई हो गई--पानी की तरह।
फिर सत्पुरुष हैं, जिनको हम संत कहें--आकाश की तरह। कुछ खिंचता नहीं; मिटने का सवाल ही नहीं है। संतत्व बच्चों से भी ज्यादा निर्दोष है।
जीसस से कोई ने पूछा, कौन तुम्हारे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश के अधिकारी होंगे? उन्होंने चारों तरफ नजर डाली उस भीड़ में और एक छोटे बच्चे को उठाकर कंधे पर रख लिया और कहा, जो इस बच्चे की भांति होंगे।
लेकिन बच्चे से भी आगे की बात है। बच्चे की भांति तो होना ही पड़ेगा, लेकिन बच्चे से भी ज्यादा निर्दोष होना पड़ेगा--आकाश की भांति।
"सुख मिले या दुख, पंडित विकार प्रदर्शित नहीं करते।"
साधारण आदमी तो ऐसे जीता है, जैसे कभी कोई छिछला झरना देखा तुमने? कितना शोरगुल! गहराई कुछ भी नहीं, शोरगुल बहुत। कभी तुमने यह ख्याल किया कि जितनी गहराई बढ़ जाती है, उतना ही शोरगुल कम हो जाता है। अगर नदी बहुत गहरी हो तो शोरगुल होता ही नहीं। अगर नदी बहुत-बहुत गहरी हो तो पता ही नहीं चलता कि चलती भी है! चाल भी इतनी धीमी और शांत हो जाती है।
कह रहा है शोरे-दरिया से समंदर का सुकूत
जिसका जितना जर्फ है उतना ही वो खामोश है
जितनी जिसकी गहराई है, उतना ही वह खामोश है।
तुम जब अपने भीतर जाओगे, तब तुम्हारी गहराई बढ़ेगी। तुम बाहर रहोगे तो तुम छिछले रह जाओगे, उथले रह जाओगे। बाहर रहने का अर्थ ही है कि तुम गहराई को छू ही न पाओगे। तुम छोटे-मोटे छिछले झरने रह जाओगे, तुम कभी सागर न हो पाओगे। और तुम्हारी संभावना थी प्रशांत महासागर हो जाने की; कि तुम एक ऐसी गहराई पा लो जो असीम है; जो शुरू तो होती है और अंत नहीं होती।
कह रहा है शोरे-दरिया से समंदर का सुकूत
जिसका जितना जर्फ है उतना ही वो खामोश है
अपने को थोड़ा देखो; तुम्हारी जिंदगी कैसी ऊपर-ऊपर, सतह-सतह पर है! जरा- जरा सी बातें कितना दुख दे जाती हैं! जरा-जरा सी बातें तुम्हें कैसा मस्त कर जाती हैं!
तुमने इंसान की फितरत पे कभी गौर किया
मये-सरजोश अभी, दुर्दे-तहे-जाम अभी
अभी तो लगता है कि उफनता तूफान है मस्ती का; जैसे शराब की प्याली ऊपर
से बही जा रही हो। और क्षणभर बाद खाली प्याली, जिसमें सिर्फ तलहट बची है। तुमने इंसान की फितरत पे कभी गौर किया
मये-सरजोश अभी, दुर्दे-तहे-जाम अभी
क्षण में ऐसा होता रहता है, जैसे हवा में डोलता एक पत्ता हो। तुम्हारा कोई व्यक्तित्व नहीं। तुम्हारी कोई आत्मा नहीं। तुम हो ही नहीं अभी। अभी तुम हवाओं के थपेड़े हो। अभी नदी की लहरें तुम्हें जहां ले जाती हैं, तुम चले जाते हो; बहते हुए सूखे पत्ते हो। अभी अस्तित्व में तुम्हारी कोई जड़ें नहीं। अन्यथा जिंदगी तुम्हें इतनी आसानी से न हिला पाएगी।
और जड़ें जिसे खोजनी हों, उसे भीतर जाना पड़ेगा। क्योंकि तुम भीतर से ही जुड़े हो परमात्मा से, सत्य से, अस्तित्व से। वृक्षों के तो पैर जमीन में

गड़े हैं, तुम्हारे प्राण परमात्मा में गड़े हैं। अपने भीतर तुम जितने गहरे जाओगे, उतना ही तुम पाओगे कि बाहर की बातें अब कम, और कम, और कम प्रभावित करती हैं।
एक घड़ी ऐसी आती है कि तुम पर ही घटना घटती है और तुम ऐसे खड़े देखते रहते हो, जैसे किसी और पर घट रही है--बस, सत्पुरुष का जन्म हुआ। तुम्हारे ही घर में आग लगी है और तुम खड़े देख रहे हो, जैसे किसी और के घर में आग लगी है। तुम्हारी ही पत्नी चल बसी है और तुम खड़े ऐसे हो, जैसे किसी और की पत्नी चल बसी। सब तुम्हारा लुट गया और तुम खड़े ऐसे हो, जैसे किसी और का लुट गया। आल्डुअस हक्सले अमरीका का बड़ा विचारशील व्यक्ति था। कैलीफोर्निया में उसने अपने सारे जीवन एक बड़ा संग्रहालय बनाया था। दूर-दूर से बड़ी कीमती पुस्तकें लाया, सुंदर मूर्तियां, प्राचीन पुरातत्व की चीजें, शिलालेख; अपने सारे जीवन की संपत्ति उसने उसी में लगाई थी। चालीस साल की मेहनत थी उस आदमी की। और कहते हैं, एक अनूठा संग्रह था उसके पास। और अचानक एक दिन उसमें आग लग गई। पर इसी पुरातत्व की खोज में लगा-लगा, धीरे-धीरे इन्हीं सत्यों की खोज में लगा हुआ, उसके जीवन में एक क्रांति भी घट गई थी। उसे हम आधुनिक जगत का एक ऋषि कह सकते हैं। उस दिन उसने प्रमाण दिया। उसकी पत्नी ने समझा कि वह पागल हो जाएगा, क्योंकि सारा जीवन मिट्टी में गया। आग इतनी भयंकर थी कि कोई उपाय न रहा बचाने का कुछ भी। खुद की लिखीं किताबें, खुद की हस्तलिखित पांडुलिपियां, वे भी सब जल गयीं।
वह अपना खड़ा है, मकान को जलते देख रहा है। पत्नी घबड़ाई; क्योंकि न तो
वह कुछ बोल रहा है, न परेशान दिख रहा है। सोचा कि क्या पागल हो गया? रो ले, चिल्ला ले, चीख ले, तो हल्का हो जाए। और आल्डुअस हक्सले ने कहा कि मुझे सिर्फ ऐसा लगा कि एक बोझ हल्का हुआ। और जल जाने के बाद जब मैंने दूसरे दिन अपने मकान को देखा, तो मुझे ऐसा लगा, जैसे एक सफाई हो गई; स्नान कर लिया हो। जैसे ही तुम भीतर जाओगे, वैसे ही बाहर की घटनाएं कम से कम मूल्य की रह जाएंगी। धीरे-धीरे उनमें कोई मूल्य नहीं रह जाता। जैसे सांप अपनी केंचुल को छोड़कर सरक जाता है, ऐसे ही तुम अपने बाहर को छोड़कर भीतर सरक जाते हो। बाहर केंचुली ही पड़ी रह जाती है; उसका कोई भी मूल्य नहीं है।
"जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन या राज्य नहीं चाहता और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वही शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है।" "जो अपने लिए या दूसरों के लिए... ।"
क्योंकि हम बड़े धोखेबाज हैं। हम कहते हैं, अपने लिए तो हमें कुछ भी नहीं चाहिए, बच्चों के लिए कर रहे हैं। हम कहते हैं, अपने लिए तो क्या करना है? अपने लिए तो हम संन्यासी ही हैं, लेकिन अब पत्नी है, बच्चे हैं, घर-द्वार है। हमारी बेईमानी का अंत नहीं है। हम बड़ी तरकीबें निकालते हैं। हम दूसरों के कंधों पर रखकर बंदूकें चलाते हैं।
तो बुद्ध कह रहे हैं, "जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन या राज्य नहीं चाहता... ।"
जो महत्वाकांक्षी नहीं है। जिसके मन में प्रतिस्पर्धा की दौड़ नहीं है।
ध्यान रखना, जब भी तुम कुछ चाहते हो बाहर के संसार में तो तुम्हें आत्मा से मूल्य चुकाना पड़ता है। कौड़ी-कौड़ी भी तुम बाहर से लाते हो तो कुछ गंवाकर लाते हो। ऐसे मुफ्त कुछ भी नहीं मिलता। और बड़ा महंगा सौदा है। पांच रुपए कमा लेते हो जरा सा झूठ बोलकर, तुम सोचते हो, इतने से झूठ में क्या बिगड़ेगा? लेकिन उतने झूठ में तुमने आत्मा का एक कोना गंवा दिया। तुमने भीतर की एक स्वच्छता गंवा दी। तुमने भीतर की एक शांति गंवा दी। क्योंकि एक झूठ हजार झूठ लाएगा; फिर कोई अंत नहीं है। हजार झूठ, करोड़ झूठ लाएंगे। एक छोटा सा झूठ बोलकर देखो कि झूठ में कैसी संतानें पैदा होती हैं। झूठ की बड़ीशृंखला पैदा होती है, बच्चे पर बच्चे पैदा होते चले जाते हैं। झूठ संतति-निग्रह को मानता ही नहीं। वह पैदा ही किए चला जाता है। सत्य बिल्कुल बांझ है। ख्याल करो, जब भी तुम एक सत्य बोलते हो, बात खतम
हो गई; पूर्णविराम आ गया। झूठ का सिलसिला अंत होता ही नहीं। सच बोलते हो, याद भी नहीं रखना पड़ता। झूठ के लिए बड़ी याददाश्त चाहिए। सच के लिए

याददाश्त की भी जरूरत नहीं; उतना बोझ भी जरूरी नहीं। झूठ के लिए तो याददाश्त चाहिए ही। किसी से कुछ बोला, किसी से कुछ बोला। इस आदमी से झूठ बोल दिया आज, अब यह कल फिर पूछे तो कल का झूठ भी याद रखना चाहिए। और झूठ खिसकता है, क्योंकि झूठ की कोई जगह नहीं होती है ठहरने की। झूठ सरकता है। अगर तुम याद न रखो, बार-बार लौट-लौटकर याद न करो, तो तुम खुद ही भूल जाओगे। तुम खुद ही झंझट में पड़ जाओगे।
सत्य को याद रखने की भी जरूरत नहीं। जो है, उसे याद रखने की क्या जरूरत? वर्षों बाद भी याद आ जाएगा। जब जरूरत होगी याद आ जाएगा। उससे अन्यथा याद आने का कोई कारण नहीं। सत्य बोलने वाले आदमी का मन निर्भार होता है। जो निर्भार होता है, वह आकाश में उड़ सकता है।
झूठ बोलने वाला आदमी अपने गले में पत्थर लटकाए चला जाता है। फिर आकाश में उड़ना चाहता है तो कैसे उड़े? ये पत्थर जान ले लेते हैं।
एक झूठ बोले, तुमने आत्मा का एक कोना खराब कर दिया। मंदिर में तुम गंदगी ले आए। फूल को तुमने पत्थर से ढांक दिया। सड़ेगा यह फूल अब; इसके जीवन में अब तुमने अवरोध खड़ा कर दिया। तुमने झरने की सहज धारा को खंडित कर दिया। तुमने एक चट्टान अड़ा दी।
जरा सी चोरी कर लो--और ध्यान रखना, चोरी जरा सी और बड़ी नहीं होती। जरा सी, बड़ी ही है। सभी चोर यही सोचकर चोरी करते हैं कि इतनी सी से क्या बनता- बिगड़ता है? तुमने कभी ख्याल किया, चोरी का, झूठ का गणित क्या है? झूठ सदा यही कहता है, इतना सा है, क्या बनता-बिगड़ता है? और आज बोल लिए, कोई सदा थोड़े ही बोलना है! एक दफा सम्हल गई बात, सम्हल गई। चोरी भी यही कहती है, इतनी सी है!
दो पैसे की चोरी और दो करोड़ रुपए की चोरी में कोई फर्क नहीं है। चोरी चोरी है; छोटी-बड़ी नहीं होती। छोटा-बड़ा झूठ भी नहीं होता। झूठ सिर्फ झूठ है; छोटा-बड़ा कैसे होगा? सत्य सत्य है, न छोटा होता है, न बड़ा होता है। न झूठ छोटा होता है, न बड़ा होता है। न चोरी बड़ी होती है, न छोटी होती है।
मगर मन समझाए चला जाता है कि इतना सा झूठ है, क्या बनता-बिगड़ता है? इतनी सी चोरी है, कर लो, कल दान कर देंगे। और ध्यान रखना, फिर तुम कितना ही भला करो, बुरे को अनकिया करने का उपाय नहीं है। भले से अच्छा नहीं होगा वह। यह तो ऐसे ही हुआ, मैंने सुना है, इंग्लैंड का सम्राट अपने एक वजीर को राजदूत बनाकर फ्रांस भेजना चाहता था। वजीर का नाम मूर था। लेकिन वह डरा हुआ था, क्योंकि वह फ्रांस का सम्राट जो था, थोड़ा झक्की किस्म का था। और तनाव की अवस्था थी इंग्लैंड और फ्रांस में। तो मूर ने कहा कि आप मुझे भेज तो रहे हैं, लेकिन वह आदमी ऐसा पगला है कि किसी भी दिन भरे दरबार में गर्दन उतार ले सकता है मेरी।
तो इंग्लैंड के सम्राट ने कहा, तू बिल्कुल फिक्र मत कर। अगर तेरी गर्दन काटी गई तो जितने फ्रांसवासी इंग्लैंड में हैं, सबकी गर्दन उसी दिन काट डाली जाएगी। तू बिल्कुल फिक्र मत कर।
उसने कहा, वह मैं समझा कि आप यह करोगे। आप उससे कुछ पीछे नहीं हो, लेकिन उनमें से कोई भी गर्दन मेरे सिर पर बैठेगी न। मैं तो गया! तुम मेरी एक गर्दन के लिए हजार फ्रांसीसियों की गर्दन काट दोगे माना, लेकिन उनमें से कोई भी मुझे जिंदा न कर पाएगी। इससे क्या फर्क पड़ता है फिर कि मेरे मरने के बाद तुमने काटे या न काटे? मैं गया!
तुमने एक झूठ बोला, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम कितने सच बोलोगे इसके बाद। तुमने एक आदमी को छुरी मार दी, इससे क्या फर्क पड़ता है कि फिर तुमने फूलमाला पहना दी! तुमने किसी को गाली दे दी, इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम गए और स्तुति कर आए!
लेकिन जीवन में निरंतर तुम्हारा मन तुम्हें ये बातें समझाए जाता है
कि कोई हर्जा नहीं, चोरी कर ली, फिर पुण्य कर देंगे। पाप कर लिया, फिर तीर्थयात्रा कर आएंगे, हज हो आएंगे, हाजी हो जाएंगे। ये सब तरकीबें हैं मन की। इनसे सजग रहना।
जो किया, वह किया; उसे अनकिया करने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अतीत में वापस जाने का कोई उपाय नहीं है। जो हो गया, हो गया।

हां, उससे पार होने का उपाय है; उसको अनकिया करने का उपाय नहीं है। तुमने अगर एक आदमी की गर्दन काट दी, अब तुम क्या करोगे? तुम लाख मंदिर बनवाओ, तुम लाख पूजा चढ़वाओ, तुम हजारों ब्राह्मणों को भोजन करवाओ, इससे क्या होगा? जो हो गया, हो गया। हां, यह हो सकता है कि तुम बोधपूर्ण हो जाओ, जाग जाओ, तो पार हो जाओगे, अतिक्रमण हो जाएगा। लेकिन जो किया जा चुका, उसको अनकिया नहीं किया जा सकता।
इसलिए जब झूठ और बेईमानी तुम्हारे मन को पकड़े और तुम्हें दलीलें दे
कि यह तो छोटी सी बात है, कर लो; तब थोड़े सावधान रहना। कोई बात छोटी नहीं। क्योंकि हर घड़ी तुम्हारी आत्मा दांव पर है। और यहां मुफ्त कुछ भी नहीं है, हर चीज की कीमत चुकानी पड़ती है। और मजा तो यह है कि कीमत बहुत चुकानी पड़ती है, मिलता कुछ भी नहीं। पूरी जिंदगी के बाद हाथ तो खाली होते हैं, आत्मा भी खो गई होती है।
"जो अपने लिए या दूसरों के लिए पुत्र, धन या राज्य नहीं चाहता, वही सत्पुरुष है।"
अचाह सत्पुरुष की सुगंध है। अचाह! क्योंकि जैसे ही तुमने कुछ चाहा, वैसे ही तुम किसी से छीनने को तत्पर हो जाओगे। अगर बहुत धन चाहिए तो छीनना पड़ेगा। अगर बहुत प्रतिष्ठा चाहिए तो छीननी पड़ेगी। अगर बड़े पद चाहिए तो किन्हीं को हटाना पड़ेगा, कोई वहां मौजूद है। सब में हिंसा होगी।
जो बिना छीने मिल जाए, उसे ही संपदा मानना। जो बिना मांगे मिल जाए, उसे
ही वरदान मानना। और तुम्हारे मिलने से किसी का कम न हो, उसे ही धर्म मानना। तो कुछ ऐसी संपदाएं हैं, जो तुम्हें मिल जाती हैं और किसी की छिनतीं नहीं। समझो; तुम्हारे जीवन में प्रेम बढ़ जाए तो इसका यह अर्थ नहीं है कि इस जमीन पर कुछ लोगों का प्रेम छिन जाएगा क्योंकि तुम्हारे पास ज्यादा प्रेम की संपदा आ गई; कि कुछ लोगों के प्रेम के सिक्के छिन जाएंगे। नहीं, उलटी हालत है; तुम्हारे पास अगर प्रेम बढ़ जाए तो दूसरों के पास भी प्रेम के बढ़ने की संभावना बढ़ जाएगी। क्योंकि तुम इस जगत के एक अनिवार्य हिस्से हो। तुम्हारा दीया अगर भीतर का जलने लगे तो बहुतों को दीया जलाने की आकांक्षा जग जाएगी, भरोसा आ जाएगा। तुम्हारा अगर ध्यान बढ़ जाए तो ऐसा थोड़े ही है कि किसी की अशांति बढ़ेगी तुम्हारे ध्यान के बढ़ने से! तुम्हारे ध्यान के बढ़ने से किसी का कुछ छिनता नहीं। और अगर कोई समझदार हो तो तुम से बहुत कुछ पा सकता है। अन्यथा--
कली कोई जहां पर खिल रही है
वहीं एक फूल मुरझा रहा है
अगर तुमने इस संसार की संपदा में बहुत रस लिया, तो तुम कहीं एक कली खिला लोगे तो तुम पाओगे कि कोई फूल कहीं दूसरी जगह मुर्झा गया। तुम तिजोड़ी भर लोगे तो तुम पाओगे, किन्हीं की तिजोड़ियां खाली हो गयीं। तुम पदों पर पहुंच जाओगे तो तुम पाओगे कि कोई पराजित कर दिए गए, कोई पदों से नीचे गिर गए। तुम्हारे सुख में न मालूम कितने लोगों का दुख छिपा होगा।
ऐसा सुख दो कौड़ी का है, जिसमें दूसरे का दुख छिपा हो। ऐसा सुख व्यर्थ है, जिसमें दूसरे के खून के दाग हों।
और मजा यह है कि ना-कुछ के लिए! मिलता कुछ भी नहीं है। पद पर बैठ जाओ तो
भी तुम तुम ही हो। कितने ही ऊंचे पद पर बैठ जाओ, तुम तुम ही हो। चांद-तारों पर बैठ जाओ, तो भी तुम बदल न जाओगे।
तुम बदलो तो तुम जहां बैठे हो, वहीं सिंहासन हो जाते हैं। और वे सिंहासन किसी से छीनने नहीं पड़ते। तुम बदलो तो तुम जहां चलते हो, वहीं तीर्थ बन जाते हैं। तुम बदलो तो तुम्हारे चारों तरफ का माहौल भी तुम अपने साथ बदल लेते हो। तुम एक नई दुनिया का सूत्रपात हो जाते हो।
हां, खाइयो मत फरेबे-हस्ती
हरचंद कहें कि है, नहीं है
इस जिंदगी के धोखे में मत आना। कितना ही यह जिंदगी कहे कि मैं हूं, नहीं है। मौत इस सब को छीन लेती है। एक सपना है खुली आंख देखा गया।
तुमसे पहले बहुत लोगों ने यह सपना देखा है। कहां हैं वे सारे लोग? मिट्टी में खो गए। तुम भी उन्हीं जैसे सपने देख रहे हो, उन्हीं जैसे

मिट्टी में खो जाओगे। समय रहते कुछ कर लो। कुछ ऐसे सूत्र को पा लो, जो खोता नहीं, जो शाश्वत है--एस धम्मो सनंतनो। कुछ ऐसी बात पा लो, जो सनातन है, जिसे मृत्यु मिटा नहीं पाती।
"और न अधर्म से अपनी उन्नति चाहता है, वही शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है।"
जब-जब इसे सोचा है दिल थाम लिया मैंने
इंसान के हाथों से इंसान पे क्या गुजरी
आदमी ने आदमी के साथ क्या नहीं किया? और तुम थोड़ा सोचो, किसलिए? पाया क्या? हिटलर ने कितने लोग मारे! चंगेज खां ने कितने लोग समाप्त किए! हम भी सब छोटे-मोटे पैमाने पर वही करते हैं; पाते क्या हैं?
पाते कुछ भी नहीं। बच्चों के खेल हैं जैसे! बड़े महल बनाते हैं सपनों के, एक दिन सब पड़ा रह जाता है।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम बिना समझे इस सब से भाग खड़े होना। भागने की बात नहीं है, तुम इसे समझना। जब तुम एक कदम उठाओ प्रतिस्पर्धा का तो सोचना, क्या होगा? जब तुम्हारे मन में आकांक्षा पकड़े बहुत धन इकट्ठा कर लेने की तो सोचना, इससे क्या होगा? इस पर मनन करना, चिंतन करना, ध्यान करना। जब कोई तुम्हें गाली दे और अपमानित हो उठो और हत्या तुम्हारे मन को पकड़ने लगे, हिंसा के बादल तुम्हें घेर लें तो सोचना, इससे क्या होगा? इससे क्या सार है? जब तुम व्यर्थ की चीजों को इकट्ठा करने में विक्षिप्त होने लगो तो सोचना--
इससे क्या फायदा रंगीन लबादों के तले
रूह जलती रहे, घुलती रहे, पजमुर्दा रहे
इससे क्या फायदा? कितने ही रंगीन लबादे हों और भीतर आत्मा सड़ती रहे-- किसको धोखा दे रहे हो? इस धोखे का सार क्या है? और किसी भी घड़ी श्वास बंद हो सकती है। यह जो एक महान अवसर मिला था, जिसमें कि तुम जाग सकते थे, उसको व्यर्थ के खिलौने इकट्ठे करने में गंवाओगे?
रेत की सी दीवार है दुनिया
ओछे का सा प्यार है दुनिया
रेत की सी दीवार है दुनिया
बनाओ, बहुत बनाओ, बड़ा श्रम उठाओ, खून-पसीना करो, सब गंवाओ बनाने में और फिसल-फिसल जाती है। छोटे बच्चे ही जाकर रेत में घर नहीं बनाते, तुम भी वही कर रहे हो। समय की रेत पर बनाए सभी घर गिर जाने वाले हैं। समय की रेत पर बनाया गया कुछ भी ठहरेगा नहीं।
जैन शास्त्रों में एक कथा है। एक चक्रवर्ती हुआ; तो जैन शास्त्र कहते हैं कि जब कोई चक्रवर्ती हो जाता है--चक्रवर्ती यानी सारे जगत का सम्राट हो जाता है, सभी का अकेला मालिक हो जाता है, वही सभी होना चाहते हैं, जिसका चक्र सारे जगत में घूमने लगता है--तो उसके लिए एक विशेष सुविधा मिलती है। स्वर्ग में कैलाश पर्वत है, वहां चक्रवर्ती को अधिकार है दस्तखत करने का उस पर्वत पर। उस पर्वत पर जो भी दस्तखत किया जाता है, वह अरबों-खरबों वर्षों तक टिकता है। वह कोई ऐसा पर्वत नहीं है कि यहां जैसा पर्वत हो, दस्तखत किया और कुछ सैकड़ों वर्षों में खो जाएगा; टिकता है अरबों-खरबों वर्षों तक।
तो एक व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट हो गया, वह बड़ा प्रसन्न था; आकांक्षा पूरी हुई और उस पर्वत पर दस्तखत करने जा रहा है। तो उसने सोचा था कि बड़े- बड़े अक्षर में दस्तखत कर आऊंगा। लेकिन जब वह पर्वत के पास पहुंचा तो उसकी आंख आंसुओं से भर गई। पर्वत पर जगह ही न थी, इतने लोग पहले दस्तखत कर चुके थे। बड़े की तो बात और, एक कोना खाली न था, इतने चक्रवर्ती हो चुके थे समय की अनंत धारा में। कोई हिसाब है! सोचा था, उस विराट पर्वत पर बड़े-बड़े अक्षर में दस्तखत कर आएंगे।
फिर मजबूरी में कोई जगह न पाकर पुराने दस्तखतों को मिटाकर अपने दस्तखत किए। लेकिन तब उसका मन दीन-जीर्ण हो गया कि अगर यह हालत है, तो कोई हमारा भी मिटाकर दस्तखत कर जाएगा। यह कितनी देर टिका!

जब वह भीतर जा रहा था तो वह अपनी पत्नी को भी साथ ले जाना चाहता था। लेकिन द्वारपाल ने कहा, भलेमानस! इसकी आज्ञा नहीं है; अकेले ही भीतर जाना पड़ता है। पर मजा ही क्या अगर पत्नी न देख पाए पति का गौरव कि वह दस्तखत कर रहा है!
उसने बड़ी जिद की थी, लेकिन द्वारपाल ने कहा था, मान तू! लौटकर तू प्रसन्न होगा कि पत्नी को नहीं ले गया तो अच्छा हुआ। और ऐसा कुछ तेरे साथ ही हुआ है, ऐसा नहीं है; मेरे पिता भी यही काम करते थे द्वारपाल का। वह भी कहते थे, जब भी कोई आता है, वह पत्नी को साथ ले जाना चाहता है। उनके पिता ने भी उनसे यही कहा था। यह सदा से होता रहा है। और यह भी मुझे पता है कि लौटकर तू धन्यवाद देगा--ऐसा सदा से होता रहा है--कि अच्छा हुआ, पत्नी को साथ न ले गया। मिट्टी पलीत हो जाती है।
लौटकर उसने धन्यवाद दिया कि बड़ी कृपा है कि यहां पहरा बिठाया है। अब लौटकर अपनी शान तो कह सकूंगा। अगर पत्नी भी देख लेती कि यहां तो कोई जगह ही खाली नहीं है, यह कोई बड़ा गौरव नहीं है।
चक्रवर्ती भी हो जाओ, क्या मिलने वाला है? कितने लोग हो चुके हैं! और स्वर्ग के पर्वतों पर भी दस्तखत करने का मौका मिल जाए, वे भी रेत पर ही किए गए दस्तखत हैं। सब हस्ताक्षर रेत पर हैं।
सिर्फ एक तुम हो, जो समय के पार हो। सिर्फ एक तुम्हारा होना है, जो समय
की धार में नहीं है। अगर उसे पा लिया तो कुछ पाया; अगर उसे गंवाया तो सब गंवाया।
"पार जाने वाले मनुष्य, मनुष्यों में थोड़े ही हैं। ये इतर लोग तो किनारे-किनारे ही दौड़ने वाले हैं।"
पार जाने वाले मनुष्य, संसार से पार जाने वाले मनुष्य, समय से पार जाने वाले मनुष्य थोड़े ही हैं। इतर लोग तो किनारे-किनारे ही दौड़ते रहते हैं।
किनारे तुम कितने ही दौड़ो, कुछ न पाओगे। पार जाना होगा, अतिक्रमण करना होगा। उस अतिक्रमण की कीमिया का नाम ही धर्म है। उस अतिक्रमण के लिए जो नौका बनाई जाती है, उसी का नाम ध्यान है। पार जाने के लिए जो सीढ़ी लगाई जाती है, उसी का नाम निर्विचार है।
कैसे यह निर्विचार की सीढ़ी लगे? कैसे यह नौका बने ध्यान की? कि तुम पार जा सको, समय के पार! इसे थोड़ा समझ लें; यह बहुत बहुमूल्य सूत्र है। वासना सदा कहती है--कल। तृष्णा सदा कहती है--कल। चाह सदा कहती है--कल। ध्यान कहता है--आज, अभी, यहीं। ध्यान के लिए वर्तमान के अतिरिक्त कोई क्षण नहीं है। चाह के लिए वर्तमान को छोड़कर सब है--भविष्य है, अतीत है। ध्यान के लिए न अतीत है, न भविष्य है, बस यही क्षण है। और इसी क्षण में से समय के पार जाने का द्वार है।
वर्तमान के क्षण में वह सुविधा है कि अगर तुम ठहर जाओ, तुम सरक जाते हो समय के पार। मगर वहीं मन ठहरने नहीं देता। मन कहता है, कल मकान बनाना है, परसों धन कमाना, फिर यह करना, फिर वह करना। मन योजनाएं बनाता है। उन्हीं योजनाओं के कारण वह जो संकरा सा द्वार है, अति संकरा... ।
जीसस ने कहा है, द्वार बहुत संकरा है, लेकिन बिल्कुल सीधा है। सरल है, सुगम है; लेकिन बहुत संकरा है। इतना संकरा है कि अगर तुम बहुत बारीकी से न देखो तो तुम चूकते ही चले जाओगे।
वर्तमान का क्षण कितना छोटा है, कभी तुमने सोचा? न के बराबर है। तुम जब सोचते हो वर्तमान का क्षण, तभी वह अतीत हो जाता है, इतना छोटा है। इधर तुमने कहा वर्तमान, इधर वह वर्तमान न रहा--गया! जानते ही अतीत हो जाता है। तो या तो भविष्य होता है या अतीत होता है। जब तक नहीं जानते, तब तक भविष्य; जैसे ही जाना, अतीत। जब तक आशा करते हो, आ रहा है... आ रहा है... तब तक आया नहीं; जैसे ही जाना, आ गया--जा चुका!
वर्तमान के क्षण को विचार कभी पकड़ ही नहीं पाता।
इसे थोड़ा समझना। विचार की पकड़ बड़ी बोथली है, वर्तमान का क्षण बड़ा सूक्ष्म है। या तो विचार भविष्य को पकड़ता है, जो अभी आया नहीं, या अतीत को पकड़ता है, जो जा चुका--दोनों व्यर्थ हैं।

सत्य का तो अर्थ हैः वही, जो है; जो न कभी आता, जो न कभी जाता। एस धम्मो सनंतनो--जो धर्म सदा है, अभी है; कल भी था, कल भी होगा। इसलिए कल की बात ही उठानी व्यर्थ है। वह सदा ही आज है।
बीज का अंतिम चरण प्रिय
बीज ही है, फल नहीं है
डाल कोंपल फूल किसलय
एक केवल आवरण हैं
भूलता इसमें कभी क्या
बीज निज को एक क्षण है?
आज का अंतिम चरण तो
आज ही है, कल नहीं है
दिवस रजनी मास वत्सर
ताप हिम मधुमास पतझर
लय कभी इनमें हुआ क्या
आज के अस्तित्व का स्वर?
पंथ की अंतिम शरण तो
पंथ ही है, मंजिल नहीं है
बीज का अंतिम चरण प्रिय
बीज ही है, फल नहीं है
बीज फिर बीज हो जाता है सारी यात्रा के बाद। अंकुरण होता, वृक्ष बनता, फूल लगते, फल लगते, बीज फिर आ जाता है। पहले भी बीज, अंत में भी बीज।
तो बीच में सब खेल है। तो बीच में जितने रूप लिए, वे सब आवरण हैं। तो बीच में जो बहुरंग लिए, जो बहुरुपिया बना बीज--कभी फूल, कभी पत्ती, कभी वृक्ष--वह वास्तविक नहीं है। वह जो प्रथम है और फिर अंत में हो जाता है, वही वास्तविक है।
वर्तमान ही केवल वास्तविक है। वही सदा-सदा लौट आता है। कल फिर आज आ जाएगा। जब कल आएगा तो कल न होगा; कल जब आएगा, फिर आज हो जाएगा। परसों जब आएगा तब आज हो जाएगा। जिसे तुम बीता कल कह रहे हो, वह भी आज ही था; और किसी समयातीत लोक में आज भी आज ही है।
हमारे देखने की सीमा है। हम अखंड विस्तार को नहीं देख पाते; खंड कर-कर
के देखते हैं।
जैसे तुम एक रास्ते पर खड़े हो। एक आदमी गुजरा, तुम्हारे सामने आया तो दिखाई पड़ा; फिर आगे के मोड़ पर मुड़ गया तो दिखाई नहीं पड़ता। पीछे के मोड़ पर जब तक नहीं मुड़ा था, दिखाई नहीं पड़ता था। जब तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता था, तब भी वह था। अब जब तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, आगे के मोड़ पर मुड़ गया, तब भी है। तुम्हारे देखने की सीमा है, उसके होने की सीमा नहीं है। तुम्हारे देखने की सीमा ही उसके होने की सीमा नहीं है।
फिर एक आदमी झाड़ पर चढ़ा बैठा है, उसको वह दूर तक दिखाई पड़ता है। नीचे खड़े आदमी को जब दिखाई पड़ना बंद हो जाता है, तब भी उसे दिखाई पड़ता है। फिर कोई आदमी हवाई जहाज पर सवार है, तो उसे और भी दूर तक दिखाई पड़ता है। जितनी तुम्हारी चैतन्य की ऊंचाई बढ़ती जाती है, उतना ही तुम पाते हो, तुम्हारी दृष्टि बड़ी होती जाती है।
तो जिसे तुम अतीत कहते हो, वह भी ज्ञानी को वर्तमान ही दिखाई पड़ता है। जिसे तुम भविष्य कहते हो, वह भी ज्ञानी को वर्तमान ही दिखाई पड़ता है।
ज्ञानी के लिए बीज ही सत्य है। क्योंकि वही-वही लौट आता है। वर्तमान
ही सत्य है, क्योंकि वही-वही पुनरुक्त होता है। अतीत और भविष्य हमारी सीमाओं के द्योतक हैं।
समय अविभाज्य है। न तो कुछ अतीत है, न तो कुछ भविष्य। जो है, वह सदा है। ध्यान से जिन्होंने देखा है, उन्होंने कहा है, जो सदा है, वही है। जो है, वह सदा है।
बीज का अंतिम चरण प्रिय
बीज ही है, फल नहीं है
डाल कोंपल फूल किसलय

एक केवल आवरण हैं
भूलता इसमें कभी क्या
बीज निज को एक क्षण है?
आज का अंतिम चरण तो
आज ही है, कल नहीं है
दिवस रजनी मास वत्सर
ताप हिम मधुमास पतझर
लय कभी इनमें हुआ क्या
आज के अस्तित्व का स्वर?
पंथ की अंतिम शरण तो
पंथ ही है, मंजिल नहीं है
बीज का अंतिम चरण प्रिय
बीज ही है, फल नहीं है
वासना, फल की आकांक्षा है। ध्यान, फलाकांक्षा से मुक्ति है।
इसलिए कृष्ण की पूरी गीता एक शब्द पर टिकी हैः फलाकांक्षा का त्याग। वासना कहती है, कल क्या होगा, उसको सोचती है। उसी सोचने में आज को गंवा देती है। ध्यान आज जीता है; कल को सोचता नहीं। उसी जीने से कल उमगता है, निकलता है।
कल एक महिला ने रात मुझे पूछा, सच में ध्यान से शांति मिलेगी? अगर मिलने की पक्की गारंटी हो तो वह ध्यान करने का सोचती है। गारंटी कौन देगा? और मजा तो यह है कि ध्यान का अर्थ ही है कि क्या मिलेगा उसको छोड़ देना। ध्यान में भी अगर फलाकांक्षा है कि क्या शांति मिलेगी? तो फिर ध्यान भी ध्यान न रहा, वासना हो गया।
ध्यान से शांति मिलती है--मिलेगी, ऐसा नहीं--मिलती है; वह उसका परिणाम है। लेकिन ध्यान करने वाले को इतनी वासना भी रखनी खतरनाक है कि शांति मिलनी चाहिए; तब फिर वह ध्यान नहीं कर रहा है, विचार ही कर रहा है। ध्यान में इतना लोभ भी बाधक है। ध्यान भी हो जाए, इतना लोभ भी बाधक है। इसलिए इतने लोग ध्यान करते हैं और चूकते चले जाते हैं, क्योंकि बुनियादी कुंजी ही चूक जाते हैं।
इस क्षण में परिपूर्ण होना है। इस क्षण से बाहर नहीं जाना है। इस क्षण
को पूरा अस्तित्व जानना है। इस क्षण के बाद कुछ भी नहीं है--न पीछे कुछ, न आगे कुछ; यही क्षण है। इसी क्षण में हम पूरे के पूरे थिर हो जाएं, ध्यान हो गया। बड़ी शांति मिलती है। ध्यान रखना, मिलेगी, ऐसा नहीं कह रहा हूं; मिलती है। लेकिन उन्हीं को मिलती है, जो मांगते नहीं। जिन्होंने मांगी, वे कुंजी चूक गए। मांगी तो वासना हो गई, मांगी तो कल आ गया, मांगी तो फल आ गया।
बीज का अंतिम चरण प्रिय
बीज ही है, फल नहीं है
जैसे तुम्हें एक बार इसकी झलक मिल जाएगी, फिर कठिनाई न रह जाएगी। पहली झलक अत्यंत कठिन है, क्योंकि पहली झलक करीब-करीब असंभव मालूम होती है। तुम पूछोगे, जब आकांक्षा ही नहीं करनी तो हम ध्यान करें ही क्यों? करेंगे ही कैसे? करेंगे तो आकांक्षा के साथ करेंगे।
तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं। तुमने अब तक जो भी किया, आकांक्षा के साथ किया। लेकिन तुम अभी तक यह न देख पाए कि आकांक्षा तो बहुत की, पाया क्या? आकांक्षा से अभी भी तुम थके नहीं? आकांक्षा से अब तक तुम्हारे मुंह में कडुवापन नहीं आया? आकांक्षा से तुम अभी तक ऊबे नहीं? आकांक्षा ने दिया क्या? देने के भरोसे बहुत दिए, कोई भरोसा पूरा नहीं हुआ। आकांक्षा ने भ्रम के सिवा और क्या दिया? चलाए चली, पहुंचाया तो कहीं नहीं।
आकांक्षा को जब तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, आकांक्षा से कुछ भी नहीं मिला। आकांक्षा गिर जाएगी उस बोध के क्षण में। और उसी बोध के क्षण में ध्यान उपलब्ध होता है। आकांक्षा का अभाव ध्यान है।
पहले ऐसे कभी-कभी घटेगा, फिर-फिर तुम भटक जाओगे। फिर धीरे-धीरे ज्यादा-ज्यादा घटेगा, कम-कम भटकोगे। फिर एक दिन ऐसा आएगा कि तुम बिल्कुल थिर हो जाओगे। हवाओं के झोंके आएंगे, गुजर जाएंगे, तुम्हारी लौ न कंपेगी।

दुख आएंगे, सुख आएंगे, तुम निष्कंप चलते रहोगे। सब छूट जाएगा, क्योंकि तुमने अपने को पा लिया होगा।
वस्तुतः जिसने स्वयं को पा लिया, सब पा लिया। छूटता है, क्योंकि जिसने
सब पा लिया, अब वह व्यर्थ को पाने के लिए नहीं दौड़ता।
सत्पुरुष ऐसी संपदा का धनी हो जाता है, जो शाश्वत है। ऐसे पद पर विराजमान हो जाता है, जिसके पार कोई पद नहीं।
निश्चित ही, सब छंद-राग छूट जाते हैं, क्योंकि महाछंद बज उठता है।
छंदों का छंद भीतर अहर्निश बजने लगता है। सब गीत-गान बंद हो जाते हैं, क्योंकि गायत्री मुखरित हो उठती है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
बत्तीसवां प्रवचन

तू आप है अपनी रोशनाई

पहला प्रश्नः मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। कभी लगता है कि पूछना क्या है, सब ठीक है; और कभी प्रश्न ही प्रश्न सामने होते हैं।

समझ की बहुत बात भी नहीं। समझने का बहुत सवाल भी नहीं। जो समझने में
ही उलझा रहेगा, नासमझ ही बना रहेगा।
जीवन कुछ जीने की बात है, स्वाद लेने की बात है। समझ का अर्थ ही होता
है कि हम बिना स्वाद लिए समझने की चेष्टा में लगे हैं, बिना जीए समझने की चेष्टा में लगे हैं। बिना भोजन किए भूख न मिटेगी। समझने से कब किसकी भूख मिटी? और भूख मिट जाए तो समझने की चिंता कौन करता है!
आदमी ने एक बड़ी बुनियादी भूल सीख ली है--वह है, जीवन को समझ के द्वारा भरने की। जीवन कभी समझ से भरता नहीं; धोखा पैदा होता है।
प्रेम करो तो प्रेम को जानोगे। प्रार्थना करो तो प्रार्थना को जानोगे।
अहंकार की सीढ़ियां थोड़ी उतरो तो निरहंकार को जानोगे।
डूबो, मिटो, तो परमात्मा का थोड़ा बोध पैदा होगा।
लेकिन तुम कहते हो, पहले हम समझेंगे। तुम कहते हो, हम पानी में उतरेंगे न, जब तक हम तैरना समझ न लें। अब तैरने को समझकर कोई पानी में उतरेगा तो कभी उतर ही न पाएगा। तैरना तो तैरकर ही समझा जाता है। इसलिए पहली बार तो बिना तैरना जाने ही पानी में उतरना जरूरी है। खतरा है। पर जो खतरा मोल लेते हैं वे ही समझ के मोतियों को निकाल लाते हैं। तुम बिना खतरा लिए समझने की कोशिश कर रहे हो। तुम चाहते तो सब हो कि समझ में आ जाए, हाथ न जलें। तुम दूर खड़े रहो; समझ की संपदा तुम्हारे पास आ जाए, तुम्हें कदम न उठाना पड़े।
तुम शब्दों-शब्दों से अपने को भर लेना चाहते हो--वहीं चूक हो रही है। इसलिए तुम प्रश्न पूछने में डरते भी हो। क्योंकि प्रश्न पूछने का अर्थ ही होता हैः उत्तर की खोज में जाना होगा। उत्तर कोई मुफ्त नहीं मिलते हैं; मिलते होते, सभी को मिल गए होते। उत्तर ऐसे ही कहीं किताबों में बंद नहीं रखे हैं कि तुमने खोले और पा लिए। उत्तर तो जीवन की कशमकश में, जीवन के संघर्ष में उत्पन्न होते हैं। उत्तर कोई रेडीमेड नहीं हैं कि तुम गए और प्राप्त कर लिए। कोई दूसरा तो तुम्हें दे ही नहीं सकता--तुम्हीं खोजोगे। दूसरे से इतना ही हो जाए कि तुम्हारे भीतर यह ख्याल आ जाए कि बिना खोजे न मिलेगा--तो काफी। दूसरे से इतनी प्यास पैदा हो जाए कि खोजना पड़ेगा, अपने को दांव पर लगाना पड़ेगा--तो बस... ।
बुद्ध पुरुषों से प्यास मिलती है। बुद्ध पुरुषों से उत्तर नहीं मिलते, प्रश्न करने की क्षमता मिलती है। बुद्ध पुरुषों से प्रश्नों के हल नहीं होते, प्रश्नों को हल करने के लिए जीवन को दांव पर लगाने का अभियान मिलता है।
इतनी बातभर तुम्हारी समझ में आ जाए कि समझने से कुछ न होगा, तो समझ का काम पूरा हुआ। अन्यथा जब पूछने को सोचोगे तो कुछ पूछने जैसा ख्याल में न आएगा, पूछने को क्या है? बुद्धि कहेगी, सब ठीक है। सब ठीक से काम मत चलाना। सब ठीक भी कुछ ठीक हुआ? सब ठीक तो बड़े बुझे मन की दशा है। कुछ भी ठीक नहीं है। सब ठीक तो तुम कहते हो तभी, जब कुछ भी ठीक नहीं होता और उसे तुम देखना भी नहीं चाहते, लीप-पोत लेते हो, ढांक लेते हो।
जब कोई तुमसे पूछता है, कैसे हो? कहते हो, सब ठीक है। कभी गौर किया, इस
सब ठीक के नीचे कितना गैर-ठीक दबा है? औपचारिक है। इसलिए जब तुम पूछने को उठोगे, पाओगे, पूछने को कुछ मालूम नहीं होता, सब ठीक है। लेकिन कुछ भी ठीक नहीं है। और हजार-हजार प्रश्न तुम्हारे भीतर पल रहे हैं। स्वाभाविक है कि प्रश्न पलें; प्रश्नों के बिना कौन जीवन के सागर में उतरा! स्वाभाविक है

कि जिज्ञासा तुम्हारे भीतर घर बनाए, जिज्ञासा की पीड़ा जन्मे, जिज्ञासा तुम्हें विक्षिप्त बना दे कि जब तक तुम सत्य को पा न लो, संतोष न करो।
फिर से तुमसे कहूंः पूछने में तुम डरते हो, क्योंकि चलना पड़ेगा। इसे तुम भी भलीभांति जानते हो। लेकिन तुम गजब के होशियार हो अपने को धोखा देने में! इसलिए पूछते भी नहीं, प्रश्न भी भीतर खड़े हैं, मिटते भी नहीं। मिटेंगे कैसे? कौन मिटा देगा? जीवन तुम्हारा है, प्रश्न तुम्हारे हैं। उत्तर भी तुम्हारे होंगे, समाधान भी तुम्हारा होगा। कंठ तुम्हारा प्यासा है, मेरे उत्तर से क्या होगा हल! तुम्हें सरोवर खोजना पड़ेगा। ज्यादा से ज्यादा इतना कह सकता हूं, इसी राह मैं भी चला था, घबड़ाना मत। कितनी ही प्यास बढ़ जाए, निराश मत होना--सरोवर है। इतनी आस्था तुम्हें दे सकता हूं।
जो उत्तर मैं तुम्हें दे रहा हूं, वे प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं, सिर्फ तुम्हारी कमजोर हिम्मत न हो जाए, तुम हिम्मतपस्त न हो जाओ। राह लंबी है, सरोवर दूर है; मुफ्त नहीं मिलता; बड़ा कंटकाकीर्ण मार्ग है, भटक जाने की ज्यादा संभावनाएं हैं पहुंच जाने की बजाय। करीब-करीब आ गए लोग भी भटक गए हैं; पहुंचते-पहुंचते गलत राह पकड़ ली है; पहुंच ही गए थे कि पड़ाव डाल दिया। दो कदम बाद सरोवर था कि थक गए और सोचा कि मंजिल आ गई; आंख बंद कर ली और सपने देखने लगे। इतना ही तुमसे कह सकता हूं कि सरोवर है और सरोवर को पाने का तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। पर खोजे बिना यह न होगा।
और खोज से इतना डर क्यों लगता है? क्योंकि खोज का अर्थ ही होता हैः अनजाने रास्तों पर यात्रा करनी होगी। खोज का अर्थ ही होता हैः नक्शे नहीं हैं हाथ में, नहीं तो नक्शों के सहारे चल लेते; राह पर मील के पत्थर नहीं लगे हैं, नहीं तो उनके सहारे चल लेते। खोज जटिल है इसलिए कि तुम चलते हो, तुम्हारे चलने से ही रास्ता बनता है। रास्ता पहले से तैयार नहीं है। राजपथ नहीं है जिस पर भीड़ चली जाए।
इसलिए तुमसे कहता हूंः धर्म वैयक्तिक है।
संप्रदाय तुम्हें धोखा देता है राजपथ का। हिंदू चले जा रहे हैं, मुसलमान चले जा रहे हैं, तुम भी साथ-संग हो लिए, बड़ी भीड़ जा रही है! लेकिन जो भी पहुंचा है, अकेला पहुंचा है; याद रखना, भीड़ कभी पहुंची नहीं। जो भी पहुंचा है, नितांत एकांत में पहुंचा है। जो भी पहुंचा है, इतना अकेला पहुंचा है कि खुद भी अपने साथ न था उन पहुंचने के क्षणों में। इतनी शून्य एकांत की दशा में कोई पहुंचा है कि खुद भी न था मौजूद; दूसरे की तो बात और। दूसरे की तो जगह ही न थी, अपने लिए भी जगह नहीं।
जब खोजते-खोजते तुम खो जाओगे, तब खोज पूरी होती है। जब खोजते- खोजते तुम भूल ही जाओगे कि तुम भी हो, किसी क्षण में, किसी ऐसे विराट क्षण में, जब तुम भी तुम्हारे साथ नहीं होते, उसी क्षण परमात्मा बरस उठता है। फिर तो नामों के भेद हैं--परमात्मा कहो, मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, कैवल्य कहो, या कुछ भी न कहो। एक बात लेकिन सच है और पक्की है कि तुम नहीं होते।
सारा काम मिटने का है। सारी कला मिटने की है।
दीप का जलना, चमकना गेह का
शलभ का मरना, नमूना नेह का
बस दो बात ख्याल रखनी जरूरी हैंः
दीप का जलना, चमकना गेह का
जैसे-जैसे दीप जलता है, वैसे-वैसे घर रोशन होता है। जैसे-जैसे तुम जलोगे पीड़ा में, विरह में, खोज में, वैसे ही वैसे तुम्हारा भीतर का घर रोशन होने लगेगा। तुम्हारी जलन में ही ज्योति छिपी है।
ऐसे सुविधा से बैठे-बैठे, सब तरफ सुरक्षा से घिरे-घिरे, कदम भी न उठाने पड़ें और मंजिल पास आ जाए--तुम थोड़ा जरूरत से ज्यादा मांग रहे हो; तुम पात्रता के बिना मांग रहे हो। मंजिल आती है जरूर, सारा आकाश तुम्हें घेर लेता है। परमात्मा तुम में उतर आता है जरूर, लेकिन तुम खोजो तो। उतनी पहली शर्त तो पूरी करो।
दीप का जलना, चमकना गेह का
दीप जलता है तो घर में रोशनी होती है; तुम जलोगे तो तुम्हारे भीतर के गृह में रोशनी होगी। अहंकार को ऐसे ही जलाना है जैसे दीप की बाती जलती है।

शलभ का मरना, नमूना नेह का
और जब परवाना मर जाता है तो प्रेम का जन्म होता है। दीप जलता है तो प्रकाश; जब अहंकार जलता है, तुम जब जलते हो, तो रोशनी। और तुम जब बिलकुल मिट जाते हो, खो जाते हो, तो प्रेम, प्रभु, परमात्मा!
प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं, समाधान हैं। समाधान का अर्थ हैः तुम समाधि को पहुंचोगे तो।
मैं तुम्हें इतने उत्तर देता हूं, भूलकर भी यह मत सोचना कि कोई उत्तर तुम्हारे काम आ जाएगा। तुम पूछते हो, मैं देता हूं; न दूं, तुम बुरा मानोगे; न दूं तो तुम मेरे पास रहने का कारण भी न पाओगे। मैं यहां चुप बैठा रहूं, तुम विदा हो जाओगे।
मैं जो उत्तर दे रहा हूं, वे केवल तुम्हें थोड़ी देर और अटकाए रखने को हैं; थोड़ी देर और तुम पास बने रहो; थोड़ी देर और तुम इन प्रश्न-उत्तर के खिलौनों से खेलते रहो। शायद यह समय का बीतना ही तुम्हारे बोध के जन्म के लिए कारण बन जाए। शायद खिलौनों से खेलते-खेलते, प्रश्न पूछते-पूछते, उत्तर लेते-लेते, तुम्हें भी दिखाई पड़ जाए कि कितने प्रश्न पूछे हैं, कितने उत्तर पाए हैं, प्रश्न तो वहीं का वहीं खड़ा है, उत्तर तो कोई मिला नहीं। तो शायद एक ऐसी घड़ी बोध की धीरे-धीरे परिपक्वता में आ जाए कि तुम इन प्रश्न-उत्तर के खिलौनों को छोड़ दो, आंख खोलो और जीवन की दिशा में--बुद्धिमात्र से नहीं, अपनी समग्रता से--अभियान पर निकल जाओ।
मेरे उत्तर तुम्हारे काम नहीं पड़ेंगे, यह जानकर तुम्हें उत्तर दे रहा हूं। जिस दिन तुम्हें भी यह समझ में आ जाएगा कि किसी और के उत्तर किसी दूसरे के काम नहीं पड़ सकते, उसी दिन यात्रा शुरू होगी। यह प्रश्न-उत्तर तो यात्रा के पहले की चर्चा है। यह तो तुम्हें उलझाए रखने के लिए हैं। यह तो कि तुम कहीं उदास न हो जाओ, कहीं तुम्हारी आस्था खो न जाए! जैसे रात अंधेरी हो और हम कहानियां कहते हैं रात गुजार देने को।
मुझे पता है, सुबह करीब है; तुम कहीं सो न जाओ, इसलिए कहानी कह रहा हूं। तुम जागे रहो तो सुबह तुम्हारी आंखों को भर देगी। तुम जागे-जागे एक बार सुबह को देख लोगे तो तुम भी सुबह हो जाओगे। रात लंबी है। सो जाने का खतरा है। तुम्हें जगाए रखने की कोशिश कर रहा हूं।
ये सारे प्रश्न-उत्तर, प्रश्न-उत्तर नहीं हैं। तुम्हारी तरफ से तुम प्रश्न पूछते हो; मैं जो तुम्हें उत्तर देता हूं वह भी तुम सोच लेते हो, उत्तर होगा। मेरी तरफ सेः क्योंकि तुम तैयार नहीं हो जीवंत यात्रा पर जाने के लिए, तुम अभी बुद्धि में ही उलझे हो, इसलिए बुद्धि की थोड़ी बात कर लेता हूं।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं कि आप जब बोलते हैं तब तो बड़ा आनंद आता है, लेकिन ध्यान करने में नहीं आता। मैं उनसे कहता हूं, फिक्र छोड़ो ध्यान की, तुम अभी सुने ही चलो। और सारी चेष्टा यह है कि तुम किसी दिन ध्यान करो। लेकिन और थोड़ी देर सुनो, शायद सुनते-सुनते किसी दिन मन में यह ख्याल आने लगे कि चलो, ध्यान भी करके देखें।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि सुनते हैं आपको, पढ़ते हैं, लेकिन संन्यास का कोई भाव नहीं उठता। मैं कहता हूं, फिक्र छोड़ो संन्यास की। हालांकि सुनना-समझना सब इसलिए है किसी दिन तुम इतनी गहनता से यात्रा पर निकलो कि अपने पूरे जीवन को रंग लेने की तैयारी हो।

यह गैरिक रंग वस्त्रों का ही नहीं है। यह गैरिक रंग तो प्रतीक है कि तुम अपने पूरे, पूरे-पूरे प्राणों को रंगने को तैयार हो गए हो; कि तुम पागल होने को तैयार हुए हो; कि अब दुनिया हंसेगी तो तुम सहने को तैयार हुए हो; कि अब लोग समझेंगे कि कुछ तुम्हारा मस्तिष्क गड़बड़ हुआ तो तुम इस पर भी हंसने को तैयार हो। यह तो सिर्फ इस बात का सूचक है कि अब तुम चिंता न करोगे कि लोकमत क्या कहता है, लोग क्या कहते हैं। क्योंकि जिसने फिक्र छोड़ी कि लोग क्या कहते हैं, वही केवल रास्ते पर चला है। और जिसने चिंता रखी इस बात की कि लोग क्या कहते हैं, वह लोगों के हिसाब से ही चलता रहा। लोगों के हिसाब से अगर सत्य का रास्ता बनता होता तो सभी पहुंच गए होते।

भीड़ निर्णायक नहीं है; व्यक्ति निर्णायक है।
लेकिन मैं उनसे कहता हूं, कोई फिक्र नहीं, छोड़ो संन्यास की बात, सुनते चलो। पास रहते-रहते शायद बीमारी लग जाए। सत्य संक्रामक है।

दूसरा प्रश्नः समयातीत की धारा को भगवान बुद्ध ने मुहूर्तभर कहा है
और आपने उसी को वर्तमान कहा। यह मेरी समझ में भी आता है, फिर भी समझ के बाहर रह जाता है। लेकिन इस अल्प समझ से ही जो आनंद आता है, उससे मैं कृतज्ञता के भाव से भर जाता हूं। ओशो, मैं आपकी शरण आता हूं।

जिन्होंने भी जाना, जो भी जागे, उन सभी ने एक बात तो सुनिश्चित रूप से कही है कि सत्य समय की धारा के बाहर है, समयातीत है, कालातीत है। संसार है समय के भीतर--या यूं कहो कि जो समय के भीतर है वही संसार है; जो समय के बाहर है वही मोक्ष है।
इसकी तुम अपने जीवन में थोड़ी-थोड़ी झलकें कभी-कभी जुटा सकते हो। सोचोः
जब दुखी होते हो तो समय लंबा मालूम होता है। जब कोई पीड़ा सघन हो जाती है और प्राण किसी दुख में तड़पते हैं, समय लंबा हो जाता है। घड़ी की चाल तो वही होती है। घड़ी कोई तुम्हारे दुख-सुख को नहीं देखती। घड़ी को तुम्हारे दुख-सुख का कोई पता नहीं है। घड़ी तो अपनी चाल से चलती है, लेकिन घंटा ऐसे बीतता है, जैसे सदियां बीत रही हैं। जिसने दुख जाना है उसने समय की लंबाई जानी है; समय बड़ा लंबा होता जाता है। कोई मरणासन्न है प्रियजन और रात तुम उसकी खाट के पास बैठे हो; रात ऐसी लंबी हो जाती है कि कई बार मन में होने लगता हैः यह रात समाप्त होगी, न होगी? सुबह होगी, न होगी?
फिर तुमने सुख के क्षण भी जाने हैं। सुख के क्षण जल्दी भागते हैं, उनमें पंख लग जाते हैं, वे उड़े-उड़े जाते हैं। दुख के क्षण घसिटते हैं, जैसे लंगड़ा आदमी घसिटता है। सुख के क्षणों में पंख लग जाते हैं, भागते हैं, उड़ते हैं; घड़ी तेज चलती मालूम होने लगती है। कोई प्रियजन घर में आ गया है, घड़ी ऐसे बीत जाती है जैसे पल बीते।
सुख में समय छोटा हो जाता है; दुख में बड़ा हो जाता है; आनंद में शून्य
हो जाता है--होता ही नहीं। अगर कभी तुमने आनंद का क्षण जाना है या कभी जानोगे, तो तुम एक बात पाओगे कि समय ठहर जाता है, घड़ी रुक जाती है। सब ठहर जाता है। अचानक सारा अस्तित्व ठहर जाता है। इधर तुम्हारा मन ठहरा कि वहां समय ठहरा।
मन और समय एक ही चीज के दो नाम हैं।
दुख में मन घसिटता है, इसलिए समय घसिटता मालूम होता है। दुख में मन बेमन से जाता है, जाना नहीं चाहता। जैसे कोई कसाई गाय को बांधकर कसाई-घर की तरफ ले जाता है--घसिटती है गाय, जाना नहीं चाहती, अटका-अटका लेती है पैरों को, जबरदस्ती घसिटना पड़ता है--ऐसे ही दुख में मन जाना नहीं चाहता, दुख से बचना चाहता है, भाग जाना चाहता है। दुख कसाई-घर जैसा मालूम होता है। दुख में कहीं छिपी मौत मालूम होती है, समय लंबा हो जाता है। मन ठिठकता है, झिझकता है, जाना नहीं चाहता, रुकता है, लंगड़ता है, तो समय भी लंगड़ाने लगता है; क्योंकि समय मन का ही दूसरा नाम है।
जब तुम सुख में होते हो, तुम नाचते चलते हो, गीत गाते चलते हो, तुम गुनगुनाते चलते हो। तुम दौड़कर चलते हो, समय भी दौड़ने लगता है, समय भी पंख लगा लेता है। समय यानी तुम्हारा मन। और जब तुम आनंद में होते हो तो मन शून्य हो जाता है। मन होता ही नहीं, तभी तुम आनंद में होते हो। कोई विचार की तरंग नहीं होती, झील बिल्कुल चुप हो जाती है, कोई लहर आती न जाती, मन ठहर जाता है--जैसे बुद्ध बैठे हों बोधिवृक्ष के नीचे, ऐसा सब ठहर जाता है। उस ठहरेपन में अचानक तुम पाते हो, समय भी ठहर गया।
और समय की यह ठहरी दशा ही समाधि है। समय की यह ठहरी दशा ही सम्यकत्व है। समय की यह ठहरी दशा ही सदबुद्धि का जन्म है। समय की इस ठहरी दशा में ही शाश्वत तुम्हारी तरफ आता है; तुम कहीं नहीं जाते; तुम ठहर गए होते हो; आकाश तुम में झांकता है; परमात्मा तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है।

मुहूर्त का अर्थ क्या होता है? मुहूर्त का अर्थ होता हैः दो क्षणों के बीच का अंतराल। मुहूर्त कोई समय की धारा का अंग नहीं है। समय का एक क्षण गया, दूसरा क्षण आ रहा है, इन दोनों के बीच में जो बड़ी पतली संकरी राह है-- मुहूर्त।
शब्द फिर विकृत हुआ। अब तो लोग कहते हैं, उसका उपयोग ही तभी करते हैं,
जब उन्हें यात्रा पर जाना हो, विवाह करना हो, शादी करनी हो, तो वे कहते हैं, शुभ मुहूर्त। उसे वे पंडित से पूछने जाते हैं कि शुभ मुहूर्त कौन सा है। लेकिन यह शब्द बड़ा अदभुत है।
शुभ मुहूर्त का अर्थ होता हैः कोई भी यात्रा शुरू करना, कोई भी यात्रा--वह विवाह की हो, प्रेम की हो, काम-धंधे की हो--शुरू करते वक्त मन रुक जाए, ऐसी दशा में शुरू करना। मन से शुरू मत करना, अन्यथा कष्ट पाओगे, भटक जाओगे। अ-मन की अवस्था में करना, शून्य से शुरू करना, तो शुभ ही शुभ होगा, मंगल ही मंगल होगा। क्योंकि शून्य से जब तुम शुरू करोगे, तो तुम शुरू न करोगे परमात्मा तुम्हारे भीतर शुरू करेगा।
शुभ मुहूर्त का अर्थ बड़ा अदभुत है! उसको ज्योतिषी से पूछने की जरूरत नहीं है। ज्योतिषी से उसका कोई संबंध नहीं है। उसका संबंध अंतर-अवस्था से है, अंतर-ध्यान से है। कोई भी काम करने के पहले, कामना से न हो, अत्यंत शांत मौन अवस्था से हो, ध्यान से हो।
थोड़ा सोचोः अगर तुम्हारा प्रेम किसी स्त्री से है या किसी पुरुष से है, ध्यान की अवस्था से शुरू हो, तो तुम्हारे जीवन में ऐसे फूल लगेंगे, तुम्हारा संग-साथ ऐसा गहरा होगा, तुम्हारा संग-साथ ऐसा हो जाएगा कि दो न बचेंगे, एक हो जाओगे। कामवासना की उथल-पुथल में तुम्हारी प्र्रेम की यात्रा शुरू होती है, नरक में बीज पड़ते हैं--और बड़ा नरक उससे निकलता है। प्रेम की यात्रा भी ध्यान से शुरू हो तो शुभ मुहूर्त में शुरू हुई। किसी से मित्रता मुहूर्त में हो, शुभ मुहूर्त में हो, ध्यान के क्षण में हो, तो यह मित्रता टिकेगी, यह पारगामी होगी, यह परलोक तक जाएगी। यह मित्रता टूटेगी न। संसार के झंझावात इसे मिटा न पाएंगे। तूफान आकर इसे और सुदृढ़ कर जाएंगे, क्योंकि इसकी गहराई इतनी है, इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं, ध्यान से उठी हैं।
तो पूरब के लोगों ने धीरे-धीरे यह रहस्यपूर्ण राज खोज लिया था कि अगर तुम निर्विचार अवस्था में कोई काम शुरू करो तो आशीर्वाद ही आशीर्वाद उपलब्ध होते हैं। वह बात तो खो गई। मुहूर्त का अर्थ ही खो गया।
मुहूर्त बड़ा अनूठा शब्द है। समय के दो क्षणों के बीच में जो समयातीत जरा सी झलक है, वही मुहूर्त है। मुहूर्त समय का कोई नाप-जोख नहीं है, समय के बाहर की झलक है। जैसे क्षणभर को बादल हट गए हों और तुम्हें चांद दिखाई पड़ा, फिर बादल इकट्ठे हो गए--ऐसे क्षणभर को तुम्हारे विचार हट गए और तुम स्वयं को दिखाई पड़े, भीतर की रोशनी अनुभव हुई। उसी रोशनी में पहला कदम उठे तो यात्रा शुभ हुई--वह कोई भी यात्रा हो--उस यात्रा में फिर दुर्घटनाएं न होंगी। उस यात्रा में दुर्घटनाएं भी होंगी तो भी सौभाग्य सिद्ध होंगी। उस यात्रा में अभिशाप भी मिलेंगे तो आशीर्वाद बन जाएंगे; तुम ठीक-ठीक क्षण में चले!
लोग बीज बोते हैं, किसान खेत में बीज बोता है, तो शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा में। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि बीज भी तुम्हारी भाव-दशा से अनुप्राणित होता है। तुमने ऐसे ही लापरवाही से बो दिया तो तुम्हारी लापरवाही के निशान बन जाएंगे। तुमने बड़े प्रेम से बोया तो तुम्हारे प्रेम के निशान बन जाएंगे। अब तो वैज्ञानिक भी कहते हैं कि प्रेम से बोए गए बीज जल्दी पौधे बन जाते हैं। ऐसे ही उपेक्षा से बोए गए बीज जल्दी पौधे नहीं बनतेः क्या जल्दी है? किसको प्रसन्न करना है? घृणा से बोए गए बीज अपंग रह जाते हैं, पौधे जराजीर्ण होते हैं। अहोभाव से बोए गए बीज अनुभव करते हैं तुम्हारे प्रेम को भी। और शुभ मुहूर्त में बोए गए, अर्थात ध्यान के क्षण में बोए गए, तब यह अन्न भी इन बीजों से पैदा होगा तो ब्रह्म होगा। धीरे-धीरे बड़ी प्राचीन प्रतीतियां भी वैज्ञानिक आधार लेती जाती हैं।
अब वैज्ञानिक कहते हैं कि भोजन बनाने वाले व्यक्ति की मनस दशा पर भोजन का

गुणधर्म तय होता है। इस देश में तो हम सिर्फ ब्राह्मण से भोजन बनवाते थे। ब्राह्मण का अर्थ हैः जिसने ध्यान का रस जाना हो, जिसने मुहूर्त देखे हों। उसका कोई अर्थ ब्राह्मण घर में पैदा होने से नहीं है; एक पावनता, एक पवित्रता से है। ब्राह्मण भोजन बनाए, इसका अर्थ यह है कि ध्यान से भोजन का कुछ संबंध जुड़ जाए, तो तुम एक और ही तृप्ति पाओगे उस भोजन से। उससे शरीर ही पुष्ट न होगा, उससे तुम्हारी आत्मा को भी बल मिलेगा। प्रेम से कोई भोजन बनाए, अहोभाव और आनंद से और उत्सव से कोई भोजन बनाए, गृहणी गीत गुनगुनाते, भजन गाते हुए भोजन बनाए, तो इस भोजन में हजार चीजें और बढ़ जाएंगी जो भोजन की नहीं हैं, जिनका कोई संबंध भोजन से नहीं है। यह तुम्हें बड़े गहरे तक एक पोषण देगा। यह जीवन में एक गहरी शांति भी लाएगा, एक तृप्ति भी लाएगा। लेकिन ऐसा अब होता नहीं है। गृहणी गाली देती रहती है, क्रोध से भुनभुनाती रहती है, क्रोध से बर्तन पटकती रहती है, प्लेटें टूटती रहती हैं, उन्हीं के बीच भोजन बनता है। यह भोजन ज्यादा से ज्यादा शरीर को भी तृप्ति दे दे तो बहुत, उतनी भी आशा करनी ठीक नहीं। इस भोजन के साथ रोग जा रहा है। इस भोजन के साथ क्रोध जा रहा है। इस भोजन में लिपटी हुई गलत रुग्ण ऊर्जा जा रही है। यह भोजन जहर है। इसने अमृत का गुणधर्म खो दिया।
फिर इस तरह पारस्परिक उपद्रव बढ़ते चले जाते हैं। पति इस भोजन को करेगा, बेटा इस भोजन को करेगा, और ये रोग उसमें पलेंगे और वह इन रोगों को पत्नी पर, मां पर फेंकेगा। और मां और क्रुद्ध होगी, और परेशान होगी, और पत्नी और दुखी होगी, और पीड़ित होगी--और यह सिलसिला दुष्टचक्र बन जाएगा। शुभ मुहूर्त में सारे काम की शुरुआत हो। सुबह जब सोकर उठे कोई तो जल्दी न करे, पहले ध्यान का सूत्र पकड़े, फिर पैर बिस्तर के बाहर निकाले; क्योंकि बिस्तर के बाहर पैर निकालना एक बड़ी यात्रा है। अब चौबीस घंटे फिर एक नया दिन शुरू हुआ, फिर नए संबंध बनेंगे, लोगों से मिलना होगा, हजार बातें होंगी, हजार घटनाएं घटेंगी--एक क्षण डुबकी लगा ले ध्यान में।
इसलिए सारे धर्मों ने कहा है कि सुबह उठते ही प्रार्थना--प्रार्थना पहला कृत्य हो, ताकि मुहूर्त सध जाए--फिर तुम चलो यात्रा पर, फिर कोई हर्जा नहीं।
फिर धर्मों ने यह भी कहा है कि दिन में भी कुछ पड़ाव बना लो; जैसे इस्लाम ने कहा है कि पांच बार, बार-बार शुभ मुहूर्त को पकड़-पकड़ लो। तो ऐसे अगर कोई दिन में पांच बार नमाज पढ़े, सच में ही पढ़े, ऐसा दोहरा ही न रहा हो सिर्फ एक उपचार को, तो वह पाएगा हैरान होकर कि संसार में रहते हुए भी संसार में नहीं है। क्योंकि बार-बार इसके पहले कि संसार की धूल जमे, वह फिर नहा लेगा; इसके पहले कि संसार का उपद्रव उसे घेर ले और रुग्ण कर जाए, वह फिर ताजा हो जाएगा, वह फिर परमात्मा से शक्ति ले लेगा, फिर अपने भीतर छुपकर एक डुबकी लगा लेगा, फिर प्रभामंडित होकर, आनंदमंडित होकर वापस संसार में लौट आएगा।
रात सोते वक्त फिर ध्यान के क्षण में ही सोना है। फिर क्षणभर को धागा पकड़ लो, दिन में कई बार खो गया होगा--उलझने हैं, चिंताएं हैं, हजार-हजार परेशानियां हैं--कई बार धागा छूट-छूट गया होगा, फिर उसे पकड़ लो। क्योंकि रात फिर एक नई यात्रा शुरू होती है स्वप्नों की, निद्रा की। फिर ध्यान के धागे को पकड़ लो, फिर शुभ मुहूर्त में सो जाओ, ताकि रात स्वप्नों में भी छाया की तरह मंडराया रहे ध्यान, ताकि रात तुम्हारे अंतस्तल में एक धारा बहती रहे सातत्य की, ध्यान की।
ऐसे हमने दिन और रात सबको ध्यान में अनुस्यूत किया था।
मुहूर्त का अर्थ होता हैः कुछ भी शुरू करने के पहले स्वयं का स्मरण कर लेना, ताकि हर कृत्य आत्मस्मरण की आधारशिला बनने लगे। यह भवन बनाना है तो एक-एक ईंट करके रखी जाएगी। यह कोई आकस्मिक रूप से नहीं हो जाएगा। प्रभुस्मरण की एक-एक ईंट, आत्मस्मरण की एक-एक ईंट रखनी पड़ेगी, तब कहीं यह भवन निर्मित होता है। हर ईंट प्रेम में डूबी हुई हो और हर ईंट ध्यान के स्वभाव में पगी हो।
निश्चित ही, बुद्ध ने जिसे मुहूर्त कहा है, उसे ही मैं वर्तमान कह रहा हूं। तुम मुहूर्त को तो पकड़ ही न पाओगे अगर वर्तमान को ही न पकड़ पाए।

वर्तमान में होना ही निर्विचार होना है, क्योंकि वर्तमान में विचार हो ही नहीं सकते। सोचने का अर्थ ही होता हैः या तो तुम पीछे का सोचने लगे या आगे का सोचने लगे। यहां और अभी सोचना कैसा? इसी क्षण में कैसे सोचोगे? क्या सोचोगे? अगर इसी क्षण में मौजूद हो गए तो सिर्फ मौजूदगी रह जाएगी, सोचना न रहेगा। सोचने की तरंग तो या तो पीछे की तरफ जाती है या आगे की तरफ जाती है। अभी और यहीं सोचने की कोई तरंग नहीं होती।
इसलिए वर्तमान का अर्थ हैः ध्यान।
चौबीस घंटे में जितनी बार हो सके, वापस लौट-लौटकर अपनी मौजूदगी को छू लेना। और यह काम कहीं भी हो सकता है, राह चलते हो सकता है। राह चलते पकड़ लेना अपनी मौजूदगी को, सोच-विचार को झिटक देना, झटका दे देना एक; जैसे कोई धूल झाड़ दे राह से चलता यात्री, ऐसे झड़क देना मन को थोड़ी देर को। एक क्षण को ही सही, लेकिन उस एक क्षण में ही तुम्हारे भीतर नित-नूतन और चिर-सनातन ऊर्जा का आविर्भाव हो जाएगा। वह सदा वहां है, तुम झांकते ही नहीं।
तेरा कंदील है तेरा दिल
तू आप है अपनी रोशनाई
तुम चिल्लाए चले जाते हो, बहुत अंधेरा है; और मैं देखता हूं कि तुम्हारी कंदील जल रही है तुम्हारे भीतर। मैं देखता हूं कि भला-चंगा तुम्हारा प्रकाश तुम्हारे भीतर मौजूद है; और तुम चिल्लाए चले जाते हो, अंधेरा है। तुम भीतर देखते ही नहीं। क्योंकि भीतर देखने की पहली शर्त ही तुम पूरी नहीं करते। वह शर्त हैः वर्तमान में होना। दो क्षणों के बीच जो अंतराल है। क्योंकि एक क्षण जो जा चुका, अतीत हो गया; एक क्षण जो अभी आया नहीं, भविष्य है; और दोनों के बीच में जो अंतराल है, वही वर्तमान है। और अंतराल बड़ा संकरा है। अगर तुम बहुत सूक्ष्मता से न देखोगे तो चूक जाओगे; जैसे तुम्हारे चैतन्य को खुर्दबीन बनाना पड़ेगा; जैसे कोई खुर्दबीन से देखता है तो छोटी-छोटी चीजें भी दिखाई पड़ती हैं, खाली आंख से दिखाई नहीं पड़तीं।
ध्यान के सब प्रयोग तुम्हारी चेतना को खुर्दबीन बनाने के प्रयोग हैं, ताकि तुम गौर से देख सको और छोटी से छोटी चीज भी दिखाई पड़ सके। वैज्ञानिक अणु पर पहुंच गए, परमाणु पर पहुंच गए। जैसे वैज्ञानिक ने सारी खोज की है पदार्थ की और परमाणु पर आ गया, वैसे ही संतों ने, योगियों ने, रहस्य के खोजियों ने, जिन्होंने अंतरतम की खोज की है, चैतन्य की खोज की है, वे मुहूर्त पर आ गए, वे दो पलों के बीच में जो छोटा सा अंतराल है उस पर आ गए। इसे समझो। विज्ञान की सारी खोज पदार्थ की खोज है। पदार्थ यानी स्पेस। पदार्थ यानी फैलाव, विस्तार, क्षेत्र। धार्मिकों ने सारी खोज समय की की हैः टाइम। समय बाहर नहीं है, समय भीतर है। जो बाहर है वह क्षेत्र है। दोनों एक हैं। इसलिए अल्बर्ट आइंस्टीन ने दोनों के लिए एक ही शब्द बना लियाः स्पेसियोटाइम, समयाकाश। दो नहीं माना। दो हैं भी नहीं वे। जिसने आकाश की तरफ से पकड़ने की कोशिश की, वह विज्ञान है; और जिसने समय की तरफ से पकड़ने की कोशिश की, वही योग है, वही धर्म है। विज्ञान खोजते-खोजते सूक्ष्म होता चला जाता है, परमाणु पर आ जाता है। धर्म खोजते-खोजते सूक्ष्म होता चला जाता है और दो पलों के बीच में जो अंतराल है--मुहूर्त, उस पर आ जाता है।
मुहूर्त परमाणु का ही पहलू है। परमाणु मुहूर्त का ही पहलू है। और ध्यान यानी अंतर की खुर्दबीन। जैसे विज्ञान खुर्दबीन को बढ़ाता गया है, बनाता गया है और सूक्ष्म से सूक्ष्म को देखने की क्षमता पैदा करता गया है, वैसे ही ध्यान भी, योग भी सूक्ष्म से सूक्ष्म को पाने की खोज में तल्लीन रहा है।
"समयातीत की धारा को भगवान बुद्ध ने मुहूर्त कहा है और आपने उसी को वर्तमान। यह मेरी समझ में भी आता है, फिर भी समझ से बाहर रह जाता है।"
ठीक कह रहे हैं। उचित कह रहे हैं। ऐसा ही होगा। क्योंकि यह बात एकदम समझ में आ जाने की नहीं है। यह समझ में आ जाती है और यह भी समझ में आ जाता है कि बहुत कुछ समझ के पार रह गया। यह बात तुम्हारी समझ से बड़ी है। इसका एक कोना ही तुम्हारी समझ में आ जाए तो बस काफी है। तुम्हारी समझ इसका स्पर्श कर ले--स्पर्श मात्र--तो बस काफी है। क्योंकि समझ बड़ी छोटी है, बुद्धि बड़ी

छोटी है, सत्य विराट है। यही सौभाग्य है कि इतना सा भी तुम्हारी पकड़ में आता है।
अगर इतना भी पकड़ में आ जाता है कि समझ में आता सा लगता है तो कदम उठ गया। अब तुम चिंता न करो, जो समझ में नहीं आता उसकी; वह भी धीरे-धीरे आ जाएगा। अब तुम अपनी समझ को फैलाओ। अब तुम अपनी समझ को बड़ा करो। तुम्हारे आंगन में भी आकाश उतरा है, अब तुम आंगन के चारों तरफ की दीवाल को गिराओ। थोड़ा सा उतरा है आकाश; आंगन छोटा है, आकाश का कसूर क्या? आंगन का भी क्या कसूर? इतना उतर आया, यह भी कुछ कम चमत्कार है? आकाश जैसी विराट घटना तुम्हारे छोटे से आंगन को भी छूती है। अब तुम अपने आंगन की दीवालों को गिराने में लग जाओ।
समझदार इतना समझते ही कि थोड़ी सी बात मेरी समझ में आ गई, उसको पकड़ लेता है, उसी के सहारे लंबी यात्रा हो जाती है।
लाओत्सु ने कहा हैः एक-एक कदम से दस हजार मील की यात्रा पूरी हो जाती है। ज्यादा जरूरत भी क्या है? आदमी एक बार में एक ही कदम चलता है।
छोटा सा दीया चार कदम रोशनी फैलाता है, उतने से आदमी सारे संसार के अंधेरे को पार कर जाता है; आगे बढ़े, चार कदम आगे रोशनी पड़ने लगती है। चार कदम दिखने लगें, बहुत है।
"यह मेरी समझ में भी आता है, फिर भी समझ के बाहर रह जाता है।"
जब भी समझ में आता है तो ऐसा भी समझ में आएगा। यह समझ का ही अनिवार्य अंग है कि समझ में आता भी है--कुछ एक पहलू, एक झलक--और समझ के पार भी रह जाता है। छोटा बच्चा जैसे अपने बाप का हाथ पकड़े हो, अब हाथ जरा सा हाथ में है, पूरा पिता तो हाथ में नहीं है, उतना काफी है।
मेरा थोड़ा सा हाथ भी तुम्हारे हाथ में आ जाए, उतना काफी है। जो मैं तुमसे कह रहा हूं, उसमें से थोड़ी सी बात भी तुम्हारे हाथ में आ जाए तो बस काफी है। उसी के सहारे तुम धीरे-धीरे अपनी समझ को बड़ा करते जाओगे।
यहीं यात्रियों में फर्क पड़ जाते हैं। कुछ हैं, जो कहते हैं कि हम पूरा न समझ लेंगे, तब तक हम कदम न उठाएंगे। धीरे-धीरे वे पाएंगेः जो समझ में आया था वह भी खो गया, अब वह भी समझ में नहीं आता।
दूसरे वे हैं, जो कहते हैं कि इतना समझ में आ गया, इसका उपयोग करेंगे, इसको सीढ़ी बनाएंगे, इसकी नाव ढालेंगे, इसमें यात्रा करेंगे। जब इतना समझ में आ गया तो शेष भी आ ही जाएगा। ऐसे यात्री यात्रा पर निकल जाते हैं। तो जो कल तक समझ में नहीं आता था, धीरे-धीरे वह भी समझ में आने लगता है। जैसे- जैसे तुम्हारी समझ बड़ी होती है, वैसे-वैसे समझ में आने लगता है। और अंततः जिस दिन तुम्हारी समझ की कोई सीमा नहीं रह जाती, उसी दिन असीम समझ में आएगा। जिस दिन तुम आंगन की सब दीवालें तोड़ दोगे, गिरा दोगे।
ध्यान रखना, गलत पर ध्यान मत देना। ध्यान रखना, अभाव पर ध्यान मत देना। ध्यान रखना, निषेध पर ध्यान मत देना। जो समझ में आ जाए उसके लिए प्रफुल्लित होना। जो समझ में न आए उसके लिए प्रतीक्षा करना। उलटा मत कर लेना कि जो समझ में नहीं आया उसको बोझ बना लो और जो समझ में आए उसे कोने में रख दो, तो तुम कहीं जा न पाओगे। धीरे-धीरे तुम पाओगेः जो एक दिन समझ में आता मालूम पड़ता था, वह भी जंग खा गया, अब वह भी काम का नहीं रहा। ठीक दिशा में ध्यान रखना।
यह पतझर पथ मधुमासों का
यह संशय अथ विश्वासों का
यह धरती रथ आकाशों का
जब पतझर दिखाई पड़े, तब भी तुम मधुमास ही देखना। क्योंकि मधुमास आ रहा है।
यह पतझर पथ मधुमासों का
जो ठीक से देखता है, सम्यक दृष्टि जिसे उपलब्ध हुई है, वह पतझर से भी पीड़ित नहीं होता। वह कहता है, मधुमास आता ही होगा।
यह पतझर पथ मधुमासों का
एक द्वार बंद होता है तो वह जानता है कि दूसरा खुलता ही होगा।
यह संशय अथ विश्वासों का

वह संशय में भी छिपी हुई विश्वास की खोज को पकड़ लेता है। असम्यक-दृष्टि विश्वास से भी संशय ही पैदा करता है। सम्यक-दृष्टि संशय में भी विश्वास के किनारे को पकड़ लेता है।
इसे थोड़ा समझने की कोशिश करो। यह तुम पर निर्भर है। तुम खड़े हो सकते
हो गुलाब की झाड़ी के पास और कांटे गिन सकते हो--कांटे वहां हैं। और अगर तुम कांटों में बहुत उलझ जाओ, हाथ-पैर लहूलुहान हो जाएं, तो तुम फूल को देख ही न पाओगे। क्योंकि उस दुखद अवस्था में कैसा फूल? फूल सिर्फ एक रंगीन धब्बा मालूम पड़ेगा। शायद उस गुलाबी फूल में भी तुम्हें रक्त का ही दर्शन हो। क्योंकि तुम्हारे हाथ खून से भर गए होंगे, और तुम्हारी आंखें क्रोध से भर गई होंगी, और तुम्हारे मन में एक नाराजगी होगी कि इतने कांटे बनाने की जरूरत क्या थी! और जब इतने कांटे हैं तो तुम कैसे भरोसा करो कि फूल होगा। कांटों में कहीं फूल हो सकता है? फूल तो फूलों में होते हैं, कांटों में कैसे होंगे? और जिसने इतने कांटे बनाए उसने फूल बनाया ही न होगा।
फिर दूसरा कोई व्यक्ति है जो फूल को देखता है, फूल को छूता है; नासापुटों को भरता है फूल की गंध से। और फूल में अदृश्य के उसे दर्शन होते हैं, झलक मिलती उसकी, जिसको पकड़ पाना मुश्किल है। एक अनूठा सौंदर्य फूल में उतरा है! ऐसे व्यक्ति को यह भरोसा करना मुश्किल होगा कि ऐसी गुलाब की झाड़ी में जहां इतने अनूठे फूल लगते, कांटे हो कैसे सकते हैं! और अगर कांटे होंगे, और अगर कांटे हैं, तो वह सोचेगा कि जरूर वे इस फूल की रक्षा के लिए होंगे, जरूर इस फूल के हित में होंगे, उनकी कोई जरूरत होगी। कांटों से भी उसकी दुश्मनी चली जाती है जो फूल को देखने लगता है; जो कांटों को देखने लगता है, फूल से भी उसकी दोस्ती हट जाती है। देखने पर बहुत कुछ निर्भर है। सब कुछ निर्भर है। दृष्टि अर्थात सृष्टि। तुम कैसे देखते हो!
यह पतझर पथ मधुमासों का
पतझड़ में मधुमास को देखना। पतझड़ में वसंत के पैरों की पगध्वनि सुनना। गौर से सुनोगे, बराबर सुनाई पड़ेगी, क्योंकि आ रहा वसंत। यह पतझड़ तो तैयारी है। यह तो पुरानी धूल-धवांस को झाड़ना है। यह तो मरे-गले पत्तों को वापस पृथ्वी में भेजना है। यह तो नए पत्तों के लिए स्थान बनाना है।
जहां एक पुराना पत्ता गिर रहा है, अगर गौर से देखोगे तो नए को उमगते पाओगे। वृक्ष फिर से नए हो रहे हैं, फिर से हरे होने की तैयारी कर रहे हैं। जैसे सांप केंचुली से सरककर निकल जाता है, ऐसे वृक्ष पुरानी केंचुली को छोड़ रहे हैं--उसे तुम पतझड़ कहते हो। वह नए होने का उपक्रम है।
मगर ऐसे नासमझ भी हैं जो वसंत में पतझर की पगध्वनि सुन लेते हैं। तब वसंत का सौंदर्य भी खो जाता है। तब वसंत में भी वे रोते हैं, क्योंकि पतझर आता होगा। तब फूल भी उन्हें हंसा नहीं सकते, और आंसुओं से भर जाते हैं।
यह संशय अथ विश्वासों का
तुमने जिसे विश्वास जाना है अब तक, तुमने कभी गौर किया, कहीं तुम उसके भीतर संशय को तो नहीं छिपाए हो? तुम मानते हो, ईश्वर है--सच में माना है, या केवल एक संशय था और संशय को तुमने छिपा दिया है?
संशय पीड़ा देता है, चुभता है, खलता है। संशय बेचैन करता है। संशय के साथ जीना कठिन है। संशय के साथ उसी बिस्तर पर सोना कठिन है जिस पर तुम सोते हो। संशय डगमगाएगा। संशय रात की नींद छीन लेगा। तो तुम कहते हो, ईश्वर है। लेकिन तुम्हारे ईश्वर है के नीचे संशय तो नहीं छिपा है?
जहां तक मैं देखता हूं, अधिक विश्वासियों के विश्वास के नीचे संशय की राख है, संशय ही संशय के ढेर लगे हैं। उनको उन्होंने छिपा लिया है विश्वास की पर्त में। क्योंकि इतना साहस नहीं कि उनका साक्षात्कार कर सकें और इतना साहस नहीं कि संशय को जी सकें, हिम्मत नहीं है।
इसलिए जवान आदमी विश्वास नहीं करता, थोड़ी हिम्मत होती है। बूढ़ा आदमी विश्वास करने लगता है। मौत करीब आने लगी, अब संशय को ढांकने का वक्त आ गया; अब तो मानना ही पड़ेगा कि परमात्मा है। क्योंकि मौत करीब आती है; हो या न हो, मान लेना हितकर है, लाभपूर्ण है। बूढ़ा हिसाब लगाने लगता है।
इसलिए मंदिर-मस्जिद बूढ़ों से भरे हैं। वहां कोई जाता ही नहीं, जब तक बूढ़ा नहीं हो जाता। वहां अगर तुम जवान को भी पाओगे तो तुम गौर से देखनाः वह

किसी कारण बूढ़ा हो गया होगा, इसलिए वहां है। अन्यथा जवान किसलिए वहां होंगे?
हम तो संशय को ढांकने के लिए ही विश्वास का उपयोग करते हैं। लेकिन सम्यक-दृष्टि व्यक्ति अपने संशय में भी विश्वास को ही खोजता है।
अगर तुम्हारे भीतर संशय उठता है कि ईश्वर नहीं है--यह इसी बात का सबूत
है कि तुम ईश्वर में उत्सुक हो। यह इसी बात का सबूत है कि तुम जानना चाहते हो कि ईश्वर है या नहीं। यह इसी बात का सबूत है कि तुम्हारे भीतर खोज के अंकुर फूट रहे हैं।
तुम्हारा संशय तुम्हारे विश्वास की खोज है। तुम विश्वास की खोज कर रहे हो। तो जो समझदार है, वह अपने संशय में भी विश्वास की पहली पगध्वनियां सुनता है, पतझर में भी मधुमास का आगमन अनुभव करता है। जो नासमझ है, वह अपने विश्वास में भी संशय को छिपाए बैठा रहता है। उसके मंदिर में भी धोखे हैं; उसकी नमाज, उसकी प्रार्थना, इबादत के भीतर सिवाय भय के और कुछ भी नहीं है। वह लोगों से कहता हैः भय बिन होय न प्रीति। वह समझाता है कि यह तो भय से ही हो रहा है सब। उसका परमात्मा भी भय का ही साकार रूप है।
यह धरती रथ आकाशों का
जो ठीक-ठीक देखने की कला सीख लेता है, वह संसार के विरोध में नहीं है--
हो नहीं सकता। संसार में भी जगह-जगह वह परमात्मा के हस्ताक्षर पाता है। इधर फूल खिला, उधर उसके भीतर कोई परमात्मा की गंध आई। इधर एक बच्चा जन्मा, उधर उसके भीतर कुछ चैतन्य का जन्म हुआ! इधर एक व्यक्ति मरा, कि उसके भीतर यह बोध आया कि यह सब जो बाहर दिखाई पड़ता है क्षणभंगुर है! इधर एक सम्राट गिरा, उधर उसकी महत्वाकांक्षा गिरी! इस पृथ्वी को वह आकाश का रथ बना लेता है।
यह धरती रथ आकाशों का
इस पृथ्वी के प्रति वह ऐसा अनुभव नहीं करता कि निंदा, पाप, नरक, घृणा।
इस पृथ्वी पर भी वह अनुभव करता है कि आकाश की यात्रा चल रही है। निश्चित ही पृथ्वी आकाश में घूम रही है। महायान है यह। इससे तेज यान अभी हम नहीं बना पाए हैं, शायद कभी बना भी न पाएंगे। चौबीस घंटे सतत अनवरत अहर्निश यह यान चल रहा है, आकाश की परिक्रमा चल रही है।
संसार निर्वाण की खोज है। पृथ्वी आकाश की तलाश है। पदार्थ भी चैतन्य होने की यात्रा पर है। चट्टान को भी नमस्कार करना। कभी तुम चट्टान थे, कभी चट्टान भी तुम जैसी हो जाएगी। समय का फासला होगा। यात्रा-पथ वही है। चट्टान भी उसी क्यू में खड़ी है जहां तुम खड़े हो--बहुत पीछे खड़ी होगी... । जीवन सतत विकास है। यहां विरोध किसी चीज में नहीं है। दुकान भी मंदिर
के रास्ते पर पड़ती है। और कामवासना में भी प्रेम के बीज छिपे हैं। और प्रेम में प्रार्थना के बीज छिपे हैं। और प्रार्थना में परमात्मा के बीज छिपे हैं।
स्मरण रहे कि जीवन को एकशृंखलाबद्ध विकास की तरह देखना है। तो तुम्हें अगर समझ में आ रहा है कुछ, तो उस कुछ में और बहुत कुछ समझने की संभावना छिपी है। जो समझ में नहीं आ रहा, उसकी फिक्र मत करना, क्योंकि वह बहुत बड़ा है जो समझ में नहीं आ रहा है। अगर उसकी तुमने चिंता की तो तुम घबड़ाकर बैठ जाओगे। रास्ता दस हजार मील का है, तुम एक कदम चले हो--अगर तुमने दस हजार मील का हिसाब रखा, हिसाब ही तुम्हें घबड़ा देगा। तुम डगमगा जाओगे। दस हजार मील और ये छोटे कदम और यह छोटी सी क्षीण ऊर्जा! इतना भयंकर अंधकार और यह छोटा सा ध्यान का दीया! तुम घबड़ा जाओगे। तुम्हारी घबड़ाहट में यह छोटा सा दीया भी बुझ जाएगा, तुम बैठ ही जाओगे। तुम फिर उठ ही न पाओगे। यही जड़ता है।
अगर गलत को देख लिया तो आदमी जड़ हो जाता है। अगर ठीक पर नजर रखी, एक कदम उठा लिया, तो उसमें तुमने दस हजार मील पार कर ही लिए।
महावीर ने कहा हैः जो चल पड़ा, वह पहुंच ही गया।
अब यह बड़ी महत्वपूर्ण बात थी, लेकिन एक तार्किक विवादी महावीर के विरोध में खड़ा हो गया। उसने कहा, यह बात गलत है।

कुछ बातें हैं जो तर्क के बड़े आगे हैं, गलत-सही के बड़े आगे हैं। जिसने
यह विवाद किया वह महावीर का दामाद था खुद। वह महावीर के पांच सौ संन्यासियों को लेकर अलग हो गया। पांच सौ लोगों को अलग कर सका, तो थोड़ी तो तर्क की प्रतिभा रही होगी। महावीर से तोड़ सका! और अगर तुम भी सोचोगे तो तुम पाओगे कि दामाद ठीक मालूम पड़ता है। क्योंकि उसने यह कहा कि तुम कहते हो, जो चल पड़ा वह पहुंच गया--यह बात जंचती नहीं, क्योंकि चलकर भी कोई रुक सकता है। चलकर भी कोई रुक सकता है, इसलिए पहुंचने का क्या पक्का है? चलकर फिर बैठ जाए। बीज बो दिया, इससे वृक्ष हो गया, यह कोई पक्का थोड़े ही है। हो सकता है, न भी हो।
लेकिन महावीर कुछ और ही बात कह रहे थे; वे किसी काव्य का वक्तव्य दे रहे थे; वे कोई तथ्य की बात नहीं कह रहे थे; वे किसी बड़ी दूरगामी दिशा की ओर इशारा कर रहे थे। वे कह रहे थे, जो चल पड़ा वह पहुंच ही गया। वे यह कह रहे थे कि जिसने एक कदम उठा लिया, अब उसको दस हजार मील पार करने की कठिनाई कहां? न करे, उसकी मर्जी; मगर मंजिल मिल गई। अब यह मत कहना कि मंजिल नहीं मिली; बात हो गई। तुमने एक कदम उठा लिया तो एक-एक कदम उठकर तो कितनी ही दूरी पूरी हो जाती है। अब तुम्हारी मर्जी--तुम न उठाओ, तुम बैठ जाओ, तुम रास्ते के पड़ाव को मंजिल समझ लो--यह तुम्हारी मौज। लेकिन यह मत कहना कि तुम पहुंचने में असमर्थ हो।
एक छोटी सी बूंद में पूरा सागर छिपा है। एक कदम में पूरी यात्रा छिपी है।

तीसरा प्रश्नः आप अक्सर असुरक्षा की बात करते हैं और मैं सुरक्षा ढूंढ़ता फिरता हूं। कृपया अपनी असुरक्षा की बात हमें अच्छी तरह समझाएं।

असुरक्षा का इतना ही अर्थ है कि जहां तुम हो, वही तुम्हारे होने की नियति न बन जाए। जो तुम हो, उससे तुम तृप्त मत हो जाना। बहुत आगे जाना है। बहुत होना है। बहुत कुछ होना है! कहीं ऐसा न हो कि जो तुम हो गए हो, तुम यह मान लो कि यह होने की इतिश्री है।
मन की यह आदत है। मन कहता है, पहुंच गए! मन जैसे मानकर ही चलता है कि पहुंच गए। जरा एक कदम चलता है और बैठ जाने की आकांक्षा करता है। मन बड़ा आलसी है।
असुरक्षा का यही अर्थ है कि तुम निरंतर नई जोखिम लेते रहना, मन को बैठने मत देना। आकाश बहुत बड़ा है। तुमने जो घोंसले बना लिए हैं, उनको तुम आखिरी बात मत समझ लेना। बहुत दूर जाना है। अगर तुम ठीक से समझो तो इस यात्रा की कोई मंजिल नहीं है, यह यात्रा ही मंजिल है। यह चलते जाना ही जीवन है। ठहर जाना मौत है।
सुरक्षा यानी कब्र। कब्र से ज्यादा सुरक्षित तुम कोई जगह पा सकते हो? लोग जिंदा-जिंदा अपनी कब्र बना लेते हैं, सब तरफ से सुरक्षित कर लेते हैं-- न कोई सूरज की किरण, न कोई हवा का झोंका, न कोई जीवन का कष्ट, न कोई चुनौती, न कोई संघर्ष--तुम मर गए! मरने को भी अब क्या बचा? मौत भी आएगी तो पछताएगी कि इस आदमी के पास नाहक आना हुआ, यह तो पहले ही मर चुका था।
जीवंत होने का अर्थ हैः चुनौती ताजी रहे, रोज नए की खोज जारी रहे। क्योंकि नए की खोज में ही तुम अपने भीतर जो छिपे हैं स्वर, उन्हें मुक्त कर पाओगे। नए की खोज में ही तुम नए हो पाओगे। जैसे ही नए की खोज बंद होती है कि तुम पुराने हो गए, जराजीर्ण हो गए, खंडहर हो गए। एक क्षण को रुकती है नदी की धार और गंदी होनी शुरू हो जाती है। पवित्रता तो सदा बहते रहने का नाम है। तभी तक धार पवित्र और निर्मल रहती है जब तक बहती रहती है। बहती धार रहना। पर बहती धार में असुरक्षा है। नए किनारे पता नहीं कैसे हों; नए स्थान, पता नहीं वृक्षों की छाया होगी कि न होगी; नए लोग, नई स्थितियां, अपरिचित हैं, अजनबी हैं, पता नहीं उनसे हम जीत पाएं न जीत पाएं। यह पुराने दुश्मनों से ही लड़े जाना अच्छा है, इनसे हम जीतने के आदी हो चुके हैं, अभ्यस्त हो चुके हैं। यह पुराने दुखों को ही झेलते रहना अच्छा है, इनसे हमने पहचान

बना ली है, इनसे अब पीड़ा भी नहीं होती। यह पुरानी जगह में ही कैद बने रहना अच्छा है, क्योंकि सब जाना-माना है, डर कुछ भी नहीं।
अनजान से डर लगता है। अपरिचित से भय लगता है। लेकिन सारी गति अपरिचित में है। सारी गति अनजान में है। वह अनजान का नाम ही ईश्वर है। जो सदा अनजाना रहेगा, जिसे तुम जान-जानकर भी चुका न पाओगे, जिसे तुम जितना जानोगे उतना ही जानोगे कि कुछ भी न जाना--वही ईश्वर है।
ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है, कहीं बैठा नहीं है। अब तक मर गया होता; कितना समय हुआ बैठे-बैठे! ईश्वर अगर कोई व्यक्ति होता तो कभी का मर गया होता। व्यक्ति तो मरेंगे ही। थक गया होता, ऊब गया होता। थोड़ा सोचो भी उसकी मुसीबतें। तुम तो सोच लेते हो, व्यक्ति है, आकाश में बैठा है, दुनिया चला रहा है। एक दुकान चलाते-चलाते तुम ऊब जाते हो! पागल हो गया होता। थोड़ा सोचो, इतना सारा उपद्रव चलता है, चलता ही रहता है, सबकी जिम्मेवारी उसी की! नहीं, ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। ईश्वर उस अनंत संभावना का नाम है जो कभी चुकती नहीं। ईश्वर केवल यात्रा का नाम है। इसलिए जो ठहरा, वह अधार्मिक हुआ; जो चलता रहा, वही धार्मिक।
बुद्ध ने कहा हैः चरैवेति! चरैवेति! चलते रहो! चलते रहो! रुकना नहीं। सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
कनाअत न कर आलमे-रंगो-बू पर
चमन और भी, आशियां और भी हैं
जो थोड़ी सी सुगंध फूलों की मिली है, उस पर संतुष्ट मत हो जाना! कनाअत न कर--संतोष मत कर लेना। आलमे-रंगो-बू पर--इस संसार में जो थोड़ी सी गंध मिल गई, इसको काफी मत समझ लेना। यह तो केवल संदेश है कि और गंधें छिपी हैं। यह तो केवल पहली खबर है। यह तो पहला द्वार है। अभी तो पूरा महल बाकी है। और यह महल ऐसा है, जो कभी चुकता नहीं है।
चमन और भी, आशियां और भी हैं
अगर खो गया एक नशेमन तो क्या गम
मकामाते-आहो-फुगां और भी हैं
अगर एक घर खो गया तो घबड़ाना मत, बहुत और घर हैं। अगर एक घोंसला गिर गया
तो घबड़ाना मत, बेचैन मत हो जाना।
तही जिंदगी से नहीं ये फजाएं
ये आकाश और-और जिंदगियों से भरे हैं, खाली नहीं हैं।
तही जिंदगी से नहीं ये फजाएं
यहां सैकड़ों कारवां और भी हैं
इस एक यात्रा-पथ को सब मत समझ लेना, इस यात्री-दल को सब मत समझ लेना। यहां और बहुत यात्री-दल हैं, अनंत-अनंत रूपों में यात्रा चल रही है।
तू शाहीं है, परवाज है काम तेरा
तेरे सामने आसमां और भी हैं
तू दूर तक उड़ जाने वाला पक्षी है, घोंसले बनाकर रुक मत जाना।
तेरे सामने आसमां और भी हैं
इसी रोजो-शब में उलझकर न रह जा
इसी रात-दिन के चक्कर में उलझकर समाप्त मत हो जाना।
कि तेरे जमां-ओ-मकां और भी हैं
और बहुत खोज बाकी है।
सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
मैं जो तुमसे कहता हूं असुरक्षा के लिए, उसका कुल इतना प्रयोजन है कि
मन की आदत है सुरक्षा को बनाकर उसी आशियां में, उसी घर में छिप रहने की, सुरक्षा की कब्र बना लेने की। नए से मन डरता है, अपरिचित से भयभीत होता है, अनजान से बचता है। इसलिए तुम हिंदू हो तो तुम रोज मंदिर चले जाते हो--कभी मस्जिद भी जाया करो! मस्जिद में भी कुछ घट रहा है--एक दूसरा यात्री-दल! मुसलमान हो, मस्जिद में ही मत अटके रह जाना; मंदिर में भी कुछ घट रहा है-- कोई और यात्री-दल!

जीवन जितने द्वार खोलता है, तुम किसी एक ही द्वार का आग्रह मत करना। तुम अपने हाथों संकीर्ण क्यों हुए जाते हो? तुम क्यों कहते हो, मैं हिंदू हूं? क्यों कहते हो, मैं मुसलमान हूं, ईसाई हूं, जैन हूं? क्यों घर बांधते हो? खुला आकाश तुम्हें रास नहीं आता? खुला आकाश तुम्हें घबड़ाता है? तुम बिना सीमा खींचे अपने चारों तरफ बेचैनी अनुभव करते हो? तो गुलामी की तुम्हें आदत हो गई है; तो कारागृह तुम्हारी आदत हो गई है; तो कारागृह तुम्हारा नशा हो गया है।
बड़ी दूर की यात्रा है। यहां कोई भी घर मत बनाना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि रात विश्राम के लिए तुम कहीं मत रुकना। बस रात विश्राम के लिए ठीक है। लेकिन ध्यान रखना, सभी घर सराय हैं; सुबह हुई, उठना है, आगे बढ़ जाना है। न तो मन की कोई धारणाएं, न शास्त्र, न संप्रदाय--कोई भी तुम्हारे लिए घर न बने; तुम सदा मुक्त रहो जाने को; तुम्हारे पैर सदा तत्पर रहें यात्रा के लिए; तुम खानाबदोश रहो!
यह शब्द बड़ा अच्छा है। इसका मतलब होता हैः जिसका घर अपने कंधे पर है। खानाबदोश--दोश यानी कंधा; खाना यानी घर। खानाबदोश यानी जिसका घर अपने कंधे पर है। आदमी का होना, आदमी का असली होना, उसकी खानाबदोशी पर निर्भर है। इस जगत को उन्होंने ही अधिक गहराई से जाना, पहचाना, परखा और जीया है, जिन्होंने कहीं अपने को बांधा नहीं है।
इसका यह अर्थ नहीं कि कभी धूप में वे किसी वृक्ष के नीचे विश्राम को नहीं रुके। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने घर-गृहस्थियां नहीं बनायीं। पर इतना उन्हें सदा स्मरण रहा कि सब सरायें हैं, धर्मशालाएं हैं, रुकना है और आगे बढ़ जाना है। मंजिल कहीं भी नहीं है, सब पड़ाव हैं। खेमा गाड़ा है आज रात, कल सुबह उखाड़ लेना है। तभी तुम पाओगे कि धीरे-धीरे वे जो सितारों के आगे जहां और भी हैं, तुम्हारे लिए उपलब्ध होने लगे।
तुम अपने ही हाथ से अपनी गर्दन नीचे करके जमीन पर सरक रहे हो। तुम उड़ने के लिए बने हो। तुम पंखों का उपयोग ही नहीं करते।
असुरक्षा से और कुछ अर्थ नहीं है। असुरक्षा का अर्थ यह हैः नए की जोखिम उठाने की सदा तैयारी रखना।
मेरे साथ भी जो लोग चलते हैं, वे भी एक नई तरह की सुरक्षा बांध लेते हैं। कभी-कभी मेरे पास आ जाते हैं कि आपने कल कुछ और कहा था, आज आपने कुछ और... ।
कल को जाने भी दो--सराय है। मैं नहीं कल पर रुका, तुम क्यों रुक गए हो? मेरे साथ चलना हो तो रुकना संभव नहीं है। इसीलिए कठिनाई होती है।
बुद्ध जब जिंदा थे तो लोगों को कठिनाई थी साथ चलने में। क्योंकि यह आदमी पारे की तरह हैः मुट्ठी बांधो, बंधता नहीं, बिखर जाता है। मर गए, फिर संप्रदाय बन गया। अब कोई झंझट न रही, बात खतम हो गई। इति आ गई! पूर्ण विराम आ गया। अब तो बुद्ध गड़बड़ न कर सकेंगे। अब तो हमारी मुट्ठी में हैं। अब शास्त्र बन सकता है।
बुद्धत्व एक यात्रा है। बुद्ध के मरते ही तुम शास्त्र बना लेते हो, संप्रदाय बना लेते हो। बुद्धों के साथ चलना कठिन, लेकिन उनकी पूजा करना आसान। उनके साथ होना कठिन, उनके पैर में पैर मिलाकर चलना कठिन; क्योंकि तुम्हारी आदत घर बनाने की और उनकी आदत घर बिगाड़ने की!

तुम आशियां-परस्त हो, तुम मकान बना लेते हो, फिर छोड़ने में तुम्हें डर लगता है। तुम कहते हो, कल आपने यह कहा था। कल गया! गंगा का कितना जल बह गया! गंगा से नहीं कहते कि कल कुछ बात और थी, आज कुछ बात और है! सूरज से नहीं कहते कि कल कुछ और तरह के बादल घिरे थे तुम्हारे पास, आज कुछ और हैं! चांद से नहीं कहते कि कल तेरी रंग-रौनक और थी, आज कुछ और है!
प्रतिपल जो वस्तुतः जीता है, तुम उसे बदलता हुआ पाओगे। पत्थर पड़े रह जाते हैं अपनी जगह, वृक्ष तो न पड़े रह जाएंगे--उठते हैं! वृक्ष खड़े रह जाते हैं अपनी जगह, पशु-पक्षी तो न रह जाएंगे।
मैंने सुना है कि एक शेखचिल्ली ने एक दुकान से मिठाई खरीदी। रुपया दिया, आठ आने वापस चाहिए थे, लेकिन फुटकर न थे। तो दुकानदार ने कहा, कल सुबह

ले लेना। उस शेखचिल्ली ने चारों तरफ देखा और उसने कहा, पक्का कर लेना जरूरी है, कहीं बदल जाए! कोई फिर चीज खोज लेनी चाहिए। उसने खोज ली। दूसरे दिन सुबह आया और दुकानदार से कहा कि मुझे पहले ही पता था! आठ आने के पीछे गजब कर दिया तुमने।
उस आदमी ने पूछा, क्या मामला है?
उसने कहा, आठ आने वापस लौटाओ। रात मिठाई खरीदी थी।
उसने कहा, तुम होश में हो? यह नाईबाड़ा है, यहां मिठाई कैसी?
उसने कहा, मुझे रात ही शक था। मगर आठ आने के पीछे यह मैंने न सोचा था कि तुम धंधा ही बदल दोगे। मगर मैं भी होशियार हूं। देखा नहीं, सांड जहां बैठा है वहीं का वहीं बैठा है! रात ही मैंने ख्याल कर लिया था कि कोई चीज देख लो जिसको तुम धोखा न दे पाओ। यह सांड यहीं बैठा था। मैं देख गया था। सांड वहीं बैठा है।
रात में सांड हट गया। सांड जीवित है।
जो रुक गए हैं--जैन होकर, बौद्ध होकर, ईसाई होकर--उन्हें पता नहीं कि जिस दुकान से मिठाई मिली थी, वह दुकान अब वहां नहीं है, नाईबाड़ा है। मुर्दा शब्दों में अटके रह गए हैं। जहां बुद्ध पुरुष थे अब वहां सिर्फ उनकी अस्थियां पड़ी हैं; अब वहां कुछ भी नहीं है। अब तुम राख की पूजा करते रहो। मैं जानता हूं तुम्हारी तकलीफः तुम आशियां परस्त हो। तुम चाहते हो, मैं तुम्हें कुछ बंधी हुई धारणा दे दूं और तुम झंझट से छूटो और तुम अपना घर बना लो और तुम मजे से फिर उसमें रहो।
कहानियां होती हैं न, पुरानी कहानियां--ऐसा कहीं होता तो नहीं--लेकिन कहानियों में लिखा होता है कि राजकुमार ने राजकुमारी से शादी कर ली, फिर दोनों सदा सुख से रहे। ऐसा कहीं होता-करता नहीं है। मगर इसके आगे कोई कहानी नहीं जाती, क्योंकि फिर खतरा है। फिल्में भी यहीं खतम हो जाती हैं। शहनाई वगैरह बजी, बाजे वगैरह बजे--इसके बाद अंधेरा। असली जिंदगी वहीं शुरू होती है।
तुम तो चाहते हो, कहीं तुम घर बना लो, फिर सदा सुख से रहें। सदा सुख से रहने का मतलब होता हैः मरना। जीवन में तो रोज संघर्ष होंगे, चुनौतियां होंगी। जीवन तो रोज की विजय-यात्रा है। रोज-रोज कुरुक्षेत्र है जीवन का। और जिसने इसे समझ लिया, फिर उसे कोई दुखी नहीं कर पाता; फिर हर दुख को वह अपने सुख में बदल लेता है और हर राह के पत्थर को सीढ़ी बना लेता है।
एक बात सदा ध्यान रहे कि तुम रोज नए होते चले जाओ। एक बात सदा ध्यान रहे कि तुम्हारे ऊपर जंग इकट्ठी न हो, विचारों की धूल न जमे, शास्त्र तुम्हारे ऊपर बोझिल न हों, तुम मुक्त रहो।
जो मुक्त है वही मोक्ष पा सकेगा। और मुक्त होने का अर्थ सब दिशाओं में मुक्त होना है। तुम सोचते हो कि मोक्ष मिल जाएगा अगर हम जीवन को व्यवस्था दे दें, तो तुम गलती में हो। तुम्हारी व्यवस्था तुम्हारा कारागृह बनेगी; सुरक्षित रहोगे तुम, लेकिन मर चुके होओगे।
तो जिसे चुनना हो, चुनाव सुरक्षा-असुरक्षा के बीच नहीं है, चुनाव सुरक्षा और जीवन के बीच है। सुरक्षा चुनी तो मौत चुनी। अगर जीवन को चुनना हो तो असुरक्षा चुननी पड़ेगी।
असुरक्षा का अर्थ हैः हम रोज तैयार हैं। पता नहीं क्या होगा, पता नहीं कहां होंगे, पता नहीं कैसे होंगे! लेकिन अभी से फिक्र भी क्या करें! जब वह घड़ी आएगी, तब हम होंगे और हम अपने पूरे जीवन से उस घड़ी का मुकाबला करेंगे; अपने पूरे जीवन से, अपने पूरे होश से उस घड़ी को सुलझाने की चेष्टा करेंगे, उस घड़ी के पार होने की चेष्टा करेंगे, अतिक्रमण जारी रहेगा। तब तुम एक दिन पाओगे कि यह सातत्य नए होने का, यही चिरजीवन है, यही शाश्वत जीवन है। एस धम्मो सनंतनो!
फजा नीली-नीली हवा में सुरूर
ठहरते नहीं आशियां में तयूर
जब आकाश नीला-नीला हो--
फजा नीली-नीली हवा में सुरूर
और हवाओं में मस्ती हो और निमंत्रण हो--

ठहरते नहीं आशियां में तयूर
तब घोंसलों में नहीं टिकते पक्षी जिनके पास पंख हैं।
अस्पतालों की छोड़ दो, अगर तुम्हारा घर अस्पताल नहीं है। कारागृहों की छोड़ दो, अगर तुम्हारा घर कारागृह नहीं है।
ठहरते नहीं आशियां में तयूर
जिसके पास पंख हैं, वह पंखों को तौलता है आकाश में।
पंख और आकाश के बीच एक महत आकर्षण है। और ध्यान रखना, तुम ही नहीं हो
कि जब तुम पंखों को खोलते हो तो प्रसन्न होते हो, आकाश भी प्रसन्न होता है। जिस दिन आकाश में कोई पक्षी नहीं उड़ते, उस दिन आकाश की उदासी देखो! जिस दिन बगुलों की कतारें आकाश को चीर जाती हैं रजत-धार की भांति, उस दिन आकाश की प्रसन्नता देखो! जिस दिन पक्षी नहीं गाते, उस दिन आकाश की पीड़ा देखो! जिस दिन पक्षी गाते हैं, उस दिन आकाश का नृत्य देखो!
एक संवाद चल रहा है--व्यक्ति में और समष्टि में, अणु में और विराट में, बूंद में और सागर में। एक निरंतर संवाद चल रहा है।
पंख दिए, आकाश न दोगे
व्यर्थ मृत्यु जीवन की रेखा
निष्फल है कटु मधु का लेखा
केवल कपट, अगर कोयल को
कंठ दिए, मधुमास न दोगे
पंख दिए, आकाश न दोगे
जहां से पंख आ रहे हैं, वहीं से आकाश भी आ रहा है। वे साथ ही साथ आ रहे हैं, जोड़े में आ रहे हैं।
पंख दिए, आकाश न दोगे
तो पंख किसलिए होंगे? तुम्हारे भीतर अभियान की इतनी आकांक्षा दी है। तुम्हारे भीतर इतनी प्यास दी है नए-नए शिखरों को छूने की। तुम्हारे भीतर कैलाशों को पार कर जाने की इतनी गहन अभीप्सा दी है, तो निश्चित ही कहीं कोई कैलाश तुम्हारे पैरों के लिए पीड़ित होंगे, प्यासे होंगे, बुलाते होंगे! पंख दिए, आकाश न दोगे
तब तो बात बड़ी गड़बड़ हो जाएगी।
इसी का अर्थ ईश्वर है कि अस्तित्व में एक संवाद है। यहां कुछ भी व्यर्थ नहीं। अगर पंख हैं तो आकाश है। पंखों के होने के पहले आकाश है। भूख के पहले भोजन है। प्यास के पहले जल है।
पंख दिए, आकाश न दोगे
व्यर्थ मृत्यु जीवन की रेखा
निष्फल है कटु मधु का लेखा
केवल कपट--
तब तो जीवन एक कपट होगा!
केवल कपट, अगर कोयल को
कंठ दिए, मधुमास न दोगे
जब कोयल को कंठ दिया तो वसंत भी आता ही होगा, कहीं छिपा ही होगा। अन्यथा कोयल गाएगी कहां, गाएगी किसलिए?
तो तुम घबड़ाना मत। अपनी अभीप्सा को पहचानना। अगर तुम्हारी अभीप्सा दूर जाने की है, आकाश में उठ जाने की, तो सारी सुरक्षाओं के मोह छोड़ देना। घबड़ाना मत, जोखिम उठाना। जोखिम जीवन है।
पंख समझते हैं अंबर के
मौन अधर की भाषा
पंख समझते हैं अंबर के
मौन अधर की भाषा
तृषित न केवल कंठ
नीर भी है उतना ही प्यासा
तुम्हारा कंठ ही प्यासा नहीं पानी के लिए, पानी भी तुम्हारे कंठ के लिए इतना ही प्यासा है। इस संवाद का नाम ईश्वर है। अणु-विराट के बीच गुफ्तगू चल रही है। बूंद-सागर के बीच संवाद चल रहा है।

इसलिए अपनी अभीप्सा को पहचानना। मन की मत सुनना। मन तो मुर्दा है। भीतर के प्राणों की सुनना--प्राण क्या कहते हैं? प्राण तुम्हें रोज कहते हैं कि तुम्हारी जो जिंदगी तुमने बना ली है, ऊब से भरी है, थोथी है, कपट है। न तो तुम खुलकर गा रहे हो, क्योंकि तुम डर रहे हो; न तुम खुलकर उड़ रहे हो, क्योंकि तुम घबड़ा रहे हो; न तुम खुलकर जी रहे हो, क्योंकि डर है कहीं हाथ में जो है वह छूट न जाए।
अगर तुम्हें और विराट को पाना है तो हाथ में जो है वह छूटेगा ही। हाथ खाली करने होंगे, प्राण खाली करने होंगे। अगर तुम्हें आगे जाना है तो जिस जमीन पर तुम खड़े हो, उस जमीन को छोड़ना ही होगा, नहीं तो आगे कैसे जाओगे? अगर एक सीढ़ी चढ़ना है तो उस सीढ़ी से पैर उठा ही लेना होगा। माना कि जिस सीढ़ी पर तुम खड़े थे ज्यादा सुरक्षा थी, पता था कि सीढ़ी है, दूसरी सीढ़ी पता नहीं हो या न हो।
अभीप्सा का भरोसा करना। अगर उठने की आकांक्षा पैर में है तो सीढ़ी होगी। इस पैर की उठने की आकांक्षा और सीढ़ी का होना सुनिश्चित है, नहीं तो पैर उठना ही न चाहता। इस सुनिश्चय का नाम धर्म है। जिसने इस बात को समझ लिया, फिर भयभीत नहीं होता। और जब तुम दो-चार-दस प्रयोग करके देखोगे तो तुम पाओगेः अरे! मैं नाहक ही बंधा बैठा था, और-और सीढ़ियां थीं।
सितारों के आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
पंख समझते हैं अंबर के
मौन अधर की भाषा
तृषित न केवल कंठ
नीर भी है उतना ही प्यासा

आखिरी प्रश्नः क्या यह सच नहीं है कि जब तक मनुष्य अधूरा, अपूर्ण है,
तब तक जीवन के छंद-राग उसका पीछा नहीं छोड़ेंगे? प्रश्न यह है कि वह पूर्ण कैसे हो?

यह सच है कि जब तक मनुष्य अपूर्ण है, तब तक जीवन के रंग-राग उसका पीछा न छोड़ेंगे। और यह भी सच है--अब जरा कठिनाई होगी समझने में--कि जब तक रंग-राग पीछा न छोड़ दें, तब तक मनुष्य पूर्ण न होगा। विरोधाभासी हो गई बात। मगर मजबूरी है, तथ्य ऐसा ही है।
असल बात ऐसी है कि तुम जैसे पूछो कि अंडा पहले या मुर्गी पहले। अगर मैं कहूं अंडा, तो बात वहीं गलत हो गई, क्योंकि अंडा बिना मुर्गी के आएगा कैसे? कोई मुर्गी रखेगी, तभी तो अंडा होगा। अगर मैं कहूं मुर्गी, तो भी बात गलत हो गई, क्योंकि मुर्गी आएगी कैसे; जब तक कोई अंडा न फूटेगा, मुर्गी प्रगट कैसे होगी?
दार्शनिक सदियों से विचारते रहे हैंः अंडा पहले या मुर्गी? अभी भी विचारते हैं। कोई सिद्ध करता है, मुर्गी; कोई सिद्ध करता है, अंडा। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि अंडा-मुर्गी दो हैं, इस मान्यता में ही भ्रांति है। इसलिए उलटा उलझा हुआ प्रश्न खड़ा हो गया। प्रश्न को देखने में ही भूल हो गई। अंडा और मुर्गी दो नहीं हैं--एक ही चीज के दो कदम हैं। अंडा वह मुर्गी है, जो होने के रास्ते पर है। मुर्गी वह अंडा है, जो हो गया। अंडा और मुर्गी एक ही जीवन-ऊर्जा के दो पड़ाव हैं। इसलिए जब तुम उनको बांटकर पूछते हो कि कौन पहले, तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। कौन पहले है?
अगर जीवन का छंद-राग न छूटे तो तुम पूर्ण न होओगे। अगर जीवन पूर्ण न हो
तो छंद-राग न छूटेगा। फिर करना क्या है? छंद-राग को समझो। अंडे-मुर्गी की व्यर्थ चिंता में मत पड़ो--छंद-राग को समझो। जैसे-जैसे तुम्हारी समझ जीवन के छंद और राग की, जीवन के भोग की गहरी होगी, वैसे-वैसे छंद-राग छूटेगा; वैसे-वैसे साथ ही साथ युगपत तुम्हारी पूर्णता उभरेगी। इधर छंद-राग छूटेगा, उधर पूर्णता उभरेगी। ये एक ही घटना के दो पहलू हैं।
जैसे तुमने पानी को गरम किया, इधर पानी गरम होने लगा, उधर पानी भाप बनने लगता है। पहले पानी गरम होता है सौ डिग्री तक, तब भाप बनता है? या

पहले भाप बन जाता है तब सौ डिग्री तक गरम होता है? नहीं, सौ डिग्री तक गरम होते ही दोनों घटनाएं एक साथ घटती हैंः इधर पानी गरम, उधर भाप।
जैसे ही तुम्हारे जीवन के राग-रंग की समझ गहरी होगी--समझ ही, कुछ और करना नहीं है। तुम जो भी कर रहे हो, ठीक ही कर रहे हो तुम्हारी दशा में। निंदा में मत पड़ जाना। निंदा इसलिए खड़ी हो जाती है कि तुमसे बड़ी दशा के लोग उसे व्यर्थ कहते हैं।
यह ऐसा ही है जैसे छोटा बच्चा खिलौनों से खेल रहा है। तुम पहुंच गए और तुमने कहा, क्या बेवकूफी कर रहा है? बंद कर! खिलौनों में क्या सार है? लेकिन तुम ठीक बात नहीं कह रहे। तुम्हारी अवस्था में खिलौनों में कोई सार न रहा, लेकिन बच्चे की अवस्था में सार है। और अगर बच्चे से जबरदस्ती खिलौने छीन लिए गए तो वह कभी इतना प्रौढ़ न हो पाएगा, जब कि खिलौने व्यर्थ हो जाएं। अगर बच्चे से खिलौने समय के पहले छीन लिए गए तो खिलौनों की आकांक्षा भीतर बनी रह जाएगी; वह नए-नए रूपों में प्रगट होती रहेगी।
सोचो! छोटा बच्चा एक कार रखे बैठा है और खेल रहा है; वह बड़ा हो जाएगा, फिर भी कार से ही खेलेगा। अब कार बड़ी ले आएगा माना, मगर खेल जारी रहेगा। अब भी कार के प्रति वही पागलपन रहेगा जो छोटे बच्चे का खिलौने वाली कार के प्रति था, कोई भेद न पड़ेगा।
छोटे बच्चे गुड्डा-गुड्डियों का शादी-विवाह करवा रहे हैं, मत रोको, करवा लेने दो; नहीं तो राम-सीता की बारात निकालेंगे, वे मानेंगे नहीं। राम-सीता जरा बड़े साइज के गुड्डा-गुड्डी हैं। खेल जारी रहेगा। ज्यादा खतरनाक हो गया यह मामला।
जो जिस स्थिति में है, उस स्थिति में जो भी किया जा रहा है, ठीक है। तुलना तब पैदा होती है जब तुम दूसरी स्थिति के लोगों की बात सुन लेते हो, तो झंझट खड़ी हो जाती है। बुद्ध ने कह दिया, सब व्यर्थ है राग-रंग, तुम मुश्किल में पड़े! तुम अभी बुद्ध नहीं हो। अभी राग-रंग सार्थक था, इसलिए तुम उसमें थे। अब यह बुद्ध ने एक अड़चन खड़ी कर दी। अब तुम्हारे सामने सवाल उठता है कि राग-रंग छोड़ें! मैं तुमसे कहता हूं, छोड़ने की जल्दी मत करना। वहीं त्यागी भूल कर लेता है। समझने की कोशिश करना।
बुद्ध कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। ठीक मान मत लेना। बुद्ध कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे; गलत कहने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि बुद्ध तुम्हारी अवस्था से गुजर चुके हैं, तुमसे आगे जा चुके हैं, इन खेल-खिलौनों में खुद भी रहे थे। इसलिए जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। लेकिन यह बुद्ध का वक्तव्य है, तुम्हारा मत बना लेना। तुम तो समझने की कोशिश करना इस खेल को। इस खेल की समझ में ही तुम्हें धीरे-धीरे दिखाई पड़ेगा कि बुद्ध ठीक कहते हैं। यह ठीक होना तुम्हारा अनुभव भी बन जाएगा। अचानक तुम पाओगेः खेल-खिलौने छूटने लगे, पड़े रह गए एक कोने में। एक दिन हर बच्चे के खेल-खिलौने कोने में पड़े रह जाते हैं। इसके पहले सो भी नहीं सकता था उनके बिना, रात भी छाती से लगाकर सोता था; फिर एक दिन कोने में पड़े रह जाते हैं, फिर कचरे-घर में चले जाते हैं, फिर याद भी नहीं आती। वर्षों बीत जाते हैं, याद भी नहीं आती कि क्या हुआ उन खिलौनों का, जिनके बिना सोना भी मुश्किल था।
जरूर तुम भी आगे बढ़ जाओगे। लेकिन जल्दी मत करना। जीवन में कोई जल्दबाजी नहीं हो सकती। जीवन धीरे-धीरे पकता है। राग-रंग हैं, ठीक है। तुम्हारी अवस्था में जो जरूरी है, वह तुम्हें मिला है। हर आदमी को जो जरूरी है जिस अवस्था में, मिलता है। यही तो जीवन का संगीत है।

समझ को बढ़ाना। समझ के बढ़ते ही तुम जैसे समझ में ऊंचे उठोगे, तुम पाओगेः जो जरूरी नहीं था, वह छूटने लगा, और अब जो जरूरी है वह मिलने लगा।
जीवन सदा तुम्हारी जरूरत पूरा करने को आतुर है। कंठ ही नहीं प्यासा है, जल भी प्यासा है।
एक ही बात ध्यान में रखने की है कि तुम जहां हो, उस स्थिति को जितना सजग होकर जी सको उतना शुभ है। पूर्णता भी आएगी, राग-रंग भी छूट जाएंगे। राग-रंग भी छूटेंगे, पूर्णता भी आएगी। वह एक ही साथ घटता जाएगा। उसकी तुम चिंता ही मत रखो। उसका हिसाब भी मत रखो। तुम इतना ही कर पाओ तो बस कि तुम

जहां हो, जैसे हो, जो कर रहे हो, बिना निंदा के, बिना निर्णय के, बिना न्यायाधीश बने, बिना जल्दबाजी किए, चुपचाप समझने की कोशिश करते जाना। हर अनुभव तुम्हारी समझ को गहरा जाए। हर अनुभव--दुख का, सुख का, हार का, जीत का, धन का, निर्धनता का, महल का, भीख का--हर अनुभव तुम्हारी समझ को गहराता जाए, बस। ऐसा न हो कि अनुभव तो गुजर जाए और समझ वहीं की वहीं रह जाए, तब तुम अटक गए।
एक ही चीज को मैं पाप कहता हूं--और वह यह कि अनुभव आए, चला जाए, और समझ वहीं की वहीं रह जाए। बस एक पाप है। फिर इस पाप से सारे पाप पैदा होते हैं। एक भूल है--एकमात्र भूल!
क्रोध तुम करो, इससे मैं इनकार नहीं करता--करोगे ही। क्या कर सकते हो तुम? जहां तुम हो वहां जरूरी है। लेकिन हर क्रोध तुम्हें समझदार बनाता जाए; हर क्रोध के बाद तुम्हारी सजगता बढ़ती जाए; हर क्रोध से गुजरते समय तुम क्रोध की पहचान से भरते जाओ। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि क्रोध के द्वारा ही तुमने जो समझ का इत्र निचोड़ा; वही तुम्हें क्रोध से मुक्त करा जाता है। क्रोध में ही क्रोध से मुक्त होने के आधार छिपे हैं।
कामवासना है, कोई फिक्र न करना; लेकिन बोधपूर्वक कामवासना में उतरना, होशपूर्वक उतरना। कामवासना से ही धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य का इत्र निचुड़ आता है, जैसे कीचड़ से कमल उग आते हैं, ऐसे ही जीवन के कलमष से, अंधेरे से, जीवन के सौंदर्य का जन्म होता है।
बस, जरा जागकर चलना।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
तैतीसवां प्रवचन

एकला चलो रे

ये च खो सम्मदक्खाने धम्मे धम्मानुवत्तिनो।
ते जना पारमेस्सन्ति मच्युधेय्यं सुदुत्तरं।। 77।।

कण्हं धम्मं विप्पहाय सुक्कं भविथ पंडितो।
ओका अनौकं आगम्म विवेके यत्थ दूरमं।। 78।।

तत्राभिरतिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिंचनो।
परियोदपेय्य अत्तानं चित्तक्लेसेहि पंडिता।। 79।।

ये सं सम्बोधि-अड्गे सु समा चित्तं सुभावितं।
आदान-परिनिस्सग्गे अनुपादाय ये रता।
रवीणासवा जुतीमंतो ते लोके परिनिब्बुता।। 80।।

सम्राट बहादुरशाह जफर के शब्द हैं--सम्राट के हैं, इसलिए सोचने जैसे
भी बहुत; ऐसे तो कभी ऐसी बातें भिखारी भी कह देते हैं, लेकिन संभावना है कि भिखारी के मन में अपने को सांत्वना देने की आकांक्षा हो। जब ऐसी बात कोई सम्राट कहता है तो सांत्वना का सवाल नहीं है, किसी सत्य का साक्षात हुआ हो तभी ऐसा वक्तव्य संभव है।
दो दिन की जिंदगी में न इतना मचल के चल
दुनिया है चलचलाव का रस्ता संभल के चल
जिनके पास है, उन्हें ही पता चलता है कि संपदा व्यर्थ है। जिनके पास शक्ति है, उन्हें पता चलता है कि शक्ति सार्थक नहीं। जिनके पास नहीं है, वे तो वासना के महल बनाते ही रहते हैं। जिनके पास नहीं है, वे तो कल्पना के जाल बुनते ही रहते हैं।
कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जिनके पास नहीं है, वे भी ऐसी बातें करने लगते हैं, जो ज्ञान की मालूम पड़ती हैं, लेकिन सौ में निन्यानबे मौकों पर वे बातें धोखे से भरी हैं। अपने को समझाने के लिए भिखमंगा भी महल की तरफ देखकर कह सकता है, कुछ सार नहीं वहां--समझाने को, कि अगर सार होता तो मैं महल को पा ही लेता न! सार नहीं है, इसलिए छोड़ा हुआ है।
जिसे हम पा नहीं पाते, उसे मत समझना कि हमने छोड़ा है। जिसे हम पाकर छोड़ते हैं, उसे ही समझना कि छोड़ा है!
जीवन में जीवन के जो परम गुह्य सत्य हैं, वे केवल उन्हें ही पता चलते हैं, जिन्होंने यह दौड़ पूरी कर ली; जो पके; जिन्होंने जिंदगी में जल्दबाजी न की, अधैर्य न बरता; जो समय के पहले भाग न खड़े हुए। पलायन से कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचा है। और न पराजय से कभी त्याग फलित हुआ है।
इसलिए उपनिषद कहते हैंः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्याग किया है। जिसने भोगा ही नहीं, वह त्याग न कर सकेगा। उसके त्याग में भोग की वासना दबी ही रहेगी, छिपी ही रहेगी, बनी ही रहेगी। वह त्याग भी करेगा तो भोग के लिए ही करेगा; इसी आशा में करेगा कि किसी परलोक में भोग मिलने को है।
जिसका त्याग भोग से आया, उसके मन से परलोक की भाषा ही समाप्त हो जाती है। क्योंकि जहां वासना नहीं है, वहां परलोक कैसा? जहां वासना नहीं है, वहां स्वर्ग कैसा? जहां वासना नहीं है, वहां अप्सराएं कैसी? जहां वासना नहीं है, वहां कल्पवृक्ष नहीं लगते। कल्पवृक्ष वासनाओं का ही विस्तार है-- और ध्यान रखना, पराजित वासनाओं का; हारे हुए मन का, थके हुए मन का। जो इस जिंदगी में जीत न पाया, वह परलोक की जिंदगी में जीतने के सपने देखता है। कार्ल मार्क्स के वक्तव्य में सचाई है कि धर्म अफीम का नशा है। सौ में निन्यानबे प्रतिशत लोगों के संबंध में मार्क्स का वक्तव्य बिल्कुल सही है; धर्म अफीम का नशा है। वक्तव्य गलत है, क्योंकि वह जो एक प्रतिशत बच रहा,

उसके संबंध में वक्तव्य सही नहीं है। किसी बुद्ध के संबंध में, किसी महावीर के संबंध में, किसी कृष्ण के संबंध में वक्तव्य सही नहीं है; लेकिन निन्यानबे प्रतिशत लोगों के संबंध में सही है।
आदमी दुख में रहा है, इसलिए स्वर्ग की कल्पनाएं पैदा करता है। उन कल्पनाओं की अफीम घेर लेती है मन को। यहां के दुख सहने योग्य हो जाते हैं वहां के सुख की आशा में। आज की तकलीफ को आदमी झेल लेता है कल के भरोसे में। रात का अंधेरापन भी अंधेरा नहीं मालूम पड़ता, सुबह कल होगी। आदमी चाह के सहारे चलता जाता है।
ध्यान रखना, धर्म तुम्हारे लिए अफीम न बन जाए। धर्म अफीम बन सकता है; खतरा है। धर्म जागरण भी बन सकता है और गहन मूर्च्छा भी। सब कुछ तुम पर निर्भर है। होशियार, जहर को भी पीता है और औषधि हो जाती है। नासमझ, अमृत भी पीए तो भी मृत्यु घट सकती है। सारी बात तुम पर निर्भर है। अंततः तुम्हीं निर्णायक हो।
तो यह मत सोचना कि धर्म होने से ही धर्म तुम्हारे लिए मुक्ति का मार्ग
हो जाएगा। तुम उससे बंधन भी ढाल सकते हो। तुम उससे जंजीरें भी बना सकते हो। वही बहुत लोगों ने बनाई हैं। तुम्हारा मंदिर तुम्हें परमात्मा तक पहुंचाने का द्वार भी बन सकता है--गुरुद्वारा भी हो सकता है; और यह भी हो सकता है कि वही दीवाल हो जाए; उसके कारण ही तुम परमात्मा तक न पहुंच पाओ। इसलिए सारी बात तुम पर निर्भर है, तुम्हारे होश पर निर्भर है। धर्म न
तो जहर है, न अमृत; धर्म तो एक तटस्थ सत्य है। तुम कैसा उसका उपयोग करोगे, तुम पर निर्भर है। तुम उसी रस्सी से कुएं से पानी खींच ले सकते हो। प्यास से मरते होओ तो कुएं का जल तुम्हें बचा ले सकता है। तुम उसी रस्सी से फांसी भी लगा सकते हो। रस्सी वही है, तुम भी वही हो, लेकिन तुम्हारे और रस्सी के बीच का संबंध वही नहीं है।
अधिक लोग धर्म के कारण कारागृहों में बंद हैं। अधिक लोग धर्म के कारण जीवन में गति ही नहीं कर पाते। उनका धर्म चट्टान की तरह उनकी छाती से अटका है। अधिक लोगों के लिए धर्म नाव नहीं बना, धर्म ने ही मझधार में डुबाया है, बुरी तरह डुबाया है।
बुद्ध का आज का जो पहला सूत्र है, वह समझ लेने जैसा है।
"जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं, वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार करेंगे।"
"भली प्रकार उपदिष्ट... ।"
बहुत सी बातें समझने जैसी हैं। तुमने धर्म को शास्त्र से अगर पाया तो खतरा है; क्योंकि शास्त्र तो मुर्दा है। शास्त्र तो जीवंत नहीं है। शास्त्र तो पढ़कर तुम जो अर्थ करोगे, वे तुम्हारे होंगे, शास्त्र के नहीं होंगे।
माना, गीता तुम पढ़ोगे, लेकिन गीता वही नहीं होगी, जो कृष्ण ने अर्जुन
को कही थी। वह भी नहीं होगी, जो अर्जुन ने कृष्ण से सुनी थी। जब तुम गीता पढ़ोगे तो तुम्हीं कृष्ण होओगे, और तुम्हीं अर्जुन होओगे। कृष्ण जो कहेंगे, उसका अर्थ भी तुम करोगे; अर्जुन जो सुनेगा, उसका अर्थ भी तुम करोगे। यह गीता तुम्हारी ही होगी।
मैंने सुना है, एक मुसलमान नवाब अपने राज्य की यात्रा पर गया हुआ था।
एक गांव में उसने बड़ी भीड़ लगी देखी। पूछा, क्या हो रहा है? तो किसी ने कहा, यह रामायण से राजा राम की कथा पढ़ी जा रही है। तो उसने कहा, मेरे राज्य में और किसी राजा की कथा चले, यह बरदाश्त के बाहर है। कहो पंडित को, कथा मेरी कहे। राज्य मेरा है, किसी और राजा की कथा चल रही है!
पंडित बड़ा होशियार था, घाघ था, जैसे कि पंडित होते हैं। उसने कहा, हुजूर! कथा बड़ी है, लिखने में समय लगेगा। छह महीने में आपकी कथा लिखकर हाजिर कर दूंगा, फिर हम सुनाने लगेंगे। हमें क्या लेना-देना राजा राम से? छह महीने बाद वह पंडित आया। उसने कहा, कथा तो लिख गई, एक अड़चन आ रही है; आपकी सीता को कौन ले भागा? आप उसका नाम बता दें तो मैं लिख दूं। क्योंकि बिना सीता के चोरी गए कथा बनती ही नहीं। आपकी सीता को कौन चुरा ले गया है? उस शैतान का नाम मुझे बता दें।

उस नवाब ने कहा, भई ठहरो; यह कहां की झंझट में उलझाते हो? ऐसी कथा से बाज आए। तुम अपनी पुरानी जो कथा कहते थे, वही कहो। तुम्हारी कथा के लिए मेरी सीता को चोरी करवाओगे? यह तो महंगा सौदा हो गया।
जब तुम रामायण पढ़ोगे तो तुम राम की कथा में अपने को आरोपित करोगे। राम
की कथा तुम्हारा ही प्रक्षेपण हो जाएगी। राम की सीता थोड़े ही चोरी जाएगी, तुम्हारी ही सीता चोरी जाएगी।
जब तुम गीता पढ़ोगे तो कृष्ण जो कहेंगे, वह थोड़े ही तुम सुनोगे, तुम जो सुन सकते हो, वही सुनोगे। यह कुरुक्षेत्र का युद्ध थोड़े ही होगा, यह तो तुम्हारे भीतर का ही द्वंद्व होगा, जो कुरुक्षेत्र के युद्ध पर फैल जाएगा, विस्तीर्ण हो जाएगा।
शास्त्र से जिसने धर्म पाया, उसने बंधन पाए, अफीम पाई।
इसीलिए बुद्ध कहते हैं, "ठीक तरह से उपदिष्ट... ।"
जीवंत गुरु से पाना, जहां अभी उपदेश बहता हो। जीवित गुरु से पाने की कोशिश करना। तो ही संभावना है कि तुम धर्म की अफीम न बनाओगे; अन्यथा बहुत डर है, तुम वैसे ही सोए हो... ।
तुमने ख्याल किया, रात तुम तय करके सोते हो, सुबह चार बजे उठना है। अलार्म भी भर देते हो। फिर नींद में तुम अलार्म भी सुनते हो तो अलार्म सुनाई नहीं पड़ता। तुम्हारा स्वप्न अलार्म की भी व्याख्या कर लेता है। तुम्हारा स्वप्न कहता है, अहा! मंदिर की घंटियां बज रही हैं। अलार्म को काट दिया तुमने। अलार्म बज ही नहीं रहा, उठने का कोई सवाल ही नहीं। मंदिर की घंटियों के कलरव नाद में तुम और गहरी नींद में करवट लेकर सो जाते हो। सुबह जागकर पता चलता है, अपने को धोखा दे लिया। अलार्म से भी बचा लिया अपने को। नींद बड़ी कुशल है।
मूर्च्छा बड़ी कुशल है। मूर्च्छा अपने को बचाने की कोशिश कर रही है-- कहीं मिट न जाए। मूर्च्छा ऐसी व्याख्याएं करती है, जिससे नष्ट न हो जाए।
मूर्च्छा ऐसी तरकीबें निकालती है कि तुम संदेह भी न कर पाओगे।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, "ठीक से उपदिष्ट।"
पहली बातः जीवंत गुरु से खोजना धर्म को; जहां उपदेश की सरिता अभी बहती हो। बासे शास्त्रों के पन्नों से मत खोजना। क्योंकि शास्त्र असहाय है। तुम कुछ अर्थ करोगे, गलत अर्थ करोगे, शास्त्र कुछ भी न कह सकेगा।
फर्क समझो; अलार्म की घड़ी बजती है तो तुम स्वप्न में व्याख्या कर लेते हो। लेकिन अगर तुमने किसी जीवित व्यक्ति को कह रखा है, अपनी पत्नी को कह रखा है कि उठा देना, तो तुम्हें व्याख्या न करने देगी। तो तुम्हें झकझोरेगी, जगाएगी; तुम लाख कोशिश करो कि अप्सरा दिखाई पड़ रही है और सुलाने की कोशिश कर रही है सपने में, लेकिन पत्नी इतनी आसानी से न मान जाएगी। तुम्हें खींचकर बाहर निकाल देगी।
जीवंत व्यक्ति ही तुम्हें खींचकर बाहर निकाल पाएगा। शास्त्र में खतरा है, सिद्धांत में खतरा है। खतरा उनमें है, ऐसा नहीं है, खतरा तुममें है। और चूंकि शास्त्र तो असहाय है। तुम जो व्याख्या करोगे गलत, तो शास्त्र यह न कह सकेगा, गलत है यह व्याख्या। यह मेरा मंतव्य नहीं। यह मैंने कहना नहीं चाहा है, यह तुमने ही अपना हिसाब लगा लिया है। शास्त्र कुछ भी न कह सकेगा। शास्त्र चुपचाप पड़ा रहेगा। शास्त्र के पास कोई आत्मा नहीं है। जहां से आत्मा खो गई हो, जहां अंगारा बुझ गया हो, उस राख से मत खोजना अपने धर्म को; अन्यथा तुम्हारी पूरी जिंदगी राख हो जाएगी। और अक्सर ऐसा होता है कि हम राख से ही धर्म को खोजते हैं।
जीवित व्यक्ति से तो हम बचते हैं। क्योंकि जीवित व्यक्ति के साथ खतरा
है कि कहीं उठा ही न दे! मरे हुए को पूजते हैं। जीते को तो पहचानते भी नहीं। जब बुद्ध पृथ्वी पर चलते हैं तो कोई चिंता नहीं लेता। जब मर जाते हैं तो हजारों-हजारों साल तक पूजा चलती है। यह पूजा व्यर्थ है। जीवित बुद्ध के चरणों में झुकाया गया जरा सा सिर--क्रांति घटित हो जाती है। और यह हजारों साल की पूजा और ये पूजा के विधान और ये फूल और नैवेद्य, सब व्यर्थ चले जा रहे हैं। ये पत्थर की मूर्ति के चरणों पर गिर रहे हैं।

पत्थर की मूर्ति के सामने झुकना कितना आसान है! क्योंकि वहां कोई है
ही नहीं, जिसके सामने तुम झुक रहे हो। तुम्हारी ही मूर्ति है, तुम्हीं झुकने वाले हो। जैसे कोई अपने ही दर्पण के सामने, अपनी ही तस्वीर के सामने झुकता हो--खेल है।
परिचय करना तो है बस मिट्टी का स्वभाव
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बनकर
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान गया पहचाना है
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान गया पहचाना है
तुम इतनी देर लगा देते हो पहचानने में, परिचय ही नहीं बना पाते।
कारण है। क्योंकि पहली तो बात यह है कि जब कहीं किसी व्यक्तित्व में समाधि के फूल लगते हैं तो वे इतने अपरिचित लोक के फूल हैं कि तुम्हारे फूलों से उनका कोई संबंध नहीं जुड़ता। जब वैसी सुगंध उतरती है आकाश से तो तुम्हारी सुगंधों से कहीं मेल नहीं खाती। तुम्हारा जो भी जानना है, वह सब अस्तव्यस्त हो जाता है। तुम्हारे जानने के ढांचों में तुम बुद्धों को नहीं बिठा पाते।
ढांचे तोड़ने को तुम तैयार नहीं; तुम बुद्धों को न पहचानने को तैयार भला हो जाओ। तुम चाहते हो कि बुद्ध पुरुष तुम्हारे हिसाब से हों। तुम्हारे पास बंधी लकीरें हैं, व्याख्याएं हैं। और जब भी कोई बुद्ध पुरुष होता है तो अव्याख्य! बुद्ध पुरुष से ज्यादा अजनबी आदमी तुम कहीं खोज थोड़े ही पाओगे! तुम्हारी किसी भी लकीर में बंधता नहीं--बंध नहीं सकता। तुम्हारी लकीर में जो बंध जाए, वह बुद्ध नहीं। तुम्हारी लकीर में जो बंध जाए, वह तुम्हारा अनुयायी होगा, वह तुम्हारा सदगुरु न हो पाएगा। तुम उन्हीं की पूजा करते हो, जो तुम्हारे पीछे चलते हैं।
बड़ा खेल है। बड़ा आश्चर्यजनक खेल है। और कितना अंधापन है कि हम इसको देख भी नहीं पाते!
जब अलौकिक का अवतरण होगा, जब अनिर्वचनीय उतरेगा, तो तुम्हारे सब ढांचे, तुम्हारी सारी तर्क की कोटियां व्यर्थ हो जाएंगी। तुम अवाक हो जाओगे। तुम आश्चर्यचकित, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाओगे। एक क्षण को तो तुम्हारा सारा व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो जाएगा, एक अराजकता पैदा हो जाएगी। बुद्ध पुरुषों के पास तुम्हारे जीवन की सारी व्यवस्था खंड-खंड हो जाएगी। तुम्हें फिर से अपने को निर्मित करना होगा। तुम्हारे कल तक बनाए गए भवन गिर जाएंगे। तुम्हारी कल तक चलाई गई नावें डूब जाएंगी।
बुद्ध कहते हैं, "जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं... ।"
तो पहली तो बात, उपदिष्ट हो धर्म; जीवंत उपदेश की धारा से पकड़ा गया हो। कोई जीवित व्यक्ति मौजूद हो, जो तुम्हें गलत अर्थ न करने दे। कोई मौजूद हो, जो तुम्हें तुम्हारे अर्थ न करने दे; जो तुम्हें सब तरफ से जगाता रहे। तुम हजार कोशिश करो, लेकिन जो सजगता से तुम्हें देखता रहे कि तुम कहीं अपनी मूर्च्छा को पोषित तो नहीं कर रहे हो!
पहली बात, उपदिष्ट हो धर्म; शास्ता से लिया जाए, शास्त्र से नहीं। शास्त्र तो शास्ताओं से बनते हैं। शास्त्रों का जन्म शास्ता में होता है। कोई, जिसने जान लिया सत्य को, उसके वक्तव्य, उसके वचन शास्त्र बनते हैं। तो जब जीवंत घटना घट रही हो, गंगा जब उतरती हो हिमालय से, तभी तुम स्नान कर लेना। तुम करोगे स्नान, लेकिन तुम बड़ी बाद करते हो, काशी में जाकर पकड़ते हो। तब तक गंगा मुर्दा हो चुकी होती है। तब तक न मालूम कितने घाट उसे विकृत कर चुके होते हैं, न मालूम कितने मुर्दे उसमें बह चुके होते हैं, लाशें सड़ चुकी होती हैं। और न मालूम कितने गांवों की जिंदगी की गंदगी और गुबार उसमें इकट्ठा हो गया होता है।
जब हिमालय से उतरती हो, जब गंगोत्री में गंगा पैदा होती हो, जहां एक-एक बूंद स्वच्छ और सुंदर हो, जहां स्वर्ग से अभी-अभी आती हो ताजी, जहां आदमी

की छाप न पड़ी हो, जहां आदमी के संसार की गंदगी ने उसे विकृत न किया हो, अव्यभिचारित, कुंआरी हो जहां, वहीं तुम पकड़ लेना।
तुम पकड़ोगे, तुम तीर्थ बनाओगे, लेकिन तुम्हारे तीर्थ बड़े बाद में बनते हैं।
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान गया पहचाना है
तुम तभी पहचान लेना, जब मेहमान मौजूद हो। जाने के बाद पूजा से कुछ भी न होगा।
तो पहली बात, उपदिष्ट धर्म--शास्ता से लिया जाए।
बुद्ध के पास लोग आ जाते थे और वे वेदों की दुहाई देते थे कि वेद में ऐसा कहा है, आप ऐसा कहते हैं; उपनिषद में ऐसा कहा है, आप ऐसा कहते हैं।
आदमी बड़ा दयनीय है। जहां से उपनिषद पैदा होते हैं, वह आदमी मौजूद है।
जहां से वेद जन्म लिए हैं, वह आदमी मौजूद है। तुम उसके सामने वेदों की दुहाई दे रहे हो! और तुम यह चेष्टा करते हो कि यह आदमी गलत है, क्योंकि वेद में कुछ और कहा है।
और वेद में जो कहा है, वह तुमने ही अर्थ किया है। वह वेद ने नहीं कहा है, तुमने कहा है। तुम वेद को गवाह बनाकर ला रहे हो। तुम अपने पीछे वेद को खड़ा कर रहे हो। तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है। तुम वेद की साक्षी ले रहे हो। और तुम किससे लड़ रहे हो?
तो बुद्ध कहते, तुम अपने वेद को बदल लो। तुम अपने उपनिषद में संशोधन
कर लो। जरूर कहीं भूल हो गई होगी। लेकिन जब भी कोई तुमसे कहेगा, अपने उपनिषद में संशोधन कर लो, तुम दुश्मन हो जाओगे। तुम पीठ फेर लोगे। लगेगा, यह आदमी तो धर्म का दुश्मन है।
यह बड़ी चकित करने वाली बात है। जब भी कोई धर्म को इस पृथ्वी पर लाता है, तभी वह धर्म का दुश्मन मालूम होता है। जिन्हें तुम धर्म के मित्र समझते हो, वे तुम्हारे ही खरीदे हुए पंडित-पुजारी हैं।
फिर दूसरी बात बुद्ध कहते हैं, भली प्रकार उपदिष्ट।
सभी का यह सौभाग्य नहीं। सत्य को तो करोड़ों में कभी एक व्यक्ति उपलब्ध होता है। फिर जो व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होते हैं, उनमें भी सभी का सौभाग्य नहीं कि वे ठीक से कह सकें, जो उन्होंने जाना है। वह फिर करोड़ों में कभी एक-आध को उपलब्ध होता है। करोड़ों में कभी कोई एक बुद्ध होता है, करोड़ों बुद्धों में कोई एक प्रगट होता है, शास्ता बनता है, सदगुरु होता है। क्योंकि जान लेना एक बात, कहना बड़ी और बात। जान लेना एक बात, जना देना बड़ी और बात। जानने से भी ज्यादा कठिन है जना देना।
तुम देखते हो, सुबह सूरज निकला, सौंदर्य का आविर्भाव हुआ, तुम उसमें ओतप्रोत हो गए, नहा गए, लेकिन कभी कोई कवि उसको गा पाएगा। तुम न कह सकोगे कि क्या हुआ। कोई कवि जब गाएगा, तब तुम भला पहचान लो कि ठीक-ठीक ऐसी ही मेरी भी अनुभूति हुई थी। ठीक मेरी ही बात, जो मैंने कहनी चाही थी, न कह पाया, तुमने कह दी।
कोई चित्रकार कभी उसको रंग दे पाएगा। किसी की तूलिका से वह उतरेगा। तुम उसे रंग न पाओगे। सूरज तो तुमने रोज उगते देखा है, किसी दिन बैठकर चित्र बनाने की कोशिश करना; तब प्रयास बचकाना मालूम होगा। तुम उसे किसी को बताना न चाहोगे।
पक्षियों का संगीत तो तुमने सुना है, रात तारों के संगीत में भी तुमने कभी अनुभूति के कंपन पाए हैं, लेकिन कभी कोई संगीतज्ञ उस धुन को उतार पाएगा उस तल तक, जहां अभिव्यक्ति हो पाती है।
तो पहले तो उपदिष्ट धर्म को खोजना; फिर वह भी ऐसे व्यक्ति से, जो ठीक
से तुम्हें समझा पाए। क्योंकि ऐसे तो धर्म बड़ी बेबूझ बात है। और अगर समझाने वाला भी बहुत साफ-सुथरा न हो तो और उलझन हो जाती है। सुलझाने की बजाय लोग उलझा जाते हैं। इससे तो बेहतर था, तुम अपने अंधेरे में ही रहते। ये रोशनी की अटपटी बातें तुम्हें और अटपटा जाएंगी।
धर्म ही बेबूझ है, अतर्क्य है। अगर कोई बहुत ही कुशल चितेरा हो तो थोड़ा बहुत तुम्हारी आंखों के योग्य धर्म के चित्रण को बना पाएगा। बात

शब्दों के बाहर है, अगर शब्दों का कोई धनी हो तो शायद शब्दों में थोड़ी सी धुन उतार लाएगा।
बात तो निःशब्द की है, मौन में ही जानी जाती है। शब्द के माध्यम में उतारना ऐसे ही है, जैसे कोई सुंदर फूल को पत्थर के माध्यम में बनाए।
माध्यम ऐसा है कि फूल की कोमलता तो खो जाएगी। माध्यम ऐसा है कि फूल की कमनीयता तो खो जाएगी। माध्यम ऐसा है कि फूल की क्षणभंगुरता तो खो जाएगी। लेकिन कभी-कभी कोई कुशल कलाकार पत्थर में भी फूल को उतार लेता है। पत्थर के कठोर माध्यम में भी कमनीयता को डाल देता है, घोल देता है।
तो बुद्ध कहते हैं, पहले तो पकड़ना वहां से, जहां गंगा अभी पैदा होती हो। जब मेहमान मौजूद हो, पहचान लेना। और फिर ठीक से उपदिष्ट! नहीं तो तुम और उलझ जाओगे। धर्म अतर्क्य है; तर्क से उसका कोई संबंध नहीं है।
हम उलटी ही बातें कर रहे हैं। पहला तो हम यह करते हैं, हम उनसे धर्म समझते हैं, जिन्हें खुद ही पता नहीं। हम उन चिकित्सकों के पास जाकर इलाज खोजते हैं, जो खुद बीमार हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी की आंखों में खराबी हो गई थी और उसे हर चीज दो दिखाई पड़ने लगी थी। वह गरीब आदमी था, किसान था गांव का; वह शहर आया और डाक्टर के पास गया। संयोग की बात! डाक्टर को भी वही बीमारी थी। और भी पुरानी थी। उन्हें एक-एक चीजें चार करके दिखाई पड़ती थीं। और जब उस गरीब आदमी ने डाक्टर को कहा कि मेरी यह तकलीफ है, इससे मुझे छुटकारा दिलाएं। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। रास्ते पर चलना मुश्किल हो गया है। एक-एक चीज दो करके दिखाई देती है। उस डाक्टर ने कहा, घबड़ाओ मत। तुम चारों को दो करके दिखाई देती है? तुम चारों को ही यह बीमारी है? उस गरीब आदमी ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, धन्यभाग! पहले आप अपना इलाज करवाएं, फिर हमारी चिंता करें।
एक तो जिनसे तुम धर्म समझने जाते हो, कभी तुमने सोचा भी, उनके पास तुम्हें धर्म की कोई भी अनुभूति, कोई तरंग, कोई अंतर्दृष्टि, उनके सान्निध्य में धर्म की कोई वर्षा होते तुमने देखी है? उनके पास निकट बैठकर, तुमने कभी अपने को किसी और दूर के आकाश से भर जाते देखा है? उनकी मौजूदगी में तुमने अपने भीतर कोई रूपांतरण अनुभव किया है? उनके सत्संग में, जैसे स्नान हो गया हो भीतर का, ऐसी ताजगी, ऐसी फूलों की महक, ऐसी सुबह की खबर मिली है?
तुम फिक्र ही नहीं करते। तुम किसी से भी धर्म समझने पहुंच जाते हो। अक्सर तो तुम समझने भी नहीं जाते, तुम जिससे समझने जाते हो, उसे पैसे देकर घर ही बुला लेते हो।
मैं दिल्ली में मेहमान था। तो जुगल किशोर बिड़ला उन दिनों जिंदा थे; उन्होंने खबर भेजी कि आप मेरे घर आएं, मुझे आपसे कुछ समझना है। मैंने उनको कहा, अगर समझना हो तो आप जहां मैं हूं, वहां आएं। न समझना हो तो कोई हर्जा नहीं है, मैं भी वहां आ सकता हूं।
उन्हें बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने कहा, आपको पता होना चाहिए, खुद महात्मा गांधी भी मेरे यहां रुकते थे और आते थे। और अब तक मैंने ऐसा कोई संत पुरुष नहीं देखा, जिसको मैंने निमंत्रण दिया हो और न आया हो।
तो मैंने कहा, अब देख लो। नहीं तो एक अनुभव अधूरा रह जाएगा। मैं नहीं आऊंगा। अब तो औपचारिक रूप से भी नहीं आऊंगा। यह तो बात ही फिजूल हो गई। संत सदा के लिए बदनाम हो जाएंगे। अब तो आपको आना हो तो आ जाएं।
आदमी की भाषाएं होती हैं। जिसको उन्होंने भेजा था, उन्होंने कहा-- वापस वह आदमी आया और उसने कहा--कि आप गलती कर रहे हैं; वे कुछ दान भी देना चाहते हैं। आपके काम में बड़ी सुविधा हो जाएगी, अगर उनका साथ मिल जाए। मैंने कहा, वे मुझसे कुछ सीखना चाहते हैं, या मुझे कुछ सिखाना चाहते हैं? वे अपने जीवन में मुझसे कुछ सुविधा लेना चाहते हैं या मुझे कुछ सुविधा देना चाहते हैं? पहले उसको साफ कर लें।
बड़ी कठिनाई है। तुम जिनसे समझने जाते हो--समझने भी नहीं जाते, उनको बुला लेते हो, खरीद लेते हो।

संतत्व को खरीदने के कोई उपाय नहीं हैं। सत्य को खरीदने के कोई उपाय नहीं हैं। सत्य के हाथ तो खुद को बिकना होता है। सत्य के हाथ तो खुद को दांव पर लगाना होता है।
बुद्ध कहते हैं, पहले तो उपदिष्ट, जीवंत; और दूसरा ऐसे व्यक्ति को खोजना, जो तुम्हें और न उलझा जाए। कहीं खुद ही उलझा न हो। यह भी हो सकता है, उसे झलकें मिली हों; समाधि के स्वर उसके जीवन में गूंजे हों, यह भी हो सकता है; लेकिन तुम तक पहुंचा पाए, इसका ख्याल रखना--पहुंचा पाएगा या नहीं? बुद्ध से किसी ने पूछा कि आप चालीस वर्ष से लोगों को समझाते रहे हैं। आपके दस हजार भिक्षु हैं, इनमें से कितने लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हुए? क्योंकि आप जैसा तो कोई भी दिखाई नहीं पड़ता।
तो बुद्ध ने कहा, बहुत इनमें से मेरे जैसे हैं। बहुत इनमें मेरे जैसे हैं, अगर फर्क है तो सिर्फ इतना कि मैं कहने में कुशल हूं और वे कहने में कुशल नहीं हैं। जो मैंने जाना है, इनमें से भी बहुतों ने जान लिया है; जो भेद है अगर--वह कोई बहुत बड़ा भेद नहीं है बुद्धत्व के लिए, वह कुछ भेद ही नहीं है उस जगह--वह इतना ही है कि मैं कह सकता हूं, वह ये नहीं कह पाते। कहने की अपनी कला है। अंधेरे में खड़े आदमी को प्रकाश के संबंध में समझाने की अपनी कला है। जिनके जीवन में सौंदर्य की कोई प्रतीति नहीं है, उनके जीवन में सौंदर्य के प्रत्यय को जन्माने की अपनी कला है। जिन्हें खुद की ही प्यास भूल गई है, जिन्हें प्यास भी भूल गई है, उन्हें तृप्ति का तो पता ही क्या हो! जिन्हें प्यास का भी स्मरण नहीं है, उन्हें तृप्ति की खबर देना बड़ी जटिल बात है।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, "जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं, वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार कर पाते हैं।"
शेष धर्म की बातें सुनते रहते हैं, पकड़ते रहते हैं, स्वप्न में ही सारा खेल चलता रहता है; जागते नहीं। मंदिरों में जाओ, मस्जिदों में देखो, गिरजाघरों में, तुम्हें करोड़ों लोग सोए मिलेंगे, जो वर्षों से सुन रहे हैं धर्म की बात। सुनते-सुनते बहरे हो गए हैं, जागे नहीं। सुनते-सुनते वस्तुतः सुनने की संवेदनशीलता भी खो दी है, बोथले हो गए हैं, ऊब गए हैं; लेकिन कहीं कोई जीवन में क्रांति दिखाई नहीं पड़ती।
इस भूल में तुम मत पड़ जाना। सदगुरु खोजना जरूरी है। धर्म को पाने का
और कोई रास्ता नहीं। धर्म कभी ऐसे व्यक्ति से नहीं पाया जा सकता, जिसने स्वयं न पा लिया हो--पहली बात। और ऐसे व्यक्ति से भी पाना मुश्किल है, जिसने स्वयं पा लिया हो, लेकिन तुम्हारे तक कोई सेतु न बना सके।
इसलिए सिद्ध पुरुष तो बहुत होते हैं, सदगुरु बहुत कम। सभी सिद्ध पुरुष सदगुरु नहीं होते। सभी सदगुरु सिद्ध पुरुष जरूर होते हैं।
जैनों ने इसकी एक व्यवस्था की है। सदगुरु को वे कहते हैं, तीर्थंकर। केवल ज्ञान को तो बहुत लोग उपलब्ध होते हैं, सिद्धावस्था को बहुत लोग उपलब्ध होते हैं, लेकिन तीर्थंकर कभी-कभी कोई होता है। पूरे एक सृष्टि-समय में, सृष्टि से एक प्रलय तक केवल चौबीस होते हैं। चौबीस भी बहुत बड़ी संख्या मालूम पड़ती है।
हिंदुओं की व्याख्या में उसको अवतार कहा है। परमात्मा तक जाने वाले लोग तो बहुत होते हैं, परमात्मा को तुम तक ले आने वाले, अवतरण करा देने वाले लोग बहुत कम होते हैं। परमात्मा तक चले जाना तो कठिन है, अति कठिन नहीं; दुर्गम है, असंभव नहीं; बहुत लोग चले जाते हैं। लेकिन अवतार वही है, जो परमात्मा को तुम तक उतार लाए।
और जब तक परमात्मा को तुम तक न उतारा जाए, तुमको परमात्मा तक जाने का रास्ता नहीं मिल सकता। किसी न किसी रूप में सूरज की किरण तुम तक आ जाए, उस किरण के सहारे तुम सूरज तक पहुंच जाओगे। एक छोटा सा सहारा भी मिल जाए, सूत्र भी मिल जाए।
"वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार करेंगे।"
एक जीवंत सदगुरु क्या कहता है? क्या समझाता है?
समझाने से भी ज्यादा, कहने से भी ज्यादा, उसकी मौजूदगी कुछ उकसाती है।
उसकी मौजूदगी केटेलिटिक है।

ढलते रवि ने लघु प्रदीप से सुन, क्या सत्य कहा
उठ, कर शर-संधान
तिमिर का व्यूह भेद करना है
कैसा यहां विराम
शिखा को झंझा में पलना है
ढलते रवि ने लघु प्रदीप से
सुन, क्या सत्य कहा
जिसने पा लिया है, वह अब डूबने के करीब है। वह ढलता रवि है; उसकी सांझ आ गई। अब और जन्म नहीं होंगे। अब फिर सूर्योर्दय नहीं होगा। उसके विदा का क्षण आ गया, अलविदा की घड़ी आ गई। अब वह छोटे-छोटे दीयों से क्या कह रहा है? जिनके लिए बड़ी अंधेरी रात है और बड़ा संघर्ष है!
ढलते रवि ने लघु प्रदीप से
सुन, क्या सत्य कहा
उठ, कर शर-संधान
तिमिर का व्यूह भेद करना है
कैसा यहां विराम
शिखा को झंझा में पलना है
बुद्ध पुरुषों के पास तुम्हारे जीवन की खोज में एक त्वरा आ जाती है। तुम्हारे जीवन की खोज में एक गति आ जाती है। उनकी तरंग पर चढ़कर तुम्हारी नौका भी गतिमान हो जाती है। उनकी हवाओं को अपने पाल में भरकर तुम भी प्रखर गति से यात्रा में संलग्न हो जाते हो।
और एक बार तुम्हें अपने पैरों की गति का पता चल जाए तो बुद्ध पुरुषों
का साथ छूट जाने से भी फिर भेद नहीं पड़ता। एक बार तुम्हें अपनी शक्ति का पता चल जाए, एक बार छोटा सा दीया भी जान ले कि रात कितनी ही अंधेरी हो, कितना ही प्रगाढ़ हो तम, मुझे बुझा न पाएगा। तम की कोई सामर्थ्य नहीं कि छोटी सी ज्योति को भी बुझा दे।
एक बार भरोसा आ जाए और एक बार छोटे से दीए की लौ को भी हवा के झकोरों में जीवन की पुलक मालूम होने लगे, झंझावातों में चुनौती अनुभव होने लगे, झंझावातों में अज्ञात का निमंत्रण मालूम होने लगे, तो छोटा दीया भी छोटा न रहा।
सदगुरु डूबता हुआ सूरज है। सांझ हो गई, रात के पहले कुछ बातें कह जाना चाहता है। तुम उसे सीधे-सीधे सुन लेना।
अब बहुत अजीब आदमी का मन है। एक डाक्टर हैं, इधर आते हैं; जब भी आते हैं, तब वे नोट बनाते रहते हैं। उनको मैंने कहा भी कि मैं बोल रहा हूं जीवित, तब तुम चूके जा रहे हो; तुम इन नोटों का क्या करोगे? वे कहते हैं कि बाद में घर जाकर शांति से पढ़ता हूं। तुम शास्त्र बना लेते हो, फिर उसे पढ़ते हो।
तुम ऐसे हो, हिमालय जाते हो तो कैमरा लिए रहते हो, हिमालय को नहीं देखते, कैमरे से फोटो उतारते रहते हो। घर में एल्बम में लगाकर शांति से बैठकर देखेंगे। तुम्हारे पागलपन की कोई सीमा है? सौभाग्य से हिमालय के पास पहुंच गए थे, भर लेते आंखें अपनी, भर लेते अपना हृदय, हिमालय की शीतलता और विशालता को जरा डूब जाने देते अपने में; तो वह काम तुमने कैमरे पर छोड़ दिया। अब कैमरा सिर्फ यंत्र है। कैमरा क्या भर पाएगा हिमालय को? कैमरा जो खबर लाएगा, वह खबर तो घर बैठे ही बाजार से चित्र खरीदकर हो सकती थी पूरी। असली मजा तो जीवंत हिमालय के साथ सत्संग का था।
जीवंत धारा को खोजना। जीवंत धारा के सहारे ही तुम मृत्यु के राज्य को पार कर पाओगे। क्यों? क्योंकि जिसने अमृत को जान लिया हो, वही तुम्हें अमृत की यात्रा पर ले जा सकेगा।
अन्यथा तुम लाख प्रार्थनाएं करो, तुम लाख चीखो-चिल्लाओ आकाश सेः असतो
मा सदगमय--सूना आकाश सुनता है, कोई प्रतिउत्तर नहीं है। बेचारा आकाश करेगा भी क्या? अमृत की तरफ ले चल मृत्यु से; अंधेरे से प्रकाश की तरफ ले चल; असत्य से सत्य की तरफ ले चल--तुम्हारी प्रार्थनाएं कौन है वहां सुनने को?

जो गया हो सत्य तक, उसके पास इस प्यास से भरकर जाना, असतो मा सदगमय, मुझे ले चल। जो पहुंचा हो उस स्रोत तक, उसके साथ थोड़ा साथ कर लेना। इसके पहले कि मेहमान विदा हो, तुम पहचान लेना।
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान गया पहचाना है
ऐसी भूल तुमसे न हो।
दूसरा सूत्रः "पंडित अशुभ को छोड़कर शुभ का ध्यान करे और बेघर होकर ऐसे एकांत स्थान में वास करे, जहां कि जी लगना कठिन होता है। पंडित भोगों को छोड़कर अकिंचन बनकर उस एकांत में लवलीन रहने की इच्छा करे और चित्त के मलों से अपने को परिशुद्ध करे।"
जिन्होंने बुद्धों की पुकार सुन ली, वे ही पंडित हैं। शास्त्र को जान लेने से कोई पंडित नहीं, परमात्मा की प्यास के जग जाने से कोई पंडित है। पंडित का अर्थ हैः अब तुम जहां सीमाओं में बंधे हो, वहीं बंधे रहने को राजी नहीं; खोज शुरू हो गई। माना कि अभी अंधेरी रात ने तुम्हें घेरा है, लेकिन सुबह की तलाश शुरू हो गई। रात की अंधेरी कोख में सुबह का सूरज पलने लगा। सुबह की यात्रा शुरू हो गई। माना कि तुम अंधेरे में जीते हो, अशुभ में जीते हो, संसार में जीते हो, सब माना। लेकिन अब तुम वहीं समाप्त नहीं हो; उससे पार होने की आकांक्षा ने घर बनाया तुम्हारे हृदय में; अभीप्सा जगी। नसीम, जागो कमर को बांधो
उठाओ बिस्तर कि रात कम है
सफर है दुश्वार ख्वाब कब तक
बहुत बड़ी मंजिले-अदम है
उस दूसरे लोक तक जाने की यात्रा लंबी है। रात बहुत थोड़ी बची है।
किसी सदगुरु के सान्निध्य में जब तुम अपना बिस्तर बांधने लगते हो, पांडित्य का जन्म हुआ। पंडित से अर्थ बहुत जानने वाले का नहीं है, पंडित से अर्थ जानने के आकांक्षी का है। पंडित से अर्थ बहुत सूचनाओं के संग्रह का नहीं है, सत्य की अभीप्सा का है, जिज्ञासा का है।

"पंडित अशुभ को छोड़कर शुभ का ध्यान करे।"
जब बुद्ध यह कहते हैं, अशुभ को छोड़कर शुभ का ध्यान करे, तो वे यह नहीं
कह रहे हैं कि तुमसे अशुभ अभी इसी क्षण छूट जाएगा; लेकिन तुम उस पर ध्यान देना धीरे-धीरे क्षीण करो। जिस पर हम ध्यान देते हैं, उसी को हम से शक्ति मिलती है, ऊर्जा मिलती है।
समझो; अगर तुम्हें बहुत क्रोध आता है, तो अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम क्रोध पर बहुत ध्यान देने लगते हो--चाहे मुक्त होने के लिए ही सही; कि किसी तरह क्रोध से छुटकारा हो जाए--तो तुम अतिशय संवेदनशील हो जाते हो क्रोध के प्रति। तुम उसी-उसी का ध्यान रखते हो--कहीं फिर क्रोध न हो जाए, कहीं फिर क्रोध न हो जाए, कहीं फिर क्रोध न हो जाए। और यह जो बार-बार तुम क्रोध को देख रहे हो, तुम्हारी हर दृष्टि में क्रोध को ऊर्जा मिलती है। तुम जो क्रोध का बार-बार स्मरण कर रहे हो, इसमें क्रोध मजबूत होता है, सघनीभूत होता है। इसमें क्रोध की लकीर तुम्हारे ऊपर गहरी होने लगती है।
अगर क्रोध से मुक्त होना हो तो पहला सूत्र हैः क्रोध पर ध्यान मत दो।
है, मान लिया; जानो कि है; भुलाओ भी मत, दबाओ भी मत, विस्मृत भी मत करो, लेकिन ध्यान करुणा पर दो। अगर क्रोध तुम्हारा रोग है तो करुणा पर ध्यान दो। करुणा के संबंध में ज्यादा सोचो, गुनो, मनन करो, गुनगुनाओ। कहीं मौका मिल जाए तो करुणा करने से मत चुको।
हम अक्सर क्या करते हैं? क्रोधी आदमी कोशिश करता है कि क्रोध का अवसर मिले तो न करे क्रोध। न करने में भी हो जाएगा। न करने-करने में ही भीतर हो जाएगा; बाहर चाहे न भी प्रगट हो तो भी भीतर घना धुआं घेर लेगा, विषाद भर जाएगा, जहर फैल जाएगा।
नहीं, अगर क्रोध बीमारी है तो क्रोध की उपेक्षा करो। ध्यान देने योग्य भी नहीं है, चिंतनीय भी नहीं है। करुणा पर ध्यान दो। करुणा क्रोध के ठीक दूसरे छोर पर है; उस पर ध्यान दो, ऊर्जा वहां डालो। करुणा को सींचो।

करुणा को प्रेम दो। और कहीं कोई अवसर मिल जाए, छोटे से छोटा अवसर भी मिल जाए तो चूको मत।
एक मक्खी भी तुम्हारे ऊपर बैठ गई है, उसे भी उड़ाना हो तो अत्यंत करुणापूर्वक उड़ाओ। उस अवसर को भी मत चूको, क्योंकि जितनी-जितनी ऊर्जा करुणा में परिणत हो जाए, उतनी-उतनी ऊर्जा क्रोध को मिलनी बंद हो जाएगी। ऊर्जा वही है; क्रोध को देते हो तो क्रोध पलता है, करुणा को देते हो तो करुणा पलती है।
बुद्ध के जीवन-सूत्रों में उपेक्षा बड़ी महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं, जिस चीज से मुक्त होना हो, उस तरफ पीठ कर लो। दबाने की जरूरत नहीं है, सिर्फ उपेक्षाभाव रखने की जरूरत है। अपने को वहां से शिथिल कर लो। है माना, लेकिन सारी ऊर्जा विपरीत छोर पर बहने लगे तो धीरे-धीरे तुम पाओगे, कि जो शक्ति क्रोध को मिलती थी, वह बची ही नहीं।
इसे तुम थोड़ा करके देखो। क्रोध से जूझो भी मत। अगर कामवासना से पीड़ित
हो तो कामवासना से जूझो मत, अन्यथा वह बढ़ती चली जाती है। जितने तुम लड़ोगे, उतना ही तुम पाओगे, घाव गहरे होते चले जाते हैं। और बार-बार हारोगे तो धीरे-धीरे आत्मविश्वास भी खो जाएगा। और आत्मविश्वास खो जाए तो साधक बुरी तरह भटक जाता है। लड़ो भी मत।
"पंडित अशुभ को छोड़कर शुभ का ध्यान करे और बेघर होकर ऐसे एकांत में वास करे जहां कि जी लगना कठिन होता है।"
साधारणतः हम भीड़ में जीते हैं। साधारणतः हम भीड़ में ही बड़े हुए। साधारणतः हम भीड़ का ही अंग हैं। साधारणतः भीड़ हमारे भीतर भरी है। भीड़ ने हमारे भीतर भी कब्जा कर लिया है। हमारे भीतर कोई एकांत स्थान नहीं बचा है। तुम कहते जरूर हो कि अपने घर में तो प्राइवेसी है, एकांत है; वहां भी नहीं है। रात के सपने तक में भीड़ तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ती। तुम्हारी दयनीय अवस्था सोचो तो! रात सोए हो, सपने में पड़े हो, तब भी लोग मौजूद हैं। अनचाहे मेहमान मौजूद हैं, न बुलाए मेहमान मौजूद हैं। और ध्यान रखना, उनका कोई कुसूर नहीं है, वे आए भी नहीं हैं।
इजिप्त में एक सम्राट हुआ, वह थोड़ा झक्की था। उसने राज्य में आज्ञा पिटवा दी कि अगर मेरे सपने में कोई आया तो मरवा डालूंगा।
अब बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। लोग डरने लगे। करोगे भी क्या? दूसरों का कोई मामला नहीं। कोई तुम्हारे सपने में थोड़े ही आता है। तुम ही बुलाते हो। तुम्हारी ही धारणा है। कहते हैं, उसने एक वजीर को सूली पर लटकवा दिया, क्योंकि रात सपने में आ गया, नींद खराब की।
ध्यान रखना, कोई तुम्हारे सपने में आ नहीं रहा है। तुम भीड़ हो; अभी तुम व्यक्ति नहीं। अभी तुम्हारे भीतर आत्मा पैदा नहीं हुई। अभी तो तुम जोड़-तोड़ हो। हजार तरह का कूड़ा-करकट तुम्हारे भीतर भरा है। अभी तो तुम एक तरह के कबाड़खाने हो। किसी की टांग, किसी का हाथ, किसी की नाक, किसी का कान, सब तुम्हारे भीतर इकट्ठे हैं। तुम तो एक ढेर हो। तुम्हारे भीतर अभी तुम नहीं हो और सब कुछ है। भीतर जाओगे तो सब मिलेगा--बाजार मिलेगा, दुकान मिलेगी, शास्त्र मिलेंगे, मंदिर-मस्जिद मिलेगी, तुम भर न मिलोगे। भीतर खोजोगे तो अपने भर को न पाओगे और सारा संसार पा लोगे। कैसा मजा है!
तो साधक को शुरुआत में अपने को भीड़ से बाहर करने की जरूरत है। और यह भीड़ से बाहर करना बाहर की ही बात नहीं है; तुम जंगल भी भाग सकते हो, इससे बहुत कुछ न होगा। जंगल में भी बैठ जाओगे तो सोचोगे तो बाजार की; थोड़ा ज्यादा ही सोचोगे।
अक्सर ऐसा होता है कि लोग जब ध्यान करने बैठते हैं, तब संसार की ज्यादा सोचते हैं। ऐसे भी नहीं सोचते साधारणतः उतना। मंदिर जाते हैं, तब दुकान का ज्यादा विचार करते हैं। फुरसत मिल जाती है। और कुछ काम भी नहीं रहता वहां।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि बड़ी आश्चर्य की बात है। इतने विचार तो हमें साधारणतः नहीं होते, लेकिन जब ध्यान करने बैठते हैं, तब बड़ा आक्रमण होता है। ध्यान विचार ही विचार से भर जाता है।

बाकी समय तुम उलझे रहते हो। विचार तो चलते रहते हैं, लेकिन देखने की
भी फुरसत कहां? ध्यान के समय तुम खाली होकर बैठते हो, थोड़ी नजर मुक्त होती है, उलझाव नहीं होता। सारी दुनिया झपट पड़ती मालूम पड़ती है।
प्रश्न बाहर का नहीं है, लेकिन बाहर का एकांत भी सहयोगी हो सकता है।
असली सवाल भीतर के एकांत का है।
"ऐसे एकांत में वास करे कि जहां जी लगना कठिन होता है।"
तुम्हारा जी ही भीड़ में लगता है। खाली बैठे हो, अखबार पढ़ोगे। अखबार यानी भीड़ की खबरें। खाली बैठे हो, रेडियो खोल लोगे, टेलीविजन चला लोगे। खाली बैठे हो तो मित्र के घर पहुंच जाओगे, क्लब पहुंच जाओगे, पड़ोसी से ही बात करने लगोगे। खाली बैठे हो तो कुछ न कुछ करोगे। बिना दूसरे के तुम्हारा जी नहीं लगता। दूसरे पर इतने निर्भर हो? दूसरा तुम्हारा मालिक है? दूसरे के बिना घड़ीभर बिताना मुश्किल हो जाता है। तुम्हारी स्वतंत्रता कैसी है? यह तुम्हारा स्वामित्व कैसा है? तुम अपने भी नहीं हो।
वही व्यक्ति अपना स्वामित्व पाना शुरू करता है, जो एकांत और निज को जीने लगता है। जो अपने साथ होने में भी आनंद पाता है। दूसरे के साथ होना ही जिसका एकमात्र सुख नहीं है; जिसका अपने साथ होना परमसुख बन जाता है।
और बड़े मजे की, यद्यपि विरोधाभासी बात यह है कि जो व्यक्ति अपने साथ बहुत आनंद अनुभव करता है, दूसरे उसके साथ बड़ा आनंद पाएंगे। तुम तो अपने साथ ही परेशान हो, तुम दूसरों के साथ उनको भी परेशान ही करोगे। करोगे क्या? अपने को परेशान कर लेते हो तो दूसरों को भी परेशान करोगे। तुम उनको उबा रहे हो, वे तुमको उबा रहे हैं। वे तुम्हारी सुन रहे हैं, क्योंकि उनको अपनी कहनी है। तुम भी अपने एकांत से घबड़ाकर भाग आए हो, वे भी अपने एकांत से घबड़ाकर भाग आए हैं। दोनों विक्षिप्त हो।
दो आदमियों की बातें तो सुनो; गौर से सुनो, तुम हैरान होओगे। वे एक-दूसरे से बात कर ही नहीं रहे, अपनी-अपनी कहे चले जा रहे हैं। किसको फुरसत है किसी से बात करने की? अपना-अपना काफी भरा हुआ गुबार है।
तो पहली तो बात है कि एकांत में थोड़ा रस लेना शुरू करो। बुद्ध कहते हैं, पंडित वही है।
क्यों? क्योंकि समझदार वही है, जो अपने भीतर जीने की सुविधा बनाने लगे, अपने भीतर के आकाश में रमने लगे। क्योंकि वहीं तुम्हारे प्राणों का प्राण है, वहीं तुम्हारा जीवन-स्रोत है, वहीं तुम्हारा उदगम है, वहीं तुम्हारा अंत है, वहीं है मंदिर, वहीं है विराजमान प्रभु--अगर कहीं है, वहीं सब कुछ है। उसको जिसने गंवाया, सब गंवाया। उसे जिसने पाया, सब पाया। "और बेघर होकर... ।"
जैसे भीड़ से हम बंधे हैं, भीड़ काम भी नहीं आती; सिर्फ भुलाने का बहाना है, एक नशा है। जिंदगी के असली क्षणों में तुम सदा अकेले रह जाते हो। जन्म जब हुआ, तुम अकेले। तुम्हारे भीतर तुम्हीं थे और कुछ नहीं। मरोगे, तब अकेले। तुम्हारे भीतर तुम्हीं रहोगे और कुछ नहीं। और कभी अगर तुम थोड़ी समझ का उपयोग करो तो जीवन में जब भी तुम्हें ऐसे कोई क्षण मिले--पुलक के, अहोभाव के, धन्यता के, तब भी तुम पाओगे, तुम अकेले।
सुबह उगते सूरज के साथ क्षणभर को राग बंध गया, सूरज के रंग फैल गए--तुम अचानक पाओगे, कोई भी न रहा वहां। भीतर का आकाश एकदम खाली हो गया। वहीं सौंदर्य का थोड़ा सा रस आएगा।
संगीत सुनते समय जब तुम्हारे भीतर कोई भी न रह जाएगा, विराट एकांत होगा, उसी क्षण संगीत तुम्हारी भीतर की वीणा को छू देगा; भीतर की वीणा पर टंकार पड़ जाएगी। तुम्हारी भीतर की वीणा जब तक न बजने लगे, कैसे तुम बाहर का संगीत समझोगे? और जब तक तुम्हें भीतर के सौंदर्य का बोध न हो, बाहर के सब सौंदर्य किसी काम के नहीं हैं।
तो जीवन में जब भी कुछ महत्वपूर्ण घटता है, तब तुम अचानक पाओगे, तुम अकेले हो गए। तुमसे एक कठिन बात कहना चाहूंगा; अगर तुम्हारे जीवन में कभी प्रेम घटा है तो तुम अचानक पाओगे कि तुम अकेले हो गए। हालांकि प्रेम में लोग सोचते हैं कि अब दो साथ हो गए, लेकिन यह बात सच नहीं है। प्रेम में दो एकांतों का मिलन होता है। दो व्यक्ति अकेले हो जाते हैं प्रेम में। दो

व्यक्ति भीड़ से मुक्त हो जाते हैं। और प्रेमी जब दो होते हैं तो वहां कोई भीड़ नहीं होती; वहां दूसरा होता ही नहीं। वहां तुम अकेले होते हो, दूसरा भी अकेला होता है। वहां अकेलापन पूरा होता है। दो शून्य मिलकर एक ही शून्य बनता है, दो शून्य नहीं बनते। दो शून्यताएं मिलकर एक शून्यता बनती है, दो शून्यताएं नहीं बनतीं।
और अगर ऐसा न हुआ हो, कि प्रेम के क्षण में भी तुम तुम रहे, भीड़ से भरे रहे, तो समझना कि वह काम का क्षण है, प्रेम का क्षण नहीं है। यही काम और प्रेम का भेद है। काम में दूसरे की तलाश है, प्रेम में अपने होने का अनुभव है। दूसरा ज्यादा से ज्यादा दर्पण बन जाता है, जिसमें हम अपनी ही तस्वीर देख लेते हैं।
जब भी तुम अकेले होओ, उन क्षणों का उपयोग करो। उन एकांत के क्षणों को सौभाग्य मानो, उनका उपयोग करो, उनमें रमो। धीरे-धीरे रस आएगा, स्वाद जमेगा। शुरू-शुरू तो बड़ी बेचैनी होगी, जी घबड़ाएगा।
वही तो बुद्ध कहते हैंः ऐसा एकांत, जहां जी लगना कठिन हो जाता है। तुम्हारा जी ही उधार है; वह भीड़ में ही लगता है। उसे दुर्गंध की आदत पड़ी है, सुगंध में तिलमिलाता है। एकांत की शांति खाती है, भीड़ का शोरगुल भाता है। थोड़ी आदत बदलेगी, समय लगेगा। लेकिन एक बार स्वाद लग जाए एकांत का तो तुम भीड़ में भी रहोगे और अकेले ही रहोगे। तुम बाजार में भी खड़े रहोगे लेकिन एकांत। तुम अपने भीतर के हिमालय को कभी खोओगे ही नहीं। तुम्हारा भीतर का हिमालय तुम्हारे साथ चलेगा।
बड़े शिखर हैं तुम्हारे भीतर, बड़ी ऊंचाइयां हैं और बड़ी गहराइयां हैं। लेकिन तुम भीतर के जगत से अपरिचित ही रहे चले जाते हो।
एक दिल का दर्द है कि रहा जिंदगी के साथ
एक दिल का चैन था कि सदा ढूंढ़ते रहे
ऐसे ही चल रही है तुम्हारी जिंदगी। और चैन अभी मिल सकता है, क्योंकि जिसे तुम बाहर खोज रहे हो वह भीतर मौजूद है। और दुख अभी खो सकता है, क्योंकि बाहर की खोज के कारण पैदा हो रहा है।
फिर मुझे दोहराने दें--
एक दिल का दर्द है कि रहा जिंदगी के साथ
एक दिल का चैन था कि सदा ढूंढ़ते रहे
यह तुम्हारी पूरी जिंदगी की कहानी है, जीवन-कथा है। जिंदगीभर खोज रहे हैं कि कहीं कोई चैन मिल जाए। और जिंदगीभर खोज रहे हैं कि किस तरह दुख से छुटकारा हो जाए, लेकिन यह हो नहीं पाता।
दिशा कुछ गलत है। रेत से जैसे कोई तेल को निचोड़ने की कोशिश कर रहा है। चैन है भीतर, उसे तुम बाहर खोज रहे हो। दुख है बाहर, चैन है भीतर। बाहर खोजते हो, दुख ही दुख पाओगे। भीतर खोजो, सुख का स्वर बजने लगता है।
और ध्यान रखना, अकेले आना है, अकेले जाना है; तो बीच के ये थोड़े दिन भीड़
से बहुत ज्यादा अपने को मत भरो। ये बीच भी अकेलेपन से भर जाए तो तुम्हें जीवन के सारे राज, सारी कुंजियां मिल जाएंगी।
और कब कौन साथ देता है? किस बात में कोई साथ देता है? सब साथ धोखा है। सियहबख्ती में कब कोई किसी का साथ देता है
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इन्सां से
कौन साथ देता है मुसीबत के क्षण में? यह सब सुख का राग-रंग है। सब साथी सुख के मालूम होते हैं। अंधेरा जब घेर लेता है, कौन किसका साथ देता है? मौत जब हाथ में आती है, तब कौन तुम्हारे हाथ में हाथ देता है?
कि तारीकी में साया भी जुदा रहता है इन्सां से
अंधेरे में तो अपनी छाया भी साथ छोड़ देती है, दूसरे का तो भरोसा क्या?
इस सत्य को जो स्वीकार कर लेता है, समझ लेता है, वह अपने साथ हो लेता है। वह असली साथ खोज लेता है।
बेघर भी समझ लेने जैसा शब्द है। इसका मतलब यह नहीं है कि तुम घर छोड़कर भाग जाओ। इसका कुल मतलब इतना है कि तुम जहां भी रहो, घर न बनाओ। इसका यह मतलब भी नहीं है कि तुम छप्पर न डालो; इसका यह मतलब भी नहीं है कि तुम किसी छाया में न ठहरो; इसका कुल मतलब इतना है कि तुम कभी भी यह मत सोचना कि यह

तुम्हारा घर है--सराय ही रहे। ज्यादा से ज्यादा रात का पड़ाव है, सुबह हुई, चल पड़ना है। ऐसा बेघरपन हो; इसका नाम ही संन्यास है।
एक शब्द है हमारे पास--गृहस्थ। गृहस्थ का अर्थ होता है, जिसने घर बनाया। घर में रहता है, ऐसा अर्थ मैं नहीं करता; ऐसा तुमने किया तो गलती हो जाती है। घर में तो सभी रहते हैं। घर नहीं बनाता, वह संन्यासी है। घर में तो रहेगा, लेकिन मानता नहीं कि कहीं कोई घर है। जैसे हमेशा सामान बंधा तैयार है, और जब क्षण आ जाए विदा होने को, तैयार है।
अमरीका का एक प्रेसीडेंट मरने के करीब था तो चिकित्सक ने ठीक समझा कि उसे कह देना जरूरी है। पास आकर कहा कि आप की मृत्यु की घड़ी है। सोचा था डरेगा, घबड़ाएगा; उसने जरा सी आंख खोली और कहा, रेडी! तैयार हूं। बस, इतनी ही बात कही।
गृहस्थ पकड़ने को तैयार है, संन्यस्त छोड़ने को तैयार है। यह तैयारी की बात है; जरूरी नहीं कि तुम छोड़ो। छोड़ने का भाव! छिन जाए तो तुम रोओगे नहीं, चीखोगे-तड़फोगे नहीं, तुम यह न कहोगे, घर मिट गया--तो तुम बेघर हो।
"पंडित भोगों को छोड़कर अकिंचन बनकर एकांत में लवलीन रहने की इच्छा करे और चित्त के मलों से अपने को परिशुद्ध करे।"
एकांत में रहने की इच्छा, अभिलाषा पोसे; इस पौधे को सींचे।
"अकिंचन बनकर... ।"
क्योंकि अकेले तुम तभी हो सकते हो, जब तुम अकिंचन बनने को तैयार हो।
इस सूत्र को ख्याल में रखना। अगर तुम बड़े होना चाहते हो तो भीड़ की जरूरत पड़ेगी; अन्यथा कौन तुम्हें बड़ा कहेगा? अगर तुम्हें सम्राट होना है तो साम्राज्य चाहिए पड़ेगा। अगर तुम्हें नेता होना है तो अनुयायी चाहिए पड़ेंगे। अगर तुम्हें कुछ होना है तो भीड़ की जरूरत पड़ेगी। और जिसकी जरूरत पड़ती है, उस पर तुम निर्भर रहोगे; उसके तुम गुलाम रहोगे।
इसलिए जिनको तुम नेता कहते हो, वे अनुयायियों के गुलाम होते हैं। और जिनको तुम सम्राट कहते हो, उनसे बड़े गुलाम तुम कहीं न खोज पाओगे। नादिरशाह हिंदुस्तान आया। उसने दिल्ली पर कब्जा कर लिया। उसने हाथी कभी देखा न था। पहली दफा देखा, बैठने की इच्छा हुई। तो उसे हाथी पर बिठाया गया। जब वह हाथी पर बैठा तो उसने आगे झांककर देखा, महावत अंकुश लिए बैठा है। तो उसने कहा, तू यहां क्या कर रहा है? तो उस महावत ने कहा, महानुभाव! यह हाथी है, इसको चलाने के लिए फीलवान की जरूरत होती है। उसने कहा, लगाम मुझे दे और तू नीचे उतर। वह तो घोड़े का आदी था, उसने कभी हाथी देखा नहीं था। कहा, तू नीचे उतर, लगाम मुझे दे। वह हंसने लगा महावत; उसने कहा, इसकी कोई लगाम नहीं होती और हम फीलवान ही इसे चला सकते हैं। तो कहते हैं, नादिरशाह छलांग लगाकर नीचे कूद गया। उसने कहा, जिसकी लगाम मेरे हाथ में न हो, उस पर बैठना खतरे से खाली नहीं। मैं ऐसी चीज का मालिक होना ही नहीं चाहता, जिसकी लगाम मेरे हाथ में न हो।
लेकिन जरा और गौर से देखना, लगाम भी होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। थोड़ा- बहुत नियंत्रण में आ जाती है बात, लेकिन लगाम होने से भी बहुत फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि जिसकी लगाम तुम्हारे हाथ में होती है, तुम्हारी लगाम भी उसके हाथ में होती है।
एक मुसलमान फकीर बायजीद एक रास्ते से गुजरता था अपने शिष्यों को लेकर
और एक आदमी एक गाय को घसीटे लिए जा रहा था। गाय जाना नहीं चाहती थी और वह आदमी घसीट रहा था। बायजीद ने अपने शिष्यों को कहा, रुको! घेर लो इस आदमी को। एक पाठ सीखने जैसा है। और बायजीद ने अपने शिष्यों से पूछा, मुझे बताओ, यह आदमी गाय को बांधे हुए है कि गाय ने आदमी को बांधा है? उन शिष्यों ने कहा, साफ है कि आदमी गाय को बांधे हुए है। आदमी मालिक है, गाय गुलाम है।
तो बायजीद ने कहा, एक सवाल और। अगर हम यह लगाम बीच से काट दें तो गाय आदमी के पीछे जाएगी कि आदमी गाय के पीछे जाएगा? उन्होंने कहा, आदमी गाय के पीछे जाएगा। तो फिर मालिक कौन है?
तुम जिसके पीछे जाते हो, वही तुम्हारा मालिक है। जिसकी लगाम तुम्हारे हाथ में है, उसके हाथ में तुम्हारी भी लगाम हो गई। जब तुमने किसी चीज का परिग्रह किया, तुम उस चीज के गुलाम हो गए।

तो जब तुमने कहा, यह मेरा घर है, तुम इस घर के हो गए। और ध्यान रखना, जब
घर छूटेगा तुमसे, घर न रोएगा तुम्हारे लिए, तुम रोओगे घर के लिए। और जब लगाम टूटेगी तो पता चलेगा, तुम गुलाम थे।
"बेघर, एकांत और अकिंचन... ।"
अकिंचन होने को जो राजी है। अकिंचन का अर्थ हैः नो-बडी, ना-कुछ; जैसे मैं कुछ हूं ही नहीं, ऐसा होने को जो राजी है, वही केवल भीड़ से मुक्त हो सकता है।
लेकिन ये अनुभव हम सभी को होते हैं। ये अनुभव कुछ अनूठे नहीं, अनूठी
तो बात यह है कि अनुभव होते हैं और फिर भी हम गैर-अनुभवी रह जाते हैं। कितनी बार तुम्हारा घर बना और उजड़ा नहीं! कितनी बार तुमने लगाम पकड़ी और नहीं पकड़े गए! कितनी बार तुमने मालिक बनना चाहा और तुम गुलाम बने! और कितनी बार भीड़ का संग-साथ खोजा और तुमने अपने को गंवाया! कितने अनुभव तुम्हें जीवन में होते हैं, लेकिन फिर भी आश्चर्य की बात तो यही है कि तुम कुछ सीखते नहीं।
मोती हो कि शीशा, जाम कि दुर
जो टूट गया सो टूट गया
कब अश्कों से जुड़ सकता है
जो टूट गया सो टूट गया
तुम नाहक टुकड़े चुन-चुन कर
दामन में छिपाए बैठे हो
शीशों का मसीहा कोई नहीं
क्या आस लगाए बैठे हो
जीसस ने मुर्दे को जिला दिया, लेकिन जिन टूटे टुकड़ों को लेकर तुम बैठे हो, उनको वे जोड़ न सकेंगे।
शीशों का मसीहा कोई नहीं
क्या आस लगाए बैठे हो
और तुम्हारे दामन में सिवाय टुकड़ों के कुछ भी नहीं है। सब शीशे टूटे हुए हैं। तुमने जीवन में सिवाय टुकड़ों के, व्यर्थ टुकड़ों के, कुछ इकट्ठा किया ही नहीं। लेकिन आशा लगाए बैठे हो कि शायद कोई जोड़ देगा। और रो रहे हो। कब अश्कों से जुड़ सकता है
जो टूट गया सो टूट गया
जरा गौर से अपनी जिंदगी को एक बार फिर से देखो, एक पुनर्निरीक्षण--और तुम पाओगे, बुद्ध पुरुष जो कहते हैं, वह तुम अपने अनुभव से भी पाओगे कि ठीक है। इसलिए बुद्ध ने बार-बार कहा है कि जो मैं कहता हूं, मेरे कहने के कारण मत मान लेना, तुम्हारे अनुभव से तालमेल बैठे तो ही।
तालमेल बैठता ही है। सत्य है वही, जिसका तालमेल सभी के अनुभव से बैठेगा ही। हां, तुम बिठाओ ही न, आंख बंद किए बैठे रहो, बात और। आदमी बहलाए चला जाता है अपने को। सोचता है, अभी नहीं हुआ, कल हो जाएगा। इस बार चूक गए, अब न चूकेंगे। लेकिन यह निशाना कुछ ऐसा है कि कभी लगेगा ही नहीं। इसका स्वभाव लगना नहीं है। यह कुछ तुम्हारी तीरंदाजी पर निर्भर नहीं है। तुम कितने ही कुशल हो जाओ, यह निशाना चूकता ही रहेगा। क्योंकि वहां है ही नहीं कोई, निशाना जिस पर लग जाए। जितनी जल्दी तुम्हारे जीवन में इस विफलता का बोध हो जाए, उतनी ही जल्दी अंतर्यात्रा शुरू हो जाती है।
जिंदगी को माहो-अंजुम न उजाला देंगे
तुम न इन झूठे खिलौनों से बहलते रहना
चांद-तारों से रोशनी नहीं मिलती जिंदगी को। तुम इन झूठे खिलौनों से
मत उलझते रहना। ये बाहर के खिलौने कोई रोशनी न दे सकेंगे। रोशनी भीतर से आती है। रोशनी तुम्हारे भीतर छुपी है, वहां जगाना है।
एकांत में उसे जगाओ, बेघर होकर उसे जगाओ, वस्तुओं की मालकियत, दौड़ छोड़कर उसे जगाओ, भीड़ से संग-साथ छोड़कर उसे जगाओ। कहीं ऐसा न हो कि जिंदगी बीत जाए और ज्योति सोई की सोई ही रह जाए।

"जिनका चित्त संबोधि अंगों से अच्छी तरह अभ्यस्त हो गया है, जो अनासक्त हो परिग्रह के त्याग में सदा निरत हैं, जो क्षीणास्रव और द्युतिमान हैं, वे ही संसार में निर्वाण को पा चुके हैं।"
बड़ा अनूठा वचन है। अगर तुम जाग गए तो संसार में ही निर्वाण उपलब्ध हो जाता है। यह निर्वाण कोई परलोक नहीं है। निर्वाण कोई मंजिल नहीं है, जो कभी आगे मिलेगी। अगर तुम जाग गए तो अभी और यहीं है। यह मंजिल कुछ ऐसी है कि तुम्हारे कदमों में छुपी है। इसे उघाड़ना है, इसे खोजना नहीं है। कदम-कदम में तुम्हारे यह मंजिल छिपी है।
अपने कदम के साथ है मंजिल लगी हुई
मंजिल पे जो नहीं है वो हमारा कदम नहीं
वह तुम्हारा कदम ही नहीं है, जो मंजिल पर नहीं है। अगर तुम्हें मंजिल दूर भविष्य में दिखाई पड़ती हो तो तुम भूल में हो; मंजिल तुम्हारे पैरों के नीचे दबी है। अगर तुम कहीं और खजाना खोजते हो तो भूल में हो; खजाने पर तुम खड़े हो।
"जिनका चित्त... ।"
बुद्ध ने समाधि को पाने के वैसे ही अंग कहे हैं, जैसे पतंजलि नेः सम्यक दृष्टि, सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक ध्यान, सम्यक समाधि इत्यादि आठ अंग। इन आठ अंगों को जो साधता है... ।
दृष्टि की थिरता को जो साधता है तो सम्यक दृष्टि हो जाता है। देखने की कला को जो साधता है--बिना विचार के देखने की कला का नाम है, सम्यक दृष्टि।
आंख विचारों से भरी हो तो विचार विकृत कर देते हैं, जो भी तुम देखते हो।
आंख विचारों से न भरी हो तो तुम वही देखते हो, जो है। तब सत्य आविर्भूत होता है।
सम्यक दृष्टि से यात्रा शुरू होती है, सम्यक समाधि पर पूरी होती है। सम्यक समाधि का अर्थ हैः ऐसी अंतर-दशा, जहां सब समाधान हैं... सब समाधान हैं... सब समाधान हैं। कोई प्रश्न न बचा; ऐसी निष्प्रश्न दशा। उस घड़ी में सत्य अपने सभी घूंघट उठा देता है। उस घड़ी में जीवन तुम्हारे चारों तरफ नाच उठता है। उस घड़ी में जीवन की मधुशाला तुम पर सब तरफ से बरस जाती है।
"जिनका चित्त संबोधि अंगों का अच्छी तरह अभ्यास कर रहा है।"
अभ्यास करना होगा। लंबा तमस है, लंबा आलस्य है, तोड़ना होगा, चोट करनी होगी। छेनी उठाकर श्रम की, ध्यान की, चारों तरफ जो पथरीलापन इकट्ठा हो गया है, उसे काटना होगा, ताकि भीतर का झरना फिर से बह सके।
"जो अनासक्त हो परिग्रह के त्याग में सदा निरत है।"
जो सदा यह चेष्टा कर रहा है कि मेरे अतिरिक्त मेरा और कुछ भी नहीं। वही अनासक्त होने की चेष्टा में लगा है। मेरे अतिरिक्त मेरा और कुछ भी नहीं। मैं ही बस मेरा हूं। ऐसी भावदशा जिसकी थिर होती जा रही है।
"जो क्षीणास्रव है।"
उसके कर्म क्षीण होने लगते हैं। वह कर्ता भी है तो अकर्ता होता है। वह चलता भी है तो चलता नहीं, क्योंकि चलाती तो चाह है।
मनुज चलता नहीं संसार में
चलाती चाह है
जिसकी चाह चली गई, वह चलता भी है और अचल होता है। वह भोजन भी करता है और उपवासा होता है। उठता है, बैठता है, सब करता है, लेकिन जैसे कुछ भी करता नहीं। भीतर अकर्ता की स्थिति, साक्षी की स्थिति बनी रहती है।
"जो क्षीणास्रव है।"
उसके कर्म धीरे-धीरे क्षीण होने लगते हैं।
कृष्ण ने गीता में अर्जुन को यही कहा है कि तू इतना ही मान ले कि तू उपकरण मात्र है; तू ना-कुछ हो जा, अकिंचन हो जा। तू यह मत कह कि मैं कर रहा हूं, परमात्मा कर रहा है।
बुद्ध तो परमात्मा को भी बीच में नहीं लेते। वे कहते हैं, उससे भी कहीं अकड़ आ जाए; उससे भी कहीं अहंकार आ जाए। बुद्ध तो इतना ही कहते हैं, कोई नहीं कर रहा, हो रहा है।

थोड़ा समझना! बुद्ध कहते हैं, सब हो रहा है, कर कोई भी नहीं रहा है--न तू
कर रहा है, न कोई और कर रहा है। चीजें हो रही हैं। नदियां सागर की तरफ बह रही हैं, सागर धूप के सहारे चढ़कर बादल बन रहा है, बादल हिमालय पर बरस रहे हैं, फिर नदी बन रही है--हो रहा है। कोई कुछ कर नहीं रहा है।
ऐसी अवस्था की प्रतीति होने लगे तो कर्म क्षीण हो जाते हैं। और एक द्युति का जन्म होता है, एक भीतर प्रभा का आविर्भाव होता है। ऐसे व्यक्ति के आसपास तुम एक आलोकमंडल देखोगे। ऐसे व्यक्ति के आसपास ऐसा घना प्रकाश होगा कि तुम चाहो तो छू सको।
"वे ही संसार में निर्वाण को पा चुके हैं।"
कोई परलोक नहीं है। यही लोक, जब तुम बदल जाते हो, परलोक हो जाता है। आंख की बदलाहट!
काफिर की यह पहचान कि आफाक में गुम है
मोमिन की यह पहचान कि गुम इसमें है आफाक
अधर्मी की यह पहचान है कि वह संसार में खोया है। और धर्मी की यह पहचान
है कि उसमें संसार खो गया।
काफिर की यह पहचान कि आफाक में गुम है
संसार में डूबा है, खोया है। संसार ही बचा है, खुद बचा ही नहीं है, इस तरह खो गया है।
मोमिन की यह पहचान कि गुम इसमें है आफाक
और धर्मी की यह पहचान है कि स्वयं ही बचा है और सब संसार खो गया है। स्वयं की विराटता में सब लीन हो गया है।
बुद्ध के इन वचनों को अपनी जिंदगी की कसौटी पर कसना। अपनी जिंदगी को बार-बार गौर से देखो, वहीं सब छिपा है। और वहीं कसौटी है कि बुद्ध के वचन सही हैं या नहीं। इन वचनों का कोई और तर्क नहीं है, तुम्हारे जीवन के ही संगति में इन वचनों का तर्क है। ये वचन अपने आप में कुछ प्रमाण नहीं हैं, प्रमाण तो तुम्हारे जीवन के अनुभव और इनके बीच में घटेगा। गौर से देखोगे तो तुम पाओगे--
जिंदगी और जिंदगी की यादगार
पर्दा और पर्दे में कुछ परछाइयां
तुम जिंदगी को एक स्वप्न से ज्यादा न पाओगे।
पर्दा और पर्दे में कुछ परछाइयां
इन परछाइयों में भरोसा करते रहो तो संसार है। इन परछाइयों को परछाइयों की तरह जान लो, निर्वाण घटित हो जाता है।
असत्य को असत्य की तरह जान लेना, असत्य से मुक्त हो जाना है।
सत्य तो तुम हो; बस, असत्य से मुक्त होना है।
निर्वाण तो तुम हो। निर्वाण तुम्हारा स्वभाव है। इस स्वभाव की पहचान,
इस स्वभाव की प्रत्यभिज्ञा, इस स्वभाव से मुलाकात, इसको अपने आमने-सामने कर लेना है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
चौतीसवां प्रवचन

प्यासे को पानी की पहचान

पहला प्रश्नः क्या आपने धर्म को पूरी तरह पा लिया है? क्या आप एक सदगुरु हैं? क्या आप परमात्मा को मुझ तक लाने में समर्थ हैं?

दीवानों की बस्ती में कोई समझदार आ गया! समझदारी से उठाए गए प्रश्नों
का कोई मूल्य नहीं। नीचे लिखा है, सत्य का एक जिज्ञासु। न तो जिज्ञासा है, न खोज है; मान्यताओं से भरा हुआ मन होगा।
जिज्ञासु को तो यह भी पता नहीं कि ईश्वर है। जिज्ञासु को तो यह भी पता नहीं कि धर्म है। जिज्ञासु को तो यह भी पता नहीं कि सदगुरु है। जिज्ञासु प्रश्न थोड़े ही पूछता है, जिज्ञासु अपनी प्यास जाहिर करता है।
प्रश्न दो ढंग से उठते हैंः एक तो प्यास की भांति; तब उनका गुणधर्म और। और एक जानकारी से, बुद्धि भरी है कूड़ा-करकट से, उसमें से प्रश्न उठ आते हैं।
पहला प्रश्न, "क्या आपने धर्म को पूरी तरह पा लिया है?"
धर्म का पता है, क्या है? पूरी तरह का अर्थ मालूम है, क्या होता है? धर्म की दुनिया में पा लेने वाला बचता है?
एक-एक शब्द को समझना जरूरी है। क्योंकि हो सकता है, कोने-कातर में तुम्हारे भी, इस तरह के विचार भरे पड़े हों, इस तरह की मान्यताएं भरी पड़ी हों। पहली तो बात--धर्म को कोई पाता नहीं, धर्म में स्वयं को खोता है। धर्म कोई संपदा नहीं है, जिसे तुम अपनी मुट्ठी में ले लो। धर्म तो मृत्यु है, जिसमें तुम समा जाते हो। तुम नहीं बचते तब धर्म बचता है। जब तक तुम हो, तब तक धर्म नहीं।
इसलिए जो दावा करे कि उसने धर्म को पा लिया है, उसने तो निश्चित ही न पाया होगा। दावेदारी का धर्म से कोई संबंध नहीं है। यह तो बात ही छोटी हो गई। जिसे तुम पा लो, वह धर्म ही बड़ा छोटा हो गया। जो तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए, वह विराट न रहा। जिसे तुम्हारी बुद्धि समझ ले, वह समझने के योग्य ही न रहा। जिसे तुम्हारे तर्क की सरणी में जगह बन जाए, जो तुम्हारे कटघरों में समा जाए, वह धर्म का आकाश न रहा।
बुद्ध ने कहा है, जब तुम ऐसे मिट जाओ कि आत्मा भी न बचे, अनात्मा हो जाओ, अनात्मावत हो जाओ, अनत्ता हो जाओ, शून्य हो जाओ; तभी जिसका आविर्भाव होता है, वही धर्म है--एस धम्मो सनंतनो।
पंडित की मुट्ठी में धर्म होता है। ज्ञानी धर्म की मुट्ठी में होता है। पंडित धर्म को जानता है, ज्ञानी को धर्म जानता है। जिसने जाना, उसने यही जाना कि जानने वाला बचता कहां है! जिसने जाना, उसने यही जाना कि अपने कारण ही न जान पाते थे, हम ही बाधा थे; जब हम मिट गए, जब हम न रहे, तब अवतरण हुआ।
ऐसा नहीं है कि तुम्हारे भीतर कुछ बाधाएं हैं, जिनके कारण तुम धर्म को नहीं जान पा रहे हो--तुम बाधा हो। तुम्हारे कारण तुम धर्म को नहीं जान पा रहे हो। तुम्हें समझाया गया है, अज्ञान के कारण नहीं जान पा रहे हो; गलत है बात। तुम्हें समझाया गया है, पाप के कारण नहीं जान पा रहे हो; गलत है बात। मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारे कारण नहीं जान पा रहे हो। अगर तुम रहे
और पुण्य भी किया तो भी न जान पाओगे। अगर तुम रहे और अज्ञान की जगह ज्ञान भी पकड़ लिया तो भी न जान पाओगे। पाप तो रोकेगा ही, पुण्य भी रोकेगा। अज्ञान तो रोकेगा ही, ज्ञान भी रोकेगा।
और अक्सर ऐसा हुआ है कि कभी-कभी अज्ञान इतनी बुरी तरह नहीं रोकता, जितनी बुरी तरह ज्ञान रोक लेता है। अज्ञान तो असहाय है, ज्ञान बड़ा अहंकार से भरा हुआ है। कभी-कभी पाप भी इतनी बड़ी जंजीर नहीं बनता, जितनी बड़ी जंजीर पुण्य बन जाता है। पुण्य के अहंकार में तो हीरे-जवाहरात जड़ जाते हैं। पापी तो पछताता भी है, पुण्यात्मा तो सिर्फ अकड़ता ही चला जाता है।

भोग ने तुम्हें नहीं भटकाया है; इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, योग तुम्हें न पहुंचा पाएगा। जब तुम ही न बचोगे--न भोग करने वाला, न योग करने वाला; जब तुम्हारे भीतर कोई भी मौजूद न होगा, जब तुम सब भांति शून्यवत हो जाओगे, तब जो जाना जाता है, वही धर्म है।
धर्म का अर्थ होता हैः स्वभाव। अहंकार के कारण स्वभाव पर बाधा पड़ जाती है।
तो पहली तो बात यह है कि धर्म को जिन्होंने जाना है, वे बचे नहीं। उपनिषद कहते हैं, जो कहे जान लिया, जान लेना कि नहीं जाना उसने। सुकरात ने कहा है, जब जाना तो यही जाना कि कुछ भी नहीं जानते हैं।
पूछा है, "क्या आपने धर्म को पूरी तरह पा लिया है?"
पूरी तरह का क्या अर्थ होता है? अगर धर्म पूरी तरह पाया जा सके तो सीमित हो जाएगा। जिसकी सीमा हो, वही पूरी तरह पाया जा सकता है। धर्म की कोई सीमा नहीं है। इसलिए तुम धर्म में डूब जाओगे। धर्म तुम्हें पूरी तरह पा लेगा, लेकिन तुम न पा सकोगे पूरी तरह।
एक बूंद जब सागर में गिरती है तो सागर बूंद को पूरी तरह पा लेता है। बूंद ने सागर को पूरी तरह पाया, यह कहने का क्या अर्थ है? बूंद बची ही नहीं; उसी पाने में खो गई; पाने की शर्त पूरी करने में ही खो गई।
यह पूरे की भाषा भी लोभ की भाषा है। थोड़ा-ज्यादा, पूरा-कम; मात्राएं-- आधा पाव, पाव भर, आधा सेर, सेर भर--ये मात्राएं भी गणित की मात्राएं हैं। सत्य को खंडित किया जा सकता है क्या कि तुम आधा पा लो? सत्य के टुकड़े बांटे जा सकते हैं क्या कि तुम थोड़ा अभी पा लो, थोड़ा कल पा लेंगे?
सत्य अखंड है, इसलिए खंड तो हो नहीं सकते। और सत्य असीम है, इसलिए तुम उसे पूरा कभी पा नहीं सकते।
बड़ी अड़चन मालूम पड़ेगी, क्योंकि मैं कह रहा हूं यह--एक विरोधाभासी वक्तव्य दे रहा हूं--कि सत्य अखंड है, उसके खंड, टुकड़े हो नहीं सकते। और सत्य असीम है, इसलिए पूरा तुम उसे पा नहीं सकते।
तब तो बड़ी मुश्किल हो गई। टुकड़े उसके हो नहीं सकते, नहीं तो थोड़ा-थोड़ा
पा लेते, अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार पा लेते। तो वह अखंड है, इसलिए उसके टुकड़े हो नहीं सकते। और चूंकि वह असीम है, इसलिए पूरा तुम उसे पा नहीं सकते। अब करोगे क्या?
आदमी सत्य में विसर्जित होता है, खोता है। जैसे गंगा सागर में उतरकर
खो जाती है, ऐसे आदमी परमात्मा में उतरकर खो जाता है।
तो मैं तुमसे यही कह सकता हूं कि परमात्मा ने मुझे पूरी तरह पा लिया है--पूरी तरह! रत्तीभर भी उसने मुझे अपने बाहर नहीं छोड़ा है। और तुम थोड़ी और उलझन में पड़ोगे। क्योंकि मैं तुमसे यह भी कहना चाहता हूं कि तुम्हें भी उसने पूरी तरह पाया हुआ है, सिर्फ तुम्हें याददाश्त नहीं है। तुम उसके बिना हो कैसे सकोगे? वही तुममें श्वास लेता है, इसलिए श्वास चलती है। वही तुममें धड़कता है, इसलिए दिल धड़कता है। वही तुममें जागता है, इसलिए तुममें होश है। वही तुम्हारा जन्म है, वही तुम्हारा जीवन है। उसने तुम्हें पूरी तरह पाया ही हुआ है।
जरा पीछे लौटकर तो देखो! जरा अपने को तो पहचानो! अपनी पहचान में ही तुम पाओगे, उसके साथ पहचान हो गई। अपने को खोजते-खोजते ही आदमी उसे खोज लेता है। इसलिए जो परमात्मा की खोज में सीधे जाते हैं, वे गलत जाते हैं। जो अपनी खोज में जाते हैं, वही ठीक जाते हैं।
जब भी मेरे पास कोई आता है, वह कहता है, परमात्मा को पाना है, तब मैं समझता हूं गलत आदमी आ गया। यह बात ही लोभ की है। यह बात ही मूढ़तापूर्ण है। यह बात ही अहंकार की है। इस आदमी के पास दिमाग बाजार का है।
जब मेरे पास कोई आता है और कहता है, मुझे स्वयं से थोड़ी अपनी पहचान बनानी है। जिसकी अपने से पहचान नहीं, परमात्मा से पहचान कैसे होगी? जिसकी अपने से पहचान है, उसे परमात्मा को जानने की जरूरत ही क्या रही? जिसने अपने को पहचान लिया, उसने उसके सूत्र को पकड़ लिया। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है।

ऐसा कभी हुआ ही नहीं है कि वह मौजूद न रहा हो; इसलिए तो हम उसे शाश्वत कहते हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां वह मौजूद न हो; इसलिए तो हम उसे सर्वव्यापी कहते हैं। तुम इतने विशिष्ट नहीं हो सकते कि तुम्हें छोड़कर सब जगह मौजूद हो। तुम अपने को अपवाद मत मानो।
मैंने एक कहानी सुनी है। एक शेखचिल्ली को किसी ने कह दिया कि तेरी पत्नी विधवा हो गई। भरे बाजार में वह छाती पीटकर रोने लगा। भीड़ इकट्ठी हो गई, लोग हंसने लगे। किसी ने पूछा, मामला क्या है? उसने कहा, मेरी पत्नी विधवा हो गई। उन्होंने कहा, पागल! तू जिंदा बैठा है तो तेरी पत्नी विधवा हो कैसे सकती है? उसने कहा, इससे क्या होता है? मेरे जिंदा रहने से क्या होता है? मैं जिंदा बैठा था, मेरी मां तक विधवा हो गई थी। मैं जिंदा बैठा था, मेरी फूई विधवा हो गई। मैं जिंदा बैठा था, मेरी मामी विधवा हो गई। मुहल्ले में कितनी औरतें विधवा हो गयीं, पूरे गांव में कितनी औरतें विधवा हो गयीं, मैं जिंदा बैठा था। इससे क्या फर्क पड़ता है? वह फिर छाती पीटकर रोने लगा। तुम परमात्मा को खोज रहे हो, वह खोज ऐसी ही है, जैसे कोई आदमी मान लेता
हो कि उसकी पत्नी विधवा हो गई है और वह जिंदा बैठा है। परमात्मा को खोया कब है? तुम हो तो परमात्मा है ही। तुम्हारे होने में ही समाया। तुम्हारे रहते तुम्हारी पत्नी विधवा नहीं हो सकती। तुम्हारे रहते यह असंभव है कि परमात्मा न हो। तुम काफी प्रमाण हो। तुम उसकी मौजूदगी हो। तुम उसके हस्ताक्षर हो।
लेकिन असली सवाल है अपने को जानने का। असली सवाल परमात्मा को जानने
का नहीं है। परमात्मा की बातचीत जैसे ही तुमने उठाई कि तुम शब्द-जाल, शास्त्र-जाल में पड़े। अपने को जानने चले तो साधना का जन्म होता है। परमात्मा को जानने चले तो व्यर्थ की माथापच्ची होती है। मेरा उसमें कोई रस नहीं है।
तुम परमात्मा को छोड़ो। तुम्हारे सिद्ध करने से वह सिद्ध न होगा; तुम्हारे असिद्ध करने से असिद्ध न होगा। वह है ही। तुम जानो न जानो, कोई फर्क नहीं पड़ता। उसका हाथ तुम्हारे भीतर पहुंचा ही हुआ है। वहीं तुम जरा टटोलो; वहीं तुम्हें उसका हाथ पकड़ में आ जाएगा।
और जो अपने निकटतम स्वयं के भीतर उसे न पकड़ पाए, वह उसे कहीं भी न पकड़ पाएगा। फिर तो सभी स्थान बड़ी दूरी पर हो जाते हैं। अपने हृदय की धड़कन में उसकी आवाज न सुनाई पड़ी तो तुम्हें फिर उसकी आवाज कहीं भी सुनाई न पड़ेगी। "क्या आपने धर्म को पूरी तरह पा लिया है?"
उसे कभी किसी ने खोया ही नहीं। जो खो जाए, वह भी धर्म हुआ? धर्म का अर्थ ही होता है, जो न खो सके; जो तुम्हारा चिरंतन स्वभाव है; जो तुम हो; जो तुम्हारा शुद्ध होना है। इसे कभी किसी ने खोया नहीं। तुम चाहकर भी इसे खोना चाहो तो न खो सकोगे। ज्यादा से ज्यादा तुम विस्मरण कर सकते हो। वह भी बड़ी चेष्टा से करना पड़ता है, वह भी बड़ी मुश्किल से करना पड़ता है। हजार उपाय, विधियां, व्यवस्थाएं जुटानी पड़ती हैं तब कहीं तुम उसे भूल पाते हो। हजार तरह की शराबें पीनी पड़ती हैं तब तुम उसे भूल पाते हो।
तो पहली तो बात यह ख्याल में रखो कि धर्म वही है, जो है। है का नाम ही धर्म है। अस्तित्व के स्वभाव का नाम धर्म है।
जब मैं धर्म की बात कह रहा हूं तो हिंदू धर्म, मुसलमान धर्म, ईसाई धर्म, इन सब रोगों की बात नहीं कर रहा हूं। ये तो बीमारियां हैं, जिनसे आदमी को स्वस्थ होना है। मैं उस धर्म की बात कर रहा हूं, जिसको महावीर ने कहा हैः बत्थु सहाओ धम्म; वस्तु का स्वभाव धर्म है।
आग जलाती है, यह आग का धर्म है।
पानी नीचे की तरफ बहता है, यह पानी का धर्म है।
हवा अदृश्य है, यह हवा का धर्म है।
तुम चैतन्य हो, यह तुम्हारा धर्म है।
अपने धर्म को ठीक से पकड़ लो, वहीं से द्वार खुलेगा विराट का।
और ध्यान रखना, जो भी तुम जान लोगे, उससे धर्म चुक न जाएगा। जो भी तुम जान लोगे, उसे तुम ऐसा ही समझना, जैसे किसी ने खिड़की से आकाश की तरफ झांका हो। खिड़की का चौखटा आकाश का स्वभाव नहीं है। खिड़की की आकृति आकाश से

बिल्कुल असंबंधित है। आकाश से कुछ खिड़की का लेना-देना नहीं है। तुम्हारी खिड़की गोल हो, चौकोन हो, किसी रूप-रंग की हो, छोटी हो, बड़ी हो, सीखचों वाली हो, खुली हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आकाश का खिड़की से कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन जो खिड़की के पीछे खड़े होकर देखेगा, उसे ऐसा ही लगेगा कि खिड़की का आकार आकाश का आकार है।
जो तुम जानते हो, उससे उस परम सत्य का कोई संबंध नहीं है। जो तुम जानते
हो वह तो तुम्हारे मन की खिड़की है, तुम्हारा ढांचा है। सत्य तो सदा ही अज्ञेय है; अज्ञेयता उसका स्वभाव है। जान-जानकर तुम उसे चुकता न कर पाओगे। सब जानना, सब धारणाएं तुम्हारी खिड़कियां हैं।
कोई उसे कहता है, ईश्वर--यह उसकी खिड़की है। कोई उसे कहता है, मोक्ष--यह उसकी खिड़की है। कोई उसे कहता है निर्वाण--यह उसकी खिड़की है। कोई कुछ भी नहीं कहता, चुप रह जाता है--यह उसकी खिड़की है।
हम जो भी उसके संबंध में कह सकते हैं, वह उसके संबंध में नहीं होता, हमारे संबंध में होता है। उसके संबंध में आज तक जो भी कहा गया है, वह कहने वालों के संबंध में है; उनकी खिड़कियां, धारणाएं, मन के प्रत्यय, उनके संबंध में है।
सत्य तो सदा ही अपरिचित है और यही सत्य का सौंदर्य है। जिससे परिचय हो गया, वह तो मर ही गया। जिसे तुमने जान लिया, उसकी सीमा आ गई। जिसे तुमने पहचान लिया, उसका रहस्य समाप्त हुआ। जिसे तुमने समझा कि जान लिया, अब उसमें आश्चर्य कहां? अब वह तुम्हें अवाक न कर सकेगा। अब तुम उसके सामने खड़े होकर आश्चर्य से भरे हुए नाचोगे नहीं।
इसलिए जिन-जिन लोगों को जानने का भ्रम हो जाता है, उन-उन के जीवन से आश्चर्य विदा हो जाता है। और आश्चर्य परमात्मा के पास पहुंचने का सेतु है। जितना मनुष्य जाति को यह वहम सवार हो गया है कि हम जानते हैं--विज्ञान ने कुछ बातें जता दी हैं, शास्त्रों ने कुछ बातें बता दी हैं, हमने उन्हें कंठस्थ कर लिया है--उतना ही हमारे ऊपर धूल जम गई है और बचपन के जो आश्चर्यचकित होने की संभावना थी, वह क्षीण हो गई।
छोटे बच्चे को कभी देखा? रास्ते के किनारे पड़े कंकड़-पत्थर सूरज की रोशनी में चमकते कोहिनूर हो जाते हैं; उठा-उठा लेता है। तुम कहते हो, छोड़ो भी, फेंको भी, कहां कचरा उठा रहा है! तुम समझ ही नहीं पा रहे। वह रंगीन पत्थर सूरज की रोशनी में इतने महिमापूर्ण मालूम होते हैं बच्चे को।
यह पत्थर का सवाल नहीं है, बच्चे की अभी आश्चर्य की आंख बंद नहीं हुई। अभी उसके आश्चर्य के द्वार खुले हैं। अभी बच्चे का मन ज्ञान से बोझिल नहीं हुआ। अभी बच्चा निर्दोष है। अभी वह खाली आंखों से देख पाता है तो हर चीज सुंदर हो जाती है। तितलियों के पीछे दौड़ लेता है तो स्वर्गों का आनंद आ जाता है। फूल इकट्ठे कर लेता है तो जैसे मोक्ष मिल जाता है।
जीसस ने कहा है, जो छोटे बच्चों की भांति होंगे, वे ही मेरे परमात्मा
के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।
यही मैं तुमसे भी कहता हूंः ज्ञानी मत बनना। आश्चर्यचकित होने की क्षमता मत खो देना; वही सबसे बड़ी धरोहर है। जानकार होकर मत बैठ जाना कि मैं जानता हूं। पंडित के मन में धूल जम जाती है। उसे फिर कोई चीज आश्चर्यचकित नहीं करती। वह सभी चीज को जानता हुआ मालूम होता है।
अपने ज्ञान को थोड़ा हटाओ। यह विचारों की धूल जरा अलग करो। फिर थोड़े आश्चर्यचकित होकर देखोः एक-एक पत्ती में उसी की हरियाली है, एक-एक पक्षी के गीत में उसी के स्वर हैं।
मगर तुम्हारा जानना, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारे प्राण लिए ले रहा है। कोयल गाती है, तुम कहते हो, कोयल गा रही है। मैं तुमसे कहता हूं, फिर से सुनो; कोयल के बहाने उसी ने गाया है। फूल खिलता है, तुम कहते हो, फूल खिल रहा है। मैं तुमसे कहता हूं, फिर से देखो; फूल के बहाने वही खिला है। ये सब बहाने हैं उसके। तुमने अगर समझा कि फूल खिल रहा है, चूक गए। तुमने अगर समझा कि कोयल गा रही है, चूक गए।
जरा आंख खाली करो, खिड़कियों के जरा बाहर आओ; हिंदू-मुसलमान होने को जरा पीछे छोड़ो; गीता-कुरान को जरा हटाओ; जरा खुली आंख से देखो--जैसे छोटे

बच्चे ने पहली दफा देखा हो। फिर से तुम पहली दफा इस संसार को देखो, तुम उसे पाओगे; जगह-जगह से झांकता हुआ पाओगे।
परिधि दृष्टि का दोष
अहं का कुंठित दर्शन
परिचय भ्रम की देह
अपरिचय सहज चिरंतन
परिचय भ्रम की देह
जहां-जहां तुम सोचते हो, जान लिया, परिचय हो गया, वहीं भ्रम खड़ा हो गया।
जीवन की थोड़ी घटनाओं को समझो। तुम एक स्त्री को विवाह कर लाए थे तीस साल पहले, सात चक्कर लगाए थे, भांवर डाल ली थीं, बैंड-बाजे बजे थे, घोड़े पर सवार होकर घर आ गए थे; तब से तुमने इस स्त्री को फिर से गौर से देखा? तुमने मान लिया मेरी पत्नी है, बात समाप्त हो गई। फिर से गौर से देखने की जरूरत न रही। सात चक्कर लगा लिए थे, बैंड-बाजे बजा लिए थे, एक परिचय बना लिया। पुरोहितों ने मंत्रोच्चार कर दिए थे। अपरिचित एक स्त्री थी, तुम भी अपरिचित थे, दोनों के बीच इस क्रिया-कांड से परिचय का एक नाता बना लिया। क्या सच में ही तुम अपनी पत्नी से परिचित हुए हो?
बच्चा घर में पैदा होता है, नाम रख लेते हो, पंडित को बुलाकर कुंडली बनवा लेते हो; क्या सच में ही तुम अपने बच्चे को जानते हो--कौन है? कौन आया है? कौन अवतरित हुआ है? यह कौन फिर आया? किसने देह धरी? यह कौन इस बच्चे की निर्मल आंखों से झांका? किसने तुम्हें देखा? तुम कहते हो, हमारा बेटा है। परिचय भ्रम की देह
अपरिचय सहज चिरंतन
जो जानते हैं, वे जानते हैं कि परिचय सब धोखा है। कौन किसको जानता है? जिन्हें तुम अपने कहते हो, उन्हें भी तुम कहां जानते हो? छोड़ो उनकी बात! तुम अपने को कहां जानते हो?
परिचय भ्रम की देह
अपरिचय सहज चिरंतन
सत्य की अगर सच में ही खोज करनी हो तो परिचय की जितनी सीमाएं हैं, तोड़ो; फिर-फिर झांककर देखो। परिचय को घना मत होने दो। परिचय को जड़ मत जमाने दो। परिचय की धूल को मत जमने दो। फिर-फिर स्नान कर लो, फिर-फिर अपरिचित हो जाओ; ताकि जीवन ताजा रहे, नया रहे सुबह की भांति; सुबह की ओस की भांति स्वच्छ रहे। और तब तुम सब जगह से पाओगे, वही झांक रहा है। तुम्हारी पत्नी से भी वही; तुम्हारे बेटे से भी वही। किसी दिन दर्पण के सामने खड़े होकर अचानक तुम पाओगे दर्पण में तुम्हारी छबि नहीं बन रही, उसी की बन रही है-- तुमसे भी वही।
"क्या आपने धर्म को पूरी तरह पा लिया है?"
अब तुम्हीं उत्तर खोज लेना।
"क्या आप एक सदगुरु हैं?"
होश भी नहीं तुम्हें, क्या पूछ रहे हो! इतना ही पूछो, क्या तुम सदशिष्य हो? अगर हो तो मेरे उत्तर की जरूरत न रहेगी।
यह तो ऐसे है, जैसे अंधा आदमी पूछता हो, क्या सूरज निकला है? अगर सूरज कहे भी कि निकला हूं तो भी क्या फर्क पड़ेगा! अंधा आदमी पूछेगा, सच कह रहे हो? सूरज अगर कहे, सच भी कह रहा हूं; तो अंधा आदमी पूछेगा, कोई प्रमाण है? अंधे आदमी ने बुनियादी बात ही न पूछी। पूछना था कि मैं अंधा तो नहीं हूं! मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा।
प्रश्न को सदा अपनी तरफ मोड़ो, क्योंकि खोज अपनी करनी है। मेरे सदगुरु होने न होने से तुम्हें क्या लेना-देना है? इसे तुम अपनी चिंता क्यों बनाते हो? और अगर मुझसे ही पूछ रहे हो तो हल कैसे होगा? अगर मैं कह दूं हां, तो क्या फर्क पड़ेगा? तुम्हारे मन में दूसरा सवाल उठेगा कि मैंने जो कहा, वह ठीक है, सही है? संदेह तो अपनी जगह बना रहेगा। अगर मैं दो-चार गवाहियां भी जुटा दूं कि ये रहे लोग, जो कहते हैं; तो संदेह यह उठेगा, ये गवाह कहीं सिखाए-पढ़ाए तो नहीं!

असली बात देखने की कोशिश करो। तुम्हारे भीतर संदेह है, श्रद्धा नहीं है। और संदेह से न तो सदगुरु से संबंध हो सकता है, न सत्य से संबंध हो सकता है। मेरी तुम फिक्र छोड़ो। तुम अपनी ही फिक्र कर लो, काफी है।
इतना मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम्हारे पास सीखने की क्षमता हो, अगर तुम सीखने को तैयार हो--सीखने की तैयारी का अर्थ होता है कि अगर तुम झुकने को तैयार हो, अगर तुम यह मानने को तैयार हो कि मैं जानता नहीं, तो यह प्रश्न पूछने की जरूरत न रह जाएगी; तुम मेरे गवाह बन जाओगे। और जब तक तुम मेरे गवाह न बन जाओ, तब तक कोई गवाहियां काम आने की नहीं हैं।
खोल आंख जमीं देख फलक देख फजा देख
मशरिक से उभरते हुए सूरज को जरा देख
लेकिन देखने के पहले तुम्हारी आंख खुली होनी चाहिए।
आंख खोलकर मुझे देखो, वहां उत्तर है। तुम आंख बंद करके मुझे देखते रहो
तो मैं कितने ही उत्तर दूं, तुम तक न पहुंचेंगे।
तुम अगर सीखने को तैयार हो, तुमने अगर अपना पात्र खाली किया है, तो मैं अपने को पूरा उंड़ेल देने को तैयार हूं।
लेकिन तुम्हारे पात्र में मैं देखता हूं, बूंदभर भी जगह नहीं है। तुम इतने भरे हो, जरा भी रिक्त स्थान नहीं, अवकाश नहीं। तुम्हारे भीतर आने की सुविधा कहां है? तुमने सब द्वार-दरवाजे बंद कर लिए हैं। तुमने तर्क की दीवालें बना ली हैं, शास्त्रों की दीवालें बना ली हैं। तुम उनकी ओट में छिपे बैठे हो। वहां से तुम पूछते हो, क्या आप एक सदगुरु हैं?
प्रश्न अंधेपन से आ रहा है; अन्यथा तुम्हें सभी सदगुरु मुझमें दिखाई
पड़ सकते हैं; एक की तो बात ही छोड़ दो। तुम्हारे पास आंख हो तो सूरज उगा हुआ है।
खोल आंख जमीं देख फलक देख फजा देख
मशरिक से उभरते हुए सूरज को जरा देख
लेकिन तुम भूल ही गए हो आंख खोलना। लोगों ने ऐसा समझ रखा है, जैसे यह सत्य का जिम्मा है कि वह सिद्ध करे। क्या पड़ी है सत्य को? जैसे यह सूरज का जिम्मा है कि तुम्हारी आंख भी खोले! क्या पड़ी है सूरज को? सूरज तुम्हारे द्वार पर दस्तक न देगा; आएगा, द्वार पर रुका रहेगा, द्वार खुला होगा, भीतर आ जाएगा; द्वार बंद होगा, बाहर रह जाएगा। दस्तक न देगा; कहेगा न कि मैं आ गया हूं, द्वार खोलो। चुपचाप प्रतीक्षा करेगा।
और यही सुंदर है। क्योंकि सत्य भी अगर द्वार पर दस्तक दे तो हस्तक्षेप हुआ। सूरज अगर जबरदस्ती घर के भीतर प्रवेश करने की कोशिश करे तो अतिक्रमण हुआ। अगर परमात्मा तुम्हें जबरदस्ती जगाने की चेष्टा में रत हो जाए तो तुम्हारी स्वतंत्रता कहां रही? अगर सोने का हक न हो, अगर भटक जाने की सुविधा न हो तो मनुष्य की गरिमा खो जाती है।
मनुष्य का सारा सौभाग्य यही है कि चाहे तो नर्क में गिर सकता है, अंधेरे से अंधेरी पर्तों में उतर सकता है, और चाहे तो प्रकाश के अनंत जगत को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य की महिमा यही है कि मनुष्य स्वतंत्र है। उसकी स्वतंत्रता अबाध है। मनुष्य स्वतंत्रता है, यही उसकी खूबी है, यही उसका गौरव है; यही उसकी अड़चन भी, कठिनाई भी। यही उसकी दुविधा भी है।
तुमने तो चाहा होता कि भटकने की सुविधा न होती और तुम रेल की पटरियों
की भांति होते कि डिब्बे उन पर दौड़ते चले जाते, कहीं और जाने की जरूरत न होती। मगर तब सत्य अगर गुलामी हो, जबरदस्ती हो तो कुरूप हो गया। और सत्य और कुरूप हो जाए--सत्य ही न रहा। सत्य के सौंदर्य में यह समाविष्ट है कि वह स्वतंत्र होगा।
इसलिए तो परमात्मा प्रगट नहीं है। उसका प्रगट होना बड़ी परतंत्रता हो जाएगी। उसका अप्रगट होना स्वतंत्रता है।
तुम थोड़ा सोचो, परमात्मा जगह-जगह बीच में आकर खड़ा हो जाए--तुम सिगरेट पीने जा रहे थे, वे बीच में खड़े हो गए! तुम शराब ढालने ही के करीब थे कि वे सामने खड़े हो गए! तुम किसी की जेब काट ही रहे थे कि वे आ गए--जीना मुश्किल हो जाएगा, कठिन हो जाएगा।

नहीं, तुम्हें तुम पर ही छोड़ा हुआ है। तुम्हें अपनी ही भूलों से सीखना है। तुम्हें भटक-भटककर राह खोजनी है। और जो राह बिना भटके मिल जाए, बड़ी मूल्यवान नहीं। जो बहुत भटककर मिलती है, उसी में मूल्य है। जिसके लिए कीमत चुकानी पड़ती है, उसी में मूल्य है।
तो मैं तुमसे कहूंगा, खोजो मुझे; मैं यहां मौजूद हूं। तुम्हारे द्वार
पर खड़ा हूं, लेकिन दस्तक न दूंगा; तुम्हें द्वार खोलने पड़ेंगे। मैं भीतर आने को राजी हूं, लेकिन बिना तुम्हारे निमंत्रण के न आऊंगा। जब तक न पाऊंगा कि तुम्हारा हृदय स्वागतम बन गया, तब तक भीतर आने का कोई कारण नहीं है।
यही पूछो कि क्या तुम सदशिष्य हो? यही पूछो कि क्या तुम्हारी आंख खुली है? क्या तुम सीखने को तैयार हो?
क्योंकि सदगुरु को पहचानना हो तो शिष्यत्व पाना होगा; और तो कोई उपाय नहीं। सरोवर की और क्या पहचान है? --कि तुम प्यासे होओ। तुम एक सरोवर के किनारे खड़े हो, प्यासे नहीं हो, और तुम उस पानी से पूछते हो, क्या तुझमें प्यास को बुझाने की क्षमता है? सरोवर क्या कहेगा? प्यास ही न हो तो सरोवर के पास क्या उपाय है सिद्ध करने का कि प्यास को बुझाने की क्षमता है। प्यास होनी चाहिए। तो तुम पूछोगे थोड़े ही, प्यास ही तुम्हें सरोवर में ले जाएगी। तुम पूछोगे थोड़े ही, प्यासा थोड़े ही पूछता है कि पानी बुझाएगा प्यास को? प्यासा तड़फता है पानी के लिए। प्यासा बिना पूछे पी जाता है; पीकर जानता है कि प्यास बुझती है। और वहीं उसी अनुभव से समझ आती है। अनुभव के अतिरिक्त और कोई समझ नहीं है।
मैं सदगुरु हूं या नहीं, सरोवर हूं या नहीं--और कोई उपाय नहीं, प्यास
को जगाकर आओ। प्यास लेकर आओ। पीकर देखो!
समझने की, सूत्र की बात इतनी ही है कि नजर अपनी तरफ, ध्यान अपनी तरफ।
यह पर की तरफ नजर ही सांसारिक दृष्टि है। अपनी तरफ नजर, तो तुम बहुत सीख सकोगे--मुझसे ही नहीं और बहुतों से भी सीख सकोगे। और अगर तुम शिष्य बनने को तैयार हुए तो यह सारा संसार तुम्हें सदगुरुओं से भरा हुआ दिखाई पड़ेगा। वृक्ष और चट्टानें और झरने सभी सदगुरु हो जाएंगे।
सूफी फकीर हुआ, हसन। जब वह मरने लगा, किसी ने उससे पूछा, तुम्हारा गुरु कौन था? उसने कहा, फेहरिस्त बड़ी लंबी है, सांसें बहुत कम बची हैं। अगर मैं अपने सारे गुरुओं की बात करूं तो मुझे उतनी ही बड़ी जिंदगी चाहिए पड़ेगी, जितनी बड़ी जिंदगी मैं जीया। क्योंकि क्षण-क्षण उनसे मुलाकात हुई, जगह-जगह वे मिले।
फिर भी उस आदमी ने जिद की कि तुम पहले सदगुरु का बता दो सिर्फ, जिससे तुम्हें पहली झलक मिली। उसने कहा, मैं एक गांव से गुजरता था। और तब मैं बड़ा अकड़ा हुआ था, क्योंकि मैंने फलसफा पढ़ा था, दर्शनशास्त्र पढ़ा था, शास्त्र कंठस्थ कर लिए थे, तर्क सीख लिए थे; बड़ी अकड़ थी। एक छोटे से बच्चे को मैंने मस्जिद की तरफ जाते देखा; एक हाथ में दीया लिए हुए था। मैंने उससे पूछा कि सुन, दीया तूने ही जलाया? उसने कहा, मैंने ही जलाया। तो मैंने उससे पूछा, तू मुझे यह बता--एक दार्शनिक प्रश्न पूछा--कि जब तूने ही दीया जलाया तो तुझे पता होगा कि ज्योति कहां से आई? कहीं से तो आई होगी। और जब तूने ही जलाया तो जरूर देखी होगी; ज्योति आई कहां से? उस बच्चे ने कहा, ठहरो। उसने एक फूंक मारकर दीया बुझा दिया और उसने कहा, ज्योति गई। तुम बता सकते हो, कहां गई? तुम्हारे सामने ही गई है।
हसन ने कहा, मेरी अकड़ टूट गई। झुककर मैंने उसके पैर छू लिए। एक छोटे बच्चे ने मेरा सारा दर्शनशास्त्र कूड़ा-करकट में डाल दिया; आंख खोल दी। एक छोटे बच्चे को भी मैं सिखाने की चेष्टा कर रहा था, कुछ जो मुझे ही पता नहीं था। मेरे गुरु होने की चेष्टा उसने तोड़ दी और गुरु हो गया।
और तुम पूछते हो बुद्धों के पास जाकर, महावीरों के पास जाकर, क्राइस्टों के पास जाकर--आप सदगुरु हैं?
तुम्हारे अंधेपन की कोई सीमा नहीं। जिनके पास आंख है, उन्हें छोटे बच्चों में भी सदगुरु मिल गए हैं। राह चलती घटनाएं शास्त्र हो गई हैं। दुर्घटनाओं से सूत्र मिल गए हैं मुक्ति के। भटकन का सार-निचोड़ मार्ग बन

गया है। भूल-चूक से इत्र निचोड़ लिया है। भूल-चूक की ईंटों को रखकर भवन बना लिया है मुक्ति का। असली सवाल तुम्हारे सीखने का है।
अपने मन में डूबकर पा जा सुरागे-जिंदगी
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन, अपना तो बन
लेकिन अगर तुम अपने बन जाओ तो मेरे बन ही गए। तुम अगर अपने बन गए तो परमात्मा के बन ही गए। तुम अपने ही नहीं हो, यही अड़चन है।
और तीसरी बात कि "क्या आप परमात्मा को मुझ तक लाने में समर्थ हैं?"
जैसे कोई यह मेरी परेशानी हो! जैसे कोई चुनौती दी जा रही है!
तुम अगर पात्र नहीं हो तो कोई भी समर्थ नहीं है; और तुम अगर पात्र हो
तो किसी माध्यम की जरूरत नहीं है। तुम्हारी पात्रता ही परमात्मा को ले आती है। तुम जिस क्षण पात्र हो जाते हो, उसी क्षण वर्षा हो जाती है; क्षणभर की देरी नहीं है। कहावत हैः देर है, अंधेर नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, देर भी नहीं है। अंधेर तो है ही नहीं, देर भी नहीं है। कहावत कुछ गलत है। न देर है, न अंधेर है। जिस क्षण तुम तैयार हो, उसी क्षण मिल जाता है। और जब तक न मिले, इतना ही जानना कि तुम तैयार नहीं हो; शिकायत मत करना।
"क्या आप परमात्मा को मुझ तक लाने में समर्थ हैं?"
मेरा लेना-देना क्या? तुम हो, तुम्हारा परमात्मा है, तुम्हारी खोज है। अगर मेरे कारण तुम्हें थोड़ा सहारा मिल जाए तो बस, काफी है। उसके लिए तुम्हें अनुगृहीत होना चाहिए। इधर तुम मुझे चुनौती दे रहे हो कि जैसे यह भी काम मेरा है। जैसे कि अगर परमात्मा तुम तक न आया तो कसूर मेरा होगा। जैसे पकड़ा मैं जाऊंगा कि तुम तक परमात्मा क्यों न आया?
तुमने गुलाम होने के कितने रास्ते खोजे हैं! तुम गुलामी छोड़ते ही नहीं। कभी धन की गुलामी, कभी पद की गुलामी, अगर वहां से तुम बचते हो तो गुरु की गुलामी। गुलामी का मतलब यह होता है, कोई और करे; तुम किसी और पर निर्भर हो। तुम भिखमंगे रहने की जिद क्यों किए बैठे हो? परमात्मा ने चाहा है कि तुम सम्राट होओ।
मैं तुम्हें कुछ इशारे दे सकता हूं, खोज तो तुम्हें ही करनी होगी।
इसका यह अर्थ नहीं कि मैं परमात्मा को तुम तक लाने में समर्थ नहीं हूं; अगर मैं अपने तक ले आया तो तुम तक लाने में क्या अड़चन है? कोई अड़चन नहीं है सिवाय तुम्हारे। मैं सदा ही तुम्हारे सामने परमात्मा की भेंट लिए खड़ा हूं। जरा द्वार-दरवाजे खोलो, जरा देखो तो सही क्या मैं तुम्हारे लिए ले आया हूं? मैं तुम्हारे सामने लिए खड़ा हूं और तुम पूछते हो कि क्या आप समर्थ हैं? बड़ी मजे की बात रही। तुम्हारे पास दृष्टि ही नहीं है; लोभ है, दृष्टि नहीं है। पाना चाहते हो, लेकिन पाना चाहने की कोई तैयारी नहीं है। और परमात्मा को लाना थोड़े ही पड़ता है, आया ही हुआ है।
कब लूट-झपट से हस्ती की दुकानें खाली होती हैं
यहां पर्वत-पर्वत हीरे हैं यहां सागर-सागर मोती हैं
तुम कितना ही लूटो-झपटो, यहां कोई परमात्मा कम थोड़े ही पड़ जाता है!
यहां पर्वत-पर्वत हीरे हैं यहां सागर-सागर मोती हैं
यहां परमात्मा ने तुम्हें सब तरफ से घेरा ही हुआ है।
मैं तुम्हें वही दे रहा हूं, जिसे तुम पाए ही हुए हो। और मैं तुमसे वही छीन लेना चाहता हूं, जो तुम्हारे पास है ही नहीं। यह बेबूझ लगेगा, लेकिन कोई और उपाय नहीं है इसे कहने का।
फिर मैं दोहरा देता हूंः मैं तुमसे वही छीनना चाहता हूं, जो तुम्हारे पास नहीं है; और तुम्हें वही देना चाहता हूं, जो तुम्हारे पास सदा से है।

दूसरा प्रश्नः भीतर कुछ स्थगित हो गया है और पूरे शरीर में पूरे समय नृत्य चलता है; कृपा करके कुछ कहें।

शुभ है, मंगल है।
ठहरना ही सब कुछ है। अवाक होकर भीतर कुछ रुक जाए, भीतर की गति बंद हो जाए, तो संसार की गति बंद हो जाती है। यहां भीतर कुछ रुका कि बाहर समय रुक

जाता है। यहां भीतर कुछ रुका कि चांद-तारे रुक जाते हैं। यहां भीतर कुछ रुका कि सब रुक जाता है। क्षण शाश्वत हो जाता है।
और जहां विचार रुकते हैं, वहीं पहली दफा अर्थ का आविर्भाव होता है। जहां मन ठहरता है, रुकता है, न हो जाता है, वहीं पहली बार जीवन का सुराग मिलता है।
हकीकत में पूछो तो मुद्दआ वही था
जबां रुक गई थी जहां कहते-कहते
जो कहना चाहते हो, उसे तो कहते-कहते जबान रुक जाएगी। जो कहना चाहते हो,
वह जबान न कह सकेगी। जो सोचना चाहते हो, वह सोचने में न आएगा; सोचना रुक जाएगा। और यह मंजिल कुछ ऐसी नहीं कि तुम चलोगे तो पहुंचोगे, यह मंजिल कुछ ऐसी है कि तुम रुकोगे तो पहुंच जाते हो।
संसार में दौड़ो। दौड़ना ही पड़ेगा, मंजिल बाहर है; मंजिल दूर है--कहीं वहां, जहां आकाश क्षितिज को छूता है, सदा वहां है। कितना ही दौड़ो, पहुंच नहीं पाते।
यह कभी तुमने समझने की कोशिश की कि संसार में दौड़ो कितना ही, पहुंचते नहीं। और परमात्मा को पाने के लिए दौड़ने की जरूरत ही नहीं है; क्योंकि वह ऐसा घर है, जो तुमने कभी छोड़ा नहीं। आंखें कितने ही दूर चली गई हों, चांद-तारों में चली गई हों, तुम बैठे उसी घर में रहे हो। सपने कितने ही दूर तुम्हें ले गए हों, पर यात्रा सपनों की है। जब जागोगे, अपने घर में अपने को पाओगे।
परमात्मा के लिए दौड़ना नहीं पड़ता, रुकना पड़ता है। परमात्मा को दौड़कर
हम खो रहे हैं।
अब इसे ऐसा कहेंः संसार को दौड़-दौड़कर भी पाना मुश्किल है। परमात्मा
को पाने का एक ही उपाय हैः रुक जाना। जो दौड़-दौड़कर भी नहीं मिलता, वही संसार है; जो बिना दौड़े मिल जाता है, वही परमात्मा है। नाम अलग-अलग होंगे। गीता कहती हैः स्थितप्रज्ञ; जहां प्रज्ञा ठहर जाती है, जहां चित्त डांवाडोल नहीं होता।
"भीतर कुछ स्थगित हो गया है।"
हो जाने दो। सहारा दो। जल्दी में कहीं उसे बिगाड़ मत देना; कहीं हिलाने
मत लग जाना। क्योंकि मन पुरानी आदतों से बड़ा परेशान और पीड़ित है। नए को मन पहचान ही नहीं पाता। और जब मन ठहरता है तो बड़ी घबड़ाहट होती है, जी बड़ा घबड़ाता है। क्योंकि बड़ी बेचैनी लगती है--यह क्या हो गया? सदा चलता हुआ राग, सदा चलते हुए विचार, सदा चलते हुए पहिए एकदम से रुक गए! और डर यह लगता है कि चल-चलकर न पहुंच पाए, अब तो रुके जा रहे हैं, तो कैसे पहुंचेंगे? तो बड़ी घबड़ाहट होती है।
तो कहीं ऐसा न हो कि उस घबड़ाहट में तुम जो मन रुक रहा था, उसे फिर चला दो। बहुत बार ऐसी भूल होती है। जब ध्यान सधने लगता है--उन लोगों का भी, जो ध्यान करने के लिए बड़े आतुर थे--तो घबड़ाहट पकड़ती है। मन को चलाने की इच्छा हो जाती है। कुछ भी चला दो!
क्योंकि जब ध्यान सधने लगता है और शून्यता उतरने लगती है तो ऐसा लगता है, मरे! अब मरे! मृत्यु हुई! क्योंकि तुमने मन के साथ अपने को एक जाना है। उसके पार तो तुम्हारा अपना कोई अनुभव नहीं। जब मन ठहरता है, लगता है, हम भी गए। यह तो महंगा पड़ गया। तुम तो सोचते थे, हम बचेंगे--सुंदर होकर, सत्यतर होकर, शुभ होकर। हम बचेंगे, शाश्वत होकर। यह तो उलटा हो गया। बीमारी को मिटाने गए थे, यह तो बीमार मिटने लगा। यह तो औषधि थोड़ा ज्यादा काम कर गई। घबड़ाहट पकड़ेगी।
उसी समय सदगुरु के साथ की जरूरत है। सदगुरु के साथ की जरूरत दो जगह बड़ी गहरी हैः पहली, तुम्हें रास्ते पर चला दे; और दूसरी, जब मंजिल करीब आने लगे, तब तुम्हें भागने न दे। नहीं तो तुम पीछे लौट जाना चाहोगे। तुम कहोगे, छोड़ो! यह तो ज्यादा हो गया। मरने को हम न आए थे।
ध्यान मृत्यु है। विचार ठहरते हैं, मौत आती मालूम पड़ेगी। मौत को अंगीकार करना सीखना होगा। जिसने मौत को स्वीकार कर लिया, वह अमृत हो गया।

और इसलिए भीतर एक नृत्य की धुन बज रही है, भीतर कोई नाच चल रहा है। मन
जब ठहरता है, तभी नाच जगता है। जब मन ठहरता है, तभी अपरिचित, अभिनव गीत पैदा होते हैं। जब मन ठहरता है तो झरोखे खुलते हैं, और नई हवाएं, ताजी हवाएं अस्तित्व की, प्राणों में लहरें लेने लगती हैं।
इधर तुम मरते नहीं कि उधर जीवन उतरने लगता है। तुम्हारी मृत्यु परम जीवन का प्रारंभ है। तुम्हारा सूली पर होना एक तरफ, और दूसरी तरफ तुम सिंहासन पर विराजमान हो जाते हो। सूली और सिंहासन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हमीं खो गए तुमको पाने से पहले
हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हो ही जाएंगे। मन ही खो जाएगा, होश किसे रह जाएगा? मन ही टूट जाएगा, अहंकार कहां बचेगा? अहंकार तो मन का ही जोड़ है, मन का ही भ्रम है। यह ख्याल कि मैं हूं, यह भी एक विचार है। जब सभी विचार ठहर जाएंगे, यह विचार भी ठहर जाएगा। मैं हूं, ऐसा भी पता न चलेगा।
हुए होश गुम तेरे आने से पहले
हमीं खो गए तुमको पाने से पहले
सदा ऐसा ही हुआ है। परमात्मा से मनुष्य का कभी मिलन नहीं होता। मनुष्य होता है, तब तक परमात्मा नहीं होता। परमात्मा होता है तो मनुष्य नहीं होता। मिलन कभी नहीं होता। परमात्मा से मिलना अपनी महामृत्यु से मिलना है। लेकिन महामृत्यु से ही मिलना महाजीवन का द्वार है।
कोई ऐसी भी है सूरत तेरे सदके साकी
रख लूं मैं दिल में उठाकर तेरे मैखाने को
कोई ऐसा भी ढंग है--साकी से पूछता है--कोई ऐसा भी ढंग है...
कोई ऐसी भी है सूरत तेरे सदके साकी
रख लूं मैं दिल में उठाकर तेरे मैखाने को
कि तेरी पूरी मधुशाला को उठाकर दिल में रख लूं? फिर पीना न पड़े।
हां, ऐसी भी सूरत है। उसी सूरत को सिखाने के लिए यह पाठशाला है। क्या चुल्लू-चुल्लू पीना! क्या कुल्हड़-कुल्हड़ पीना! पूरी मधुशाला को ही उठाने का रास्ता है कि हृदय में ही रख लो।
परमात्मा भीतर आ जाए तो जीवन का मधुमास आ जाता है; सारी मधुशाला भीतर
आ जाती है। तब एक नाच का जन्म होता है--नाच, जिसमें गति नहीं; नाच, जहां सब ठहरा हुआ है और फिर भी नृत्य चल रहा है। एक गीत, जहां ध्वनि नहीं है, परिपूर्ण शून्य मौन है, फिर भी स्वर बज रहा है। अनाहत नाद उसको ही कहा है। नाद-ब्रह्म उसको ही कहा है। ध्वनि खो जाती है, फिर भी नाद रह जाता है। बड़ा कठिन है कहना; समझना भी कठिन है; लेकिन होता है।
बुद्धि को समझना कितना ही कठिन हो, उससे इतना ही सिद्ध होता है कि बुद्धि की समझ बहुत दूर नहीं जाती। बुद्धि की कोटियों के बाहर पड़ता है, लेकिन होता है। जो सोचते बैठे रहेंगे कि ऐसा हो सकता है कि नहीं, वे बैठे ही रह जाएंगे।
हिम्मत जुटाओ; ऐसा होता है, मैं तुमसे कहता हूं। और तुम भी ज्यादा दूर नहीं हो उस घड़ी से; जरा हाथ बढ़ाने की बात है। तर्क कहीं तुम्हें पंगु न बना दे। कहीं तर्क तुम्हारा पक्षाघात, पैरालिसिस न हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि तर्क ही तर्क में खो जाओ, नृत्य से वंचित रह जाओ।
देख चुके तर्क का तांडव बहुत; अब थोड़े अतर्क, श्रद्धा का, निर्विचार
का नृत्य भी देखो। उसको देखते ही सब नाच फीके हो जाते हैं। और उसे देख लेने के बाद तुम्हें सब जगह उसका नृत्य दिखाई पड़ने लगता है।
हर दर्पण तेरा दर्पण है
हर चितवन तेरी चितवन है
मैं किसी नयन का नीर बनूं
तुझको ही अर्ध्य चढ़ाता हूं
हर क्रीड़ा तेरी क्रीड़ा है
हर पीड़ा तेरी पीड़ा है

मैं कोई खेलूं खेल
दांव तेरे ही साथ लगाता हूं
हर वाणी तेरी वाणी है
हर वीणा तेरी वीणा है
मैं कोई छेडूं तान
तुझे ही बस आवाज लगाता हूं

तीसरा प्रश्नः पुराने शास्ता को हम परंपरा से जानते हैं, जो कि बहुत आसान है; जीवित शास्ता को पहचानने के लिए काफी विकसित प्रज्ञा चाहिए। जाने कैसे हम तो भटकते हुए आपके पास आ पहुंचे हैं। और पास रहकर भी आपको कहां जान पाते हैं?

पुराने शास्ता को भी तुम कहां जान पाते हो? जानते लगते हो, आभास होता
है जानने का; जान कहां पाते हो? अगर जान लो तो पुराना तत्क्षण नया हो जाता है। पुराना फिर पुराना कहां रह जाता है?
अगर बुद्ध को तुम जान लो तो बुद्ध समसामयिक हो गए; पच्चीस सौ साल पहले हुए ऐसा नहीं, अभी हो गए, तुम्हारे साथ खड़े हो गए। अगर तुम जीसस को पहचान लो और जान लो तो समय का फासला मिट जाता है। कोई दूरी नहीं रह जाती, हमराही हो जाते हो।
पुराने को भी कहां पहचान पाते हो? अगर पुराने को ही पहचान लेते, अगर पुराने तक को पहचान लेते, तो नए को पहचानने में दिक्कत ही कहां होती? परंपरा से सिर्फ आभास पैदा होता है। जानते लगते हो माना, जानते नहीं।
जैन घर में पैदा हुए हो, महावीर को जानते लगते हो; बचपन से सुनी बातें, सुनी कथाएं। हिंदू घर में पैदा हुए, कृष्ण को जानते लगते हो। मुसलमान घर में पैदा हुए तो मोहम्मद को जानते लगते हो।
सुनते-सुनते, पुनरुक्ति से, बार-बार दोहराने से मन पर छाप पड़ जाती है। बार-बार दोहराने से ऐसा अहसास होने लगता है कि पहचान हो गई। पुनरुक्ति से कहीं सत्य का कोई संबंध है! यह तो प्रचार हुआ, प्रोपेगेंडा हुआ।
यह तो ऐसा ही हुआ जैसा कि बाजार में चल रहा है। अखबार खोलोः लक्स टायलेट साबुन। फिल्म देखने जाओः लक्स टायलेट साबुन। रास्ते पर तख्ते लगे हैं जगह-जगहः लक्स टायलेट साबुन। पुनरुक्ति की जा रही है। अब तो बिजली के अक्षर बने हैं और वैज्ञानिकों ने व्यवस्था कर दी है कि वे झिलमिलाते रहें, बुझते-जलते रहें। क्योंकि अगर बिना बुझे हुए बिजली के अक्षर लगे रहें तो एक ही बार तुम पढ़ोगे; पुनरुक्ति बार-बार न होगी। निकले--अगर तुम्हें पांच मिनट लगे निकलने में और दस दफा अक्षर बुझे और जले तो तुम्हें दस दफा पढ़ना पड़ेगा--लक्स टायलेट साबुन, लक्स टायलेट साबुन... दस दफा दोहराना पड़ेगा। करोगे क्या? वह बिजली आगे जल रही है, बुझ रही है। वह पुनरुक्ति मन में लकीर खींच जाती है।
फिर तुम दुकान पर गए, दुकानदार पूछता है, कौन सा साबुन? तुम कहते हो, लक्स टायलेट साबुन। तुम सोचते हो, तुम कह रहे हो, तो गलती में हो। वे जो करोड़ों रुपए कंपनियां खर्च कर रही हैं विज्ञापन के ऊपर, पागल नहीं हैं। तुम नहीं कह रहे हो, कंपनियों के विज्ञापन तुमसे बोल रहे हैं--लक्स टायलेट साबुन! तुम यही सोचते हो कि तुमने चुना। तुम यही सोचते हो कि स्वतंत्र रूप से तुमने विचारा। तुम यही सोचते हो कि अनुभव से तुमने जाना कि लक्स टायलेट साबुन सबसे अच्छी साबुन है। तुमने कुछ नहीं जाना। तुम्हारे मन को भर दिया गया।
तुमसे जब कोई पूछता है, तुम हिंदू हो? तुम कहते हो, हां। यह हां भी तुमसे नहीं आ रही--लक्स टायलेट साबुन! तुमसे कोई पूछता है, ईश्वर को मानते हो? तुम कहते हो, हां; बड़ी अकड़ से कहते हो कि मैं आस्तिक हूं। यह आस्तिकता भी तुम्हारी नहीं--लक्स टायलेट साबुन! महावीर भगवान हैं? तुम कहते हो, निश्चित। यह निश्चित भी तुम्हारा नहीं--लक्स टायलेट साबुन! पुनरुक्तियां हैं, जो बहुत बार दोहराई गई हैं। इतनी बार दोहराई गई हैं कि तुम भूल ही गए हो। लौटो वापस, गौर से देखो। यह सिर्फ संस्कार है। और

इस संस्कार के कारण तुम पुराने को तो पहचान ही नहीं पाते, इस संस्कार के कारण तुम नए को भी नहीं पहचान पाते।
अब यह थोड़ा समझने जैसा है। यह पुराना तुम्हें पुराने को तो पहचानने नहीं देता, क्योंकि पहचानने की तो सुविधा तभी थी जब तुम्हारा मन संस्कार-मुक्त होकर खोज करता।
तुमने कभी खोज की कि महावीर भगवान थे या नहीं? तुमने कभी खोज की, बुद्ध शास्ता थे या नहीं? तुमने कभी निष्पक्ष भाव से, निर्धारणापूर्ण होकर, बिना कोई पहले से पक्षपात बनाए कोई अनुसंधान किया?
नहीं; पुराने को तो तुम पहचान ही न पाए। अब पुराने को भगवान मान लिया
है तो नए को मानने में अड़चन होती है। क्योंकि पुरानी आस्था पीड़ित अनुभव करती है। ऐसा लगता है, जैसे किसी से धोखा किया। जैसे किसी से विवाह कर लिया और फिर किसी के प्रेम में पड़ गए तो भीतर ग्लानि होती है, पीड़ा होती है, दंश होता है कि यह क्या हुआ? विवाह तो महावीर से हुआ था, बुद्ध से हुआ था, सात फेरे तो उनके साथ लग गए थे, अब किसी और को भगवान मान लें? किसी और को गुरु मान लें? भीतर ग्लानि होती है, पीड़ा होती है, परेशानी होती है। अंतस-चेतना में दुख मालूम होता है। लगता है, धोखा कर रहे हैं, दगा कर रहे हैं।
इसी तरकीब से तुम पुराने से उलझे रहते हो, नए को खोजने से बच जाते हो। पुराने को खोज लो, हर्जा नहीं। क्योंकि पुराना भी इतना ही सत्यतर है, इतना ही पूर्णतर है, जितना नया।
सत्य के जगत में कुछ पुराना और नया थोड़े ही होता है! वहां कोई समय थोड़े
ही है! वहां तो सब ताजा है, सदा ताजा है। वहां तो सभी सद्यस्नात, अभी-अभी नहाया हुआ है। वहां कभी धूल जमती ही नहीं।
लेकिन पुराने को तो पहचान नहीं पाते। पहचानने की सुविधा ही नहीं दी जाती। इसके पहले कि बच्चा सोचे-विचारे, हम उसके दिमाग में कूड़ा-करकट डाल देते हैं। हम अपनी धारणा उसके मन में भर देते हैं। कहीं ऐसा न हो कि वह सोच-विचार करे और हमारी धारणा को ठीक न पाए। मां-बाप बड़े डरे हुए हैं; उनको खुद ही शक है अपनी धारणा पर। बच्चे के मन में भर देते हैं, इसके पहले कि वह सोच सके, विचार सके। और यही वह अपने बच्चों के साथ करेगा। इस तरह पीढ़ी दर पीढ़ी प्रचार चलता है।
प्रचार धर्म नहीं है, धर्म तो क्रांति है। धर्म तो प्रत्येक व्यक्ति
का अपनी स्वेच्छा से लिया गया निर्णय है। धर्म कोई दूसरे को दे नहीं सकता। धर्म लिया जा सकता है, दिया नहीं जा सकता।
मुझे फिर से दोहराने देंः धर्म लिया जा सकता है। तुम चाहो तो ले सकते
हो, लेकिन कोई तुम्हें दे नहीं सकता।
लेकिन धर्म दिया जा रहा है। मां-बाप दे रहे हैं, स्कूल दे रहा है। सारी दुनिया में चिंता रहती है मां-बाप को कि बच्चों को धर्म की शिक्षा दी जाए। धर्म की शिक्षा का क्या मतलब होता है उनका? हिंदू को हिंदू बनाया जाए, मुसलमान को मुसलमान बनाया जाए, कहीं गड़बड़ न हो जाए।
और मैं जानता हूं कि अगर बच्चों को इक्कीस वर्ष तक हिंदू-मुसलमान न बनाया जाए, तो जिसको मां-बाप गड़बड़ कहते हैं, वह हो जाएगी। मैं उसे गड़बड़ नहीं कहता; वह बड़ी स्वतंत्रता होगी। बड़ी अदभुत दुनिया का जन्म हो जाएगा। क्योंकि मैं मानता हूं, धर्म एक ऐसी अंतर्निहित जरूरत है कि उन्हें खुद ही खोजना पड़ेगा--खोजना ही पड़ेगा। ये झूठे धर्म, जो सिखाने से पैदा हो जाते हैं, इनकी वजह से वे खुद खोज पर नहीं निकलते।
अगर प्रत्येक बच्चे को खुला छोड़ दिया जाए, कोई धर्म का शिक्षण न हो-- धर्म का शिक्षण होना ही नहीं चाहिए--इक्कीस वर्ष की उम्र तक अगर धर्म की जबर्दस्ती न की जाए, तो इक्कीस वर्ष के बाद प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में खोज शुरू हो जाएगी; हो ही जाती है। धर्म वैसे ही पैदा होता है एक दिन, जैसे कामवासना पैदा होती है।
कामवासना चौदह साल की उम्र में पैदा होती है; ऐसे ही इक्कीस साल की उम्र में धर्म का आविर्भाव होता है। वह स्वाभाविक है। आज नहीं कल चेतना पूछेगी ही कि सत्य क्या है? आज नहीं कल आदमी जानना ही चाहेगा, मैं खड़ा कहां

हूं? कहां से आया हूं? कौन हूं? आज नहीं कल आदमी पूछेगा ही कि मृत्यु के पार क्या है? कुछ बचता है या सब खो जाता है? सब मिट्टी हो जाता है?
और अगर मन मुक्त हो तो जीवित गुरु को पहचानने में कोई अड़चन न आएगी। खोजना ही पड़ेगा; खोज तुम्हें किसी न किसी गुरु के पास ले ही आएगी। अभी पुराने गुरु से अटके होने की वजह से नए के पास नहीं आ पाते।
अब तुमसे मैं बड़ी उलझन की बात कहता हूंः पुराने से अटके होने के कारण
नए के पास नहीं आ पाते। पुराने को तो पहचान ही नहीं पाते, क्योंकि उस पहचान में भी स्वतंत्र खोज नहीं है, नए के पास भी नहीं आ पाते। अगर तुम नए के पास आ जाओ और स्वच्छ मन से, पक्षपात रहित होकर नए को पहचान लो, तो मैं तुमसे और एक बात कहता हूं कि उसी में तुम पुराने को भी पहचान लोगे। और यह पहचान बड़ी अनूठी होगी; यह संस्कार की नहीं होगी, यह अनुभव की होगी।
अगर तुमने मुझे चाहा है, अगर सच में तुम मेरे करीब आए हो, तो मेरे करीब आने में क्या तुम बुद्ध के करीब नहीं आ गए? अगर सच में तुमने मुझे चाहा है, तो तुम्हारी चाहत में क्या तुमने महावीर को नहीं चाह लिया? अगर सच में तुमने मेरा स्पर्श अनुभव किया है तो तुमने कृष्ण की बांसुरी सुन ली; तो तुमने मोहम्मद की पगध्वनि सुन ली। क्योंकि मैं वही बोल रहा हूं, जो उन्होंने बोला था। उनकी भाषा उनके युग की थी, मेरी भाषा मेरे युग की है। उनके ढंग उनके युग के थे, मेरा ढंग मेरे युग का है।
मैं तुम्हारे पास खड़ा होकर चिल्ला रहा हूं, अगर वह तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता, तो यह मानना असंभव है कि तुम्हें पच्चीस सौ साल पीछे की आवाज पहचान में आ जाएगी।
"पुराने शास्ता को हम परंपरा से जानते हैं, जो कि बहुत आसान है... ।"
जानना आसान नहीं है, मान लेना कि जानते हैं, आसान है।
"... जीवित शास्ता को पहचानने के लिए काफी विकसित प्रज्ञा चाहिए।"
नहीं, जीवित शास्ता को पहचानने के लिए विकसित प्रज्ञा नहीं चाहिए।
प्रज्ञा तो विकसित होगी पहचानने के बाद। अगर उसको पहले शर्त बना लोगे तब तो असंभव हो जाएगा।
फिर क्या चाहिए? साहस चाहिए, प्रज्ञा नहीं। हिम्मत चाहिए। अंधेरे में, अनजान में उतरने का साहस चाहिए, दुस्साहस चाहिए।
अगर तुम्हारे पास विकसित प्रज्ञा हो तब तुम शास्ता को पहचान पाओ, तो फिर शास्ता की जरूरत ही क्या रह जाएगी? तुम्हारी विकसित प्रज्ञा ही काफी है; वही तुम्हारी शास्ता हो जाएगी।
नहीं, विकसित प्रज्ञा तो होगी, जब तुम किसी सदगुरु को पहचान लोगे; जब तुम किसी को मौका दोगे और किसी के हाथों को अपने भीतर आने दोगे; और किसी को अवसर दोगे कि उसकी अंगुलियां तुम्हारी बीन को छेड़ दें; तब तुम्हारी प्रज्ञा की ज्योति जगेगी। जब तुम किसी को मौका दोगे कि तुम्हारी बुझती ज्योति को उकसा दे; जब तुम किसी पर इतना भरोसा करोगे कि कहोगे कि आ जाओ भीतर, मुझे भरोसा है।
श्रद्धा चाहिए, विकसित प्रज्ञा नहीं। और श्रद्धा से बड़ा कोई साहस नहीं है। श्रद्धा बड़ी अनूठी घटना है। श्रद्धा का अर्थ हैः हमें पता नहीं है कहां यह आदमी ले जाएगा। पता नहीं मार्गदर्शक है कि लुटेरा है; पता नहीं स्वर्ग की राह पर चला है कि नर्क की राह पर चला है। हजार संदेह उठेंगे, हजार मन डांवाडोल होगा, विचार न मालूम कितनी बातें उठाएंगे।
श्रद्धा का अर्थ हैः यह सब होता रहे, इस सब के बावजूद भी जाना है। किसी पुकार ने पकड़ लिया है, कोई चुनौती आ गई है, जाना है। अगर भटकाएगा तो भटकेंगे। अगर अंधेरे में उतार देगा तो उतरेंगे। लेकिन इस आदमी ने तुम्हारे भीतर कुछ छू लिया है, इसके साथ जाना ही होगा। एक अनिर्वचनीय आकर्षण पैदा हुआ है। इस आदमी ने तुम्हारे भीतर के सोए तार छेड़ दिए हैं। अपनी होशियारी एक तरफ रख देना है श्रद्धा। अपनी समझदारी एक तरफ रख देना है श्रद्धा।
नाखुदा की रविशे-फिक्र ने मारा वरना
गर्क होता मैं जहां पर वहीं साहिल होता

मांझी की बहुत ज्यादा चिंता ने--कि ठीक-ठीक नाव चले, ठीक-ठीक पतवार चले, ठीक मौसम में चले, ठीक दिशा में चले, किनारे पर पहुंचकर ही रहे--मांझी की अतिशय चिंता ने डुबाया। मांझी यानी तुम्हारा मन; उसी के हाथ में तुमने पतवार दी हुई है, नाव दी हुई है।
नाखुदा की रविशे-फिक्र ने मारा वरना
गर्क होता मैं जहां पर वहीं साहिल होता
जो श्रद्धा में डूबने को तैयार हैं, जहां डूबते हैं, वहीं किनारा पा लेते हैं। संशय में चलने वाले किनारों पर पहुंचकर भी टकराते हैं और डूब जाते हैं। श्रद्धा में डूबने वाले, मझधार में भी डूबते हैं और किनारा पा जाते हैं। श्रद्धा की अल्केमी अलग, उसका शास्त्र अलग। साहस चाहिए।
जैसे तुम प्रेम में पड़ते हो, एक युवक एक युवती के प्रेम में पड़ जाता है, या एक युवती एक युवक के प्रेम में पड़ जाती है, क्या करते हो तुम प्रेम में? करते कुछ भी नहीं, कोई अनजाना धागा हाथ में आ जाता है। कोई अनजानी चुंबकीय शक्ति खींच लेती है। होश-हवास खो देते हो, सब समझदारी एक तरफ रख देते हो। सारी दुनिया समझाती है कि यह पागलपन है, यह क्या कर रहे हो? कुछ समझ में नहीं आता। एक धुन पकड़ लेती है, एक दीवानापन पकड़ लेता है।
श्रद्धा भी प्रेम जैसी है। प्रेम से दो शरीर बंधते हैं, श्रद्धा से दो आत्माएं बंधती हैं। वह श्रद्धा का पागलपन प्रेम के पागलपन से भी बड़ा है। क्योंकि प्रेम का पागलपन तो क्षणिक है; आज है, कल उतर जाए। यह बाढ़ कोई बड़ी स्थिर बाढ़ नहीं; हजार बार चढ़ती-उतरती है। लेकिन श्रद्धा का तो तूफान बड़ा शाश्वत है। एक दफा उठ आता है तो फिर उतरता नहीं; तुम्हें अपने साथ ही ले जाता है। साहस चाहिए।
और तुम कह रहे हो, "जाने कैसे हम तो भटकते हुए आपके पास आ पहुंचे हैं।" नहीं, भटकते हुए नहीं। तुम्हें चाहे साफ न हो, तुम्हें चाहे स्पष्ट न हो, मुझे स्पष्ट है। अकारण तुम मेरे पास नहीं आ गए हो। अकारण तो कुछ भी नहीं होता। आ गए हो मेरे पास--किसी कारण से; कारण आज जाहिर न हो, कल हो जाएगा। तुम्हें जाहिर न हो, मुझे जाहिर है। यह खोज तुम्हारी चिरंतन से चल रही है। ऐसे ही भटकते हुए नहीं आ गए हो, खोजते हुए आए हो।
हां, खोज धुंधली-धुंधली है, साफ नहीं यह माना, लेकिन खोज चल रही है। गलत मार्गों पर भी जो खोजते हैं, वे भी खोजते हैं, टटोलते हैं। ऐसा आदमी ही खोजना कठिन है, जो खोज न रहा हो। वह भी क्या आदमी, जो खोज न रहा हो! तुम आदमी हो और खोजते हुए चले आए हो।
"जाने कैसे भटकते हुए हम तो आपके पास आ पहुंचे हैं।"
लेकिन यह भाव शुभ है कि तुम्हें लगता है कि शायद भटकते हुए आ पहुंचे हैं। यह भाव शुभ है। नहीं तो अहंकार इसमें भी निर्मित हो सकता है कि हम बड़े खोजते हुए आ गए हैं। यह मैं कह रहा हूं, तुम मत मान लेना। यह मैं कहता हूं, तुम खोजते हुए आए हो। तुम तो यही जानना कि तुम भटकते हुए पहुंच गए हो। नहीं तो यह भी अहंकार मजबूत हो सकता है कि जन्मों-जन्मों के कर्मों का, शुभ कर्मों का फल है। ऐसा कुछ भी नहीं है। यह मेरा कहना है। माना, मुझे पता है कि कुछ शुभ किया होगा तो ही मेरे पास आए हो; लेकिन तुम इसको मत मान लेना। क्योंकि तुमने अगर माना तो किया शुभ भी अशुभ हो जाएगा।
"और पास रहकर भी आपको कहां जान पाते हैं?"
खोज जारी रही तो जान लोगे। और अगर यह भाव मन में बना रहा कि कहां जान पाते हैं, तो जानने की तैयारी हो रही है। चूकेंगे तो वही, जो सोचते हैं कि जान लिया। चूकेंगे तो वही, जो मानते हैं कि जान लिया।
एक ऐसी यात्रा पर तुम्हें ले चल रहा हूं, जिसकी शुरुआत तो है, लेकिन जिसका कोई अंत नहीं। एक अंतहीन अनंत यात्रा है जीवन की; उस अनंत यात्रा का नाम ही परमात्मा है। उस अनंत यात्रा को खोज लेने की विधियां ही धर्म है।
एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
पैंतीसवां प्रवचन

जीवन ही मार्ग है

गतद्धिनो विसोकस्स विप्पमुत्तस्स सब्बाधि।
सब्बगंथप्पहीनस्स परिलाहो न बिज्जति।। 81।।

उय्युज्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमंति ते।
हंसा" व पल्ललं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते।। 82।।

ये सं सन्निचयो नत्थि ये परिंंतभोजना।
सुंंतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे" व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया।। 83।।

यस्सा"सवा परिक्खीणा आहारे च अनिस्सतो।
सुंंतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासे" व सकुन्तानं पदं तेसं दुरन्नयं।। 84।।

पहला सूत्रः "जिसने मार्ग पूरा कर लिया है, जो शोक-रहित है और सर्वथा विमुक्त है, और जिसकी सभी ग्रंथियां प्रहीण हो गई हैं, उसे कोई दुख नहीं होता।"
मार्ग क्या है? जिसे हम जीवन कहते हैं, वही मार्ग है। जीवन के अतिरिक्त कहीं और मार्ग नहीं। जीवन के अनुभव में जो पक गया है, उसने मार्ग पूरा कर लिया है। तुमने अगर जीवन के अतिरिक्त कहीं और मार्ग खोजा तो भटकोगे। कोई और मार्ग नहीं है। यह क्षण-क्षण बहता जीवन, यह पल-पल बहता जीवन, यही मार्ग है। तुम मार्ग पर हो।
मनुष्य भटका है इसलिए कि उसने जीवन को तो मार्ग समझना छोड़ ही दिया, उसने जीवन के अतिरिक्त मार्ग बना लिए हैं। कभी उन मार्गों को धर्म कहता है, कभी योग कहता है। अलग-अलग नाम रख लिए हैं, बड़े विवाद खड़े कर लिए हैं। शब्दों के जाल में उलझ गया है।
और मार्ग आंखों के सामने है। मार्ग पैरों के नीचे है। तुम जहां खड़े हो, मार्ग पर ही हो। क्योंकि जहां भी तुम खड़े हो, वहीं से परमात्मा की तरफ राह जाती है। तुम पीठ किए भी खड़े हो तो भी तुम राह पर ही खड़े हो। तुम आंख बंद किए खड़े हो तो भी तुम राह पर ही खड़े हो।
तुम्हें समझ हो या न हो, राह से बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि उसकी राह आकाश जैसी है। उसकी राह कोई पटे-पटाए मार्गों का नाम नहीं है, राजपथ नहीं है; प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पगडंडी खोज लेनी है। और इस पगडंडी को अगर ठीक से समझो तो खोजना क्या है? मिली हुई है; समझना है।
जीवन मार्ग है। जीवन के सुख-दुख मार्ग हैं। जीवन की सफलताएं-असफलताएं मार्ग हैं। भटक-भटककर ही तो आदमी पहुंचता है। गिर-गिरकर ही तो आदमी उठता है। चूक-चूककर ही तो आदमी का निशाना लगता है। जब तुम्हारा तीर निशाने पर लग जाए तो क्या तुम उन भूलों को धन्यवाद न दोगे, जब तुम्हारा तीर निशाने पर चूक-चूक गया था? उनके कारण ही अब निशाने पर लगा है। जब तुम खड़े हो जाओगे तो क्या गिरने को तुम धन्यवाद न दोगे? क्योंकि अगर गिरते न, तो कभी खड़े न हो पाते।
पुण्य का जब आविर्भाव होता है तो पाप तक को धन्यवाद का भाव उठता है।
और परमात्मा की जब प्रतीति होती है तो संसार के प्रति भी अहोभाव होता है।
अगर निंदा रह जाए तो जानना, कहीं चूक हो गई, कहीं भूल हो गई। अगर निंदा रह जाए तो जानना कि अभी गिरने की संभावना बाकी रह गई है, मार्ग पूरा न हुआ।
जो पहुंचता है, लौटकर देखता है तो पाता है, सबने मिलकर पहुंचाया।
उसमें भूल-चूकों का भी हाथ है, धूप-छाया का, सबका हाथ है। उसमें मित्र और शत्रुओं का हाथ है। उसमें फूल ही सहयोगी न थे, काटे भी सहयोगी थे।
जिन्होंने सहारा दिया था, वे भी; और जो राह पर अड़ंगे बन गए थे, वे भी।

जिसने लौटकर देखा है, उसने पाया, आश्चर्य! कहीं कुछ विरोधी न था। विरोध से ही आदमी विकसित होता है; इसलिए विरोध कुछ भी नहीं है। द्वंद्व से ही आदमी विकसित होता है। द्वंद्व में ही निर्द्वंद्व पलता है। द्वैत में ही अद्वैत की आभा उतरती है।
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया।"
कौन है वह व्यक्ति, जिसने मार्ग पूरा कर लिया? वही, जिसने जीवन की धूप में अपने को पका लिया; जीवन की गहराइयों और ऊंचाइयों को छुआ; बुरे-भले अनुभव किए; पाप-पुण्य को चखा; गिरने की पीड़ा भी जानी, उठने का अहोभाग्य भी जाना; अंधेरी रातें भी, सूरज की रोशनी से दमकते दिन भी; जिसने सब देखा, जो सबका साक्षी बना।
जिसने सब देखा, जिसने सब को अपने ऊपर से गुजर जाने दिया, लेकिन किसी के
भी साथ तादात्म्य न बांधा। जवानी आई तो जवान न हुआ; सुख आया तो अपने को सुखी न समझा; दुख आया तो अपने को दुखी न समझा। जागरण! जागा रहा। होश का दीया जलता रहा। जो आया, उसे स्वीकार कियाः जरूर कोई पाठ छिपा होगा। जीवन में कुछ भी आकस्मिक, अकारण घटता नहीं। जीवन में जो भी घटता है, सकारण है। कहीं कोई वजह होगी।
अगर आदमी को बार-बार मिटाकर बनाया जाता है तो कारण यही है कि जब तक आदमी बन नहीं पाता, तब तक बार-बार मिटाना पड़ता है।
जैसे मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता है तो छैनी चलाता चला जाता है, जब तक कि मूर्ति पूरी नहीं हो जाती। पीड़ा होती होगी पत्थर को। छैनी दुश्मन मालूम होती होगी। भाग जाने का मन होता होगा। छैनी को त्याग देने का मन होता होगा। लेकिन तब पत्थर अनगढ़ा रह जाएगा। तब वह भव्य प्रतिमा आविर्भूत न होगी, जो मंदिरों में विराजमान हो जाए; जो हजार-हजार सिरों को झुकाने में समर्थ हो जाए।
जीवन की धूप में पकना ही मार्ग का पूरा होना है। जैसे फल पक जाता है तो गिर जाता है, ऐसे जीवन के मार्ग को जिसने पूरा कर लिया, वह जीवन से मुक्त हो जाता है। फल जब पक जाता है तो जिस वृक्ष से पकता है, उसी से छूट जाता है। इस चमत्कार को रोज देखते हो, पहचानते नहीं। फल पक जाता है तो जिस वृक्ष ने पकाया, उसी से मुक्त हो जाता है; पकते ही मुक्त हो जाता है।
कच्चे में ही बंधन है। कच्चे को बंधन की जरूरत है। कच्चे को बंधन का सहारा है। कच्चा बिना बंधन के नहीं हो सकता। बंधन दुश्मन नहीं, तुम्हारे कच्चे होने के सहारे हैं। जब तुम पक जाओगे, जब तुम अपने में पूरे हो जाओगे, वृक्ष की कोई जरूरत नहीं रह जाती, फल छूट जाता है।
ऐसे ही संसार से मुक्ति फलित होती है, जब तुम पक जाते हो।
बुद्ध के वचनों को बड़ा गलत समझा गया है। सभी बुद्ध पुरुषों के वचनों
को गलत समझा गया है। कहा कुछ, तुम समझे कुछ। गौर से सुनना!
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया है, जो शोकरहित और सर्वथा विमुक्त है।"
वह लक्षण है मार्ग पूरे करने काः कि जो शोकरहित और सर्वथा विमुक्त है।
फल टूट गया अपने आप। यह लक्षण है कि फल पक गया। लेकिन फल को तुम कच्चा
भी तोड़ ले सकते हो। तोड़ा गया फल पका नहीं होगा। और तोड़े गए फल में पीड़ा का दंश रह जाएगा, दुख रह जाएगा। जो पकने की कमी रह गई, वह सालती रहेगी, कांटे की तरह चुभती रहेगी। और फल जब तुम कच्चा तोड़ते हो तो न केवल फल को पीड़ा होती है, वृक्ष को भी पीड़ा होती है। अभी टूटने की घड़ी न आई थी, अभी मुक्त होने का क्षण न आया था, जल्दबाजी की, अधैर्य किया।
तो जिनको तुम संन्यासी कहते हो, उनमें से अधिक तो अधैर्य से भरे हुए लोग हैं। उन्होंने परमात्मा को पूरा मौका न दिया। रास्ता पूरा न हो पाया और वे हट गए। फल पक न पाया और उन्होंने झटककर अपने को तोड़ लिया। इसलिए मंदिरों में वे बैठे रहेंगे, लेकिन उनके मन में बाजार होंगे। आश्रमों में वे बैठे रहेंगे, लेकिन उनके मन में कामना के बीज होंगे, वासना चलती ही रहेगी। कच्चे थे!

मैं तुमसे कहता हूं, कभी भागना मत। पलायन से कभी कोई मुक्त नहीं हुआ है। भगोड़ों के लिए नहीं है भगवान। कहीं भागने से कुछ मिला है? भागना तो सबूत है भय का। कच्चे टूट जाना सबूत है जल्दबाजी का, अधैर्य का।
और जिसके पास धैर्य ही नहीं है, अनंत प्रतीक्षा नहीं है, वह इस परम फल
को उपलब्ध न हो सकेगा, जिसे हम परमात्मा कहते हैं।
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया है।"
अर्थात जिसने जीवन को पूरा मौका दिया है, सब रंगों में, सब रूपों में। डरे-डरे मत जीना, तूफानों से छिपकर मत जीना। आंधियां आएं तो घरों में मत छिप जाना। आंधी भी अकारण नहीं आती, कुछ धूल-धवांस झाड़ जाती है। आंधी भी अकारण नहीं आती, कोई चुनौती जगा जाती है; कोई भीतर सोए हुए तारों को छेड़ जाती है।
एक बात तो सदा ही स्मरण रखना कि इस संसार में अकारण कुछ भी नहीं होता-- तुम चाहे पहचानो, चाहे न पहचानो। देर-अबेर कभी न कभी जागोगे तो समझोगे। जो अंगुलियां तुम्हें शत्रु जैसी मालूम पड़ें, एक दिन तुम पाओगे कि उन्होंने भी तुम्हारे हृदय की वीणा को जगाया।
अंगुलियों की कृपा ही झंकार है
अन्यथा नीरव निरर्थक बीन है
वीणा अगर डर जाए और छिप जाए, अंगुलियों को छेड़ने न दे स्वयं के तारों को, तो वीणा मृत रह जाएगी। संगीत सोया रह जाएगा।
जैसे वृक्ष बीज में दबा रह गया। जैसे आवाज कंठ में अटकी रह गई। जैसे प्रेम हृदय में बंद रह गया। जैसे सुगंध खिलने को थी, खिल न पाई। कली खिली ही न, सुगंध बिखरी ही न।
एक ही दुख है संसार में--एक ही मात्र--और वह दुख है कि तुम जो होने को हो, वह न हो पाओ। जो तुम्हारी नियति थी, वह पूरी न हो। कहीं तुम चूक जाओ और तुम्हारी वीणा पर स्वर न गूंजे।
हिम्मत रखनी होगी। आंधियों की अंगुलियां आएं, तो उन्हें भी छेड़ने देना अपनी बीन को।
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया है।"
भगोड़ा कभी मार्ग पूरा नहीं करता। भगोड़ा तो पूरा होने के पहले भाग खड़ा होता है। भगोड़ा तो मार्ग की लंबाई से ही डर गया है; वह मुफ्त मंजिल चाहता है। पकना तो चाहता है, लेकिन पकने की पीड़ा नहीं झेलना चाहता। उस स्त्री जैसा है, जो मां तो बनना चाहती है, लेकिन गर्भ की पीड़ा नहीं झेलना चाहती। नौ महीने ढोना होगा उस पीड़ा को। और अगर मां बनना है, अगर मां बनने की
उस अपूर्व अनुभूति को पाना है--कि मुझ से भी जीवन का जन्म हुआ; अकारथ नहीं हूं, बांझ नहीं हूं; मुझ से भी जीवन की गंगा बही; मैं भी गंगोत्री बनी--अगर उस अपूर्व अनुभव को, उस अपूर्व धन्यभाग को लाना है, तो नौ महीने की पीड़ा झेलनी पड़ेगी। प्रसव की पीड़ा झेलनी पड़ेगी। आंख से आंसू बहेंगे, चीत्कार निकलेगा। लेकिन उन्हीं चीत्कारों और आंसुओं के पीछे मां का अपूर्व रूप प्रगट होता है।
स्त्री सिर्फ स्त्री है, जब तक मां न बन जाए। स्त्री तब तक सिर्फ साधारण स्त्री है, जब तक मां न बन जाए। मां बनते ही वीणा को छेड़ दिया गया। मां बने बिना कोई भी स्त्री ठीक अर्थों में सुंदर नहीं हो पाती। स्रष्टा बने बिना सौंदर्य कहां? किसी को जन्म दिए बिना अहोभाग्य कहां?
तुमने भी देखा होगा, छोटी सी चीज भी तुम बना लेते हो तो खुशी तुम्हें घेर लेती है। एक मूर्ति बना लेते हो, एक चित्र बना लेते हो, एक गीत बना लेते हो, मग्न हो-हो जाते हो। कुछ भीतर नाचने लगता है। तुम व्यर्थ नहीं हो, तुम भी सार्थक हो। तुमसे भी कुछ हुआ। परमात्मा ने तुमसे भी कोई काम लिया। तुम भी उसके हाथ बने। तुम्हारे कदमों से वह भी दो कदम चला। तुम्हारी सांसों से उसने भी एक गीत गुनगुनाया।
जब तक ऐसा न हो जाए, तब तक जीवन रिक्त, खाली मालूम होगा। भगोड़ों का जीवन खाली होता है।
इस देश में एक बहुत बड़ा दुर्भाग्य घटित हुआ है। और वह दुर्भाग्य है कि
इस देश में संन्यास भगोड़ों का हो गया। उसके कारण संन्यासी बांझ हो गए। तुम

जरा सोचो, पांच हजार साल के लंबे इतिहास में कितनी करोड़-करोड़ प्रतिभाएं ऐसी ही बांझ होकर खो गयीं! न उन्होंने गीत गाए, न वे नाचे, न उन्होंने कुछ निर्माण किया, न उन्होंने बगीचे लगाए, न उनकी अंगुलियों ने वीणा बजाई; वे सिर्फ भाग गए, जिंदगी से सिकुड़ गए। जैसे शुतुर्मुर्ग छिपा लेता है अपने को रेत में सिर को डालकर, ऐसे जिंदगी से डरकर, कंपकर गुफाओं में छिप गए।
इन छिपे आदमियों की पूजा बहुत हो चुकी। इस पूजा से सुबह का सूर्योदय न आया। इस पूजा से रात और गहरी अंधेरी होती गई, अमावस बनती गई। इतनी प्रतिभा ऐसे ही बांझ चली गई। इतने उर्वर खेत ऐसे ही रेगिस्तान पड़े रह गए। मरूद्यान बन सकते थे जहां, वहां केवल मरुस्थल बना।
नहीं, बुद्ध पुरुषों ने यह कहा ही नहीं। और अगर तुम्हें बुद्ध पुरुषों के जीवन में सृजन न दिखाई पड़े, तो उसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि बुद्ध पुरुषों का सृजन बड़ा सूक्ष्म है। कोई गीत बनाता है, कोई मूर्ति बनाता है, बुद्ध पुरुष स्वयं को बनाते हैं। तुमने किसी और को जन्म दिया होगा, बुद्ध पुरुष स्वयं को जन्म देते हैं।
दूसरे को जन्म देने की पीड़ा तुम्हें पता है, तुम्हें अभी उस पीड़ा का कहां पता है जो स्वयं को जन्म देने में होती है? दूसरे की मां बनना हो तो नौ महीने में चुकतारा हो जाता है, स्वयं की मां बनना हो तो जन्म-जन्म लग जाते हैं। जन्म-जन्मों तक गर्भ को ढोना पड़ता है।
बुद्ध पुरुषों ने स्वयं को जन्माया। इसलिए हमने उन्हें द्विज कहा हैः दुबारा जो जन्मे। मां-बाप ने जो जन्म दिया था, उस पर ही जो राजी न हुए; जिन्होंने अपने को फिर जन्माया; जो खुद के मां-बाप बने। इससे कठिन और कोई प्रक्रिया नहीं है--स्वयं को जन्म देना।
लेकिन दिखाई न पड़ेगा, क्योंकि उनका काव्य बड़ा सूक्ष्म है। गीत उन्होंने गाए, पर बड़े निःशब्द हैं। मुखरित वे हुए, लेकिन उनके वक्तव्य को, उनकी अभिव्यक्ति को जानने के लिए तुम्हें बड़ी पात्रता चाहिए पड़ेगी। मूर्तियां उन्होंने भी गढ़ी हैं, लेकिन वे मूर्तियां चैतन्य की हैं; चिन्मय हैं, मृण्मय नहीं हैं, मिट्टी की नहीं हैं, पत्थर की नहीं हैं, पाषाण की नहीं हैं।
लेकिन उनकी बातों को गलत समझकर न मालूम कितने लोग भागे। बुद्ध को कितने लोगों ने अपने पलायन का आधार बना लिया। कितने लोग चुपचाप जीवन से सरक गए।
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया है।"
किसने मार्ग पूरा कर लिया है? उसने ही, जिसने जीवन को उसकी सारी झंझावातों में जीया है।
करता है जुनूने-शौक मेरा महराबे-तलातुम में सजदे
तूफां ये अकीदा रखता है, साहिल के परिस्तारों में नहीं
मैं प्रार्थना करता हूं तूफानों में!
करता है जुनूने-शौक मेरा महराबे-तलातुम में सजदे
मेरा उन्माद ऐसा है, मेरे उत्साह का उन्माद ऐसा है कि मैं तूफान में प्रार्थनाएं करता हूं।
तूफां ये अकीदा रखता है...
तूफान में यह गुण है कि प्रार्थना का जन्म हो सकता है।
तूफां ये अकीदा रखता है, साहिल के परिस्तारों में नहीं
किनारों की ओट में जो छिपकर बैठ गए हैं, वहां प्रार्थनाएं पैदा नहीं होतीं। वहां तुम्हारा जीवन उधार हो जाता है, नगद नहीं रह जाता। वहां तुम्हारा जीवन बासा हो जाता है, ताजा नहीं रह जाता। सुबह की ताजगी खो जाती है।
फिर ऐसे ही, जैसे कोई किसी को गोद लेकर मां बन जाती है, ऐसे तुम धार्मिक बन जाते हो--किसी और के शब्दों को गोद लेकर। गर्भ की कमी गोद से पूरी न हो सकेगी। गर्भ चूक गए तो गोद भरकर धोखा अपने को देने की कोशिश भला कर लो, यह धोखा महंगा है।
तो लोग गीता रखे हैं गोद में--गोद ली हुई गीता। कुरान रखे हैं गोद में-- गोद ली हुई कुरान। इस कुरान का अपने गर्भ से कोई जन्म नहीं हुआ। इसे

चैतन्य की गहराइयों में गढ़ा नहीं गया। इसके लिए उन्होंने कोई पीड़ा नहीं उठाई।
मोहम्मद से पूछो, कैसी पीड़ा में कुरान का जन्म होता है! जिस दिन पहली दफा मोहम्मद पर कुरान की पहली आयत उतरी तो कंप गए; जैसे एक तूफान में वृक्ष कंप जाता है। जड़ें हिल गयीं; घबड़ा गए। बूंद में सागर उतरे तो घबड़ाहट तो होगी ही। इतने घबड़ा गए कि बुखार चढ़ आया। घर आने की हिम्मत न पड़ी। समझे कि पागल हो गया हूं। मुझको और परमात्मा की ऐसी कृपा उतर सकती है? मुझ ना-कुछ को इतना बड़ा प्रसाद मिले? हो नहीं सकता। जरूर मैं पागल हो गया हूं। यह मैंने अपनी ही बात सुन ली है। यह मेरे मन का ही ख्याल है। यह मैंने कल्पना कर ली है। रोए, चीखे, चिल्लाए पहाड़ पर; फिर चुपचाप रात के अंधेरे में घर आकर बिस्तर में छिप गए।
पत्नी ने पूछा, तुम्हें हुआ क्या है? हाथ पर हाथ रखा तो आग की तरह जल रहे थे। हुआ क्या है? सुबह भले-चंगे गए थे।
उन्होंने कहा, तू अभी मत पूछ। अभी मुझे ही पक्का नहीं है कि क्या हुआ है! जरूर कुछ पागलपन हुआ है। मैं या तो पागल हो गया हूं, या किसी भ्रम में खो गया हूं। लेकिन तू तो अपनी है, तुझसे मैं कहे देता हूं क्या हुआ है। इस-इस तरह की वाणी मुझमें आकाश से उतरी है। किसी और को कहना मत; बदनामी होगी। पत्नी ने निश्चित मोहम्मद को प्रेम किया होगा। वह उनके चरणों में झुक गई; उसने कहा, तुम घबड़ाओ मत। यह बुखार नहीं है, तुम किसी बड़ी लपट के करीब आ गए हो। तुम्हारे चारों तरफ मैं एक आभामंडल देखती हूं, जो मैंने कभी नहीं देखा था। तुम्हारे चारों तरफ एक रोशनी का वातावरण है। तुम घबड़ाओ मत, परमात्मा उतरा है।
पत्नी समझाती है कि उतरा है और मोहम्मद कहते हैं कि नहीं, किसी और को कहना मत; मैं पागल हो गया हूं।
बड़ी पीड़ा से एक-एक आयत उतरी वर्षों के अंतराल में; जैसे एक-एक बच्चे को जन्म दिया हो।
फिर तुम हो कि कुरान को गोद में रखकर बैठे हो; यह कुरान तुम पर उतरी नहीं। जो कुरान तुम पर नहीं उतरी, वह कुरान नहीं। जो बेटा तुमसे पैदा हुआ नहीं, तुम किसे धोखा दे रहे हो उसे बेटा कहकर? अपने को समझा लो भला! गोद भर लेने से कुछ भी न होगा, गर्भ पहले भरना पड़ेगा, तभी गोद भरती है; वह दूसरा कदम है। पहला कदम चूक गया तो दूसरा कदम सिर्फ धोखा है।
जीवन सभी को भर सकता है, सभी की गोद भर सकता है। जीवन है इसलिए।
दो तरह की भूलें संभव हैंः या तो तुम जीवन में सोए-सोए रहो--एक भूल; जिसको हम गृहस्थ की भूल कहें। फिर दूसरी भूल कि कोई जगाने वाला मिल जाए तो तुम जीवन से भाग खड़े होओ; जिसको हम संन्यासी की भूल कहें।
ठीक-ठीक, सम्यक राह क्या है? सम्यक राह है, जहां हो वहीं रहो, जागकर रहो। अब तक जो अनुभव तुम्हारे चारों तरफ गुजरे, तुमने नींद में गुजर जाने दिए; उनसे तुम जो ले सकते थे सार, नहीं ले पाए।
अगर तुमने सार लिया होता, क्रोध करुणा बन गई होती; क्योंकि क्रोध में करुणा छिपी है। क्रोध करुणा का ही बीज है। अगर तुमने जीवन का अनुभव लिया होता तो काम प्रेम बन गया होता; प्रेम प्रार्थना बन गई होती। काम प्रेम का बीज है। प्रार्थना छिपी है प्रेम में।
काम में छिपा है प्रेम; प्रार्थना छिपी प्रेम में; परमात्मा छिपा प्रार्थना में।
अगर तुम एक-एक सीढ़ी चढ़े होते... ।
तो कुछ तो लोग हैं, जो कामवासना में डूबे हैं अंधों की तरह। और फिर कुछ लोग हैं, जो किसी जागने वाले की आवाज सुनकर घबड़ा उठते हैं, भयभीत हो जाते हैं कि हम क्या कर रहे हैं? पाप! पाप!! पश्चात्ताप से भर जाते हैं। भाग खड़े होते हैं। उनका काम का बीज कभी ब्रह्मचर्य नहीं बन पाता।
भागकर कहां जाओगे? भागोगे किससे? रोग भीतर है। यह तो ऐसे ही है, जैसे तुम्हें बुखार चढ़ा है और तुम भाग चले जंगल की तरफ। भागोगे कहां? बुखार तुम्हारे भीतर है।

सारी बीमारी तुम्हारे भीतर है। जीवन को मौका दो कि तुम्हारे भीतर जो छिपा है, उसे जला डाले। जो कचरा है, जल जाए; जो सोना है, बच जाए। जीवन को मौका दो कि तुम्हें कुंदन बना दे।
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया है।"
जिसने भी मार्ग जीवन का पूरा किया, उसे दिखाई पड़ जाता हैः जीवन एक ख्वाब है, एक सपना है।
हस्ती अपनी हुबाब की सी है
बुलबुले जैसी।
यह नुमाइश सराब की सी है
मृगतृष्णा जैसी।
जिसने भी जीवन के मार्ग को पूरा कर लिया है, उसे दिखाई पड़ता है कि जैसे
एक स्वप्न देखा। जैसे रात जिसने ठीक से गुजार ली है, भोर की ताजी हवाओं में उठकर ख्याल आता है कि रात कितने सपने देखे! जीवन जब तुम्हें सपना जैसा दिखाई पड़ने लगे, तब समझना, मार्ग पूरा हुआ है।

मेरी बात सुनकर तुम मान सकते हो कि जीवन सपना है; इससे कुछ हल न होगा।
यह तुम्हारा अनुभव होना चाहिए; मेरे कहे क्या होगा? मैं भोजन करूं, तुम्हारा पेट नहीं भरता। मैं नाचूं, इससे तुम्हारे प्राणों में कोई सुरभि पैदा न होगी। मेरी वीणा बजे, इससे तुम्हारी वीणा के सोए हुए तार न जगेंगे। तुम भोजन करोगे तो तृप्त होओगे। जल की धार तुम्हारे कंठ से गुजरेगी
तो तुम्हारी प्यास संतृप्ति में रूपांतरित होगी।
जीवन से जल्दी भाग मत जाना। पहली तो भूल कि सोए-सोए जी रहे हो; अब दूसरी भूल मत कर लेना कि सोए-सोए भाग खड़े हो जाओ। जागकर खड़े होना है। जो जागता है, वह पकता है। और परिपक्वता सब कुछ है।
अब भी क्रोध होगा, लेकिन जागकर होने देना। अब भी कामवासना आएगी, लेकिन जागे रहना। भीतर कोई जागा ही रहे; कामवासना आए-जाए, तुम जागे रहना। तुम देखते रहना, तुम साक्षी रहना। और तुम चकित होओगे कि वह प्रगाढ़ आंधी कामवासना की, आंधी जैसी नहीं है अब, हल्की हवा का झोंका है। जैसे-जैसे तुम जागते हो, वैसे-वैसे उसकी शक्ति कम होती चली जाती है।
जिस दिन तुम्हारी जाग पूरी होती है, उसी दिन काम से प्रेम का जन्म हो जाता है। फिर तो द्वार पर द्वार खुलते चले जाते हैं। पहला द्वार ही कठिन है। एक बार महल में प्रमुख द्वार से प्रवेश हो गया, फिर तो द्वार पर द्वार खुलते चले जाते हैं। क्योंकि कुंजी कुछ ऐसी है कि एक बार हाथ आ गई तो सभी तालों को खोल लेती है।
"जिसने मार्ग पूरा कर लिया है।"
जिसको दिखाई पड़ गया है कि जीवन स्वप्न है। अगर ऐसा दिखाई न पड़ा, तुम भाग गए, तो तुम किसी और जीवन का सपना देखने लगोगे पहाड़ों पर बैठकर, जंगलों में बैठकर, बियाबानों में बैठकर--मोक्ष, स्वर्ग, अप्सराएं, हूरें! तुम कोई और जीवन का सपना देखने लगोगे। वह सपना यहीं का अधूरा सपना है, जो तुम पूरा नहीं देख पाए। नींद पूरी नहीं हो पाई। जाग बीच में हो गई; स्वस्थ नहीं जागे, अलसाए-अलसाए जागे। फिर सो जाने का मन है।
शास्त्रों में देखो, वे भगोड़ों ने लिखे होंगे। अधिक शास्त्र उन्होंने लिखे हैं। स्वर्ग की कैसी रोचक तस्वीरें खींची हैं! यह वासना की खबर है। अधूरे भाग गए होंगे ये। यहां तो स्त्रियां बूढ़ी भी हो जाती हैं, रुग्ण भी हो जाती हैं, एक न एक दिन हड्डी-मांस-मज्जा की खबर मिलनी शुरू हो जाती है, एक न एक दिन कुरूपता आ जाती है। इन भगोड़ों ने लिखा है कि इनके स्वर्ग में अप्सराएं सोलह साल पर ठहर जाती हैं; वहां से आगे उनकी उम्र नहीं बढ़ती। ये जरूर वासनाग्रस्त लोगों की कल्पना होगी। यहां का सपना ही नहीं टूटा, वहां तक सपना फैला रहे हैं।
मरने की दुआएं क्यों मांगूं जीने की तमन्ना कौन करे
ये दुनिया हो या वो दुनिया अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे
जिसको समझ आ गई कि कामना ही स्वप्नवत है; इस दुनिया की बात हो या उस दुनिया की--ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे! वह मांगेगा क्यों? जीने की तो बात

दूर, वह मरने की भी आकांक्षा नहीं करता। मरने की आकांक्षा भी जीने की आकांक्षा से पीड़ित लोग करते हैं।
जिनको तुम आत्महत्या करते देखते हो, यह मत समझना कि ये जीवन से मुक्त
हो गए। इनकी जीवन की आकांक्षा बड़ी प्रगाढ़ थी। इतनी प्रगाढ़ थी कि जीवन उसे पूरा न कर पाया। ये बड़े लोभी थे, लोभ भर न सका। इनकी झोली बड़ी थी, खाली रह गई। इन्होंने जो स्त्री मांगी, न मिली; जो पद मांगा, न मिला; जो धन मांगा, न मिला। ये अपनी शर्तों पर जीना चाहते थे। निराशा में, उदासी में, हारे हुए, ये मृत्यु की आकांक्षा करते हैं। यह वही संन्यासी की भूल है।
कुछ हिम्मतवर एकदम से आत्महत्या कर लेते हैं, कुछ कमजोर धीरे-धीरे क्रमशः आत्महत्या करते हैं। जिसको तुमने अब तक त्याग कहा है, वह धीमी-धीमी आत्महत्या है--एक-एक कदम अपने को मारते जाओ।
स्वप्न से भागने की जरूरत नहीं है। अगर जाग आ गई हो, स्वप्न खुद ही भाग जाता है; तुम्हें नहीं भागना पड़ता। जब तक तुम्हें भागना पड़े, समझना कि स्वप्न अभी सत्य है। जब स्वप्न ही असत्य हो गया तो भागना कहां है?
राह पर रस्सी पड़ी हो और तुम सांप समझ लो तो भागते हो; फिर कोई दीया लेकर आ जाए और दिखा दे कि रस्सी है, फिर तो नहीं भागते। बात ही खतम हो गई। भागना किससे है? सांप ही न रहा।
संसार जब तक सत्य मालूम होता है, तब तक तुम अभी पके नहीं; अभी बचकानापन कायम है। अभी वासना प्रौढ़ नहीं हुई, पकी नहीं; अन्यथा गिर जाती।
लोग कांटों से बच के चलते हैं
मैंने फूलों से जख्म खाए हैं
जो देखेगा उसे यही दिखाई पड़ेगा कि फूल तो कांटे की छिपने की तरकीबभर है। लोग दुखों से बचकर चलते हैं, तब तक समझना कि अभी परिपक्व नहीं हुए। जब सुख को भी समझ लें कि व्यर्थ; तब समझना कि बोध आया। क्योंकि सुख दुख के छिपने की तरकीब से ज्यादा नहीं है। सुख तो ओढ़नी है, जो दुख ओढ़े हुए है। सुख तो प्रलोभन है, जो दुख ने तुम्हें दिया है। नर्क के दरवाजे पर स्वर्ग की तख्ती लगी है। नहीं तो कोई नर्क में प्रवेश ही न करेगा। लोग दरवाजे से ही भाग खड़े होंगे।
एक फकीर मरने के करीब था; सोया था, रात नींद में उसने देखा कि वह परमात्मा के सामने खड़ा है। तो उसने कहा कि मरने के पहले एक मेरी आकांक्षा है। मुझे तुम दोनों देख लेने दो--स्वर्ग और नर्क; ताकि मैं चुनाव कर लूं। इतना तो कम से कम करो; जिंदगीभर तुम्हारी प्रार्थना की है। लोग कहते हैं, नर्क बड़ा बुरा, स्वर्ग बड़ा भला। मैं अपनी आंख से देख लूं।
उसे सुविधा दी गई। स्वर्ग ले जाया गया। उसने स्वर्ग देखा, लेकिन बड़ा बेरौनक था--होगा भी! अगर तुम्हारे तथाकथित सब संन्यासी वहां पहुंच गए हैं तो बेरौनक होगा ही। बैठे होंगे अपने-अपने झाड़ के नीचे सिर धुनते। क्या करेंगे? न कहीं गीत होगा, न कहीं नाच होगा। वृक्षों में फूल भी शर्माते होंगे खिलने से। स्वर्ग में फूलों का खिलना मना है। ये बातें--कोई रौनक तो नहीं हो सकती, जड़ता छाई होगी, धूल जम गई होगी। अगर सभी परमहंस वहीं हैं तो तुम कूड़ा-करकट का सोचो, कि कितना इकट्ठा नहीं हो गया होगा! गंदगी भर गई होगी।
वह घबड़ा गया; उसने कहा कि यह स्वर्ग है? अच्छा हुआ, पहले ही देख लिया,
अब नर्क दिखला दें। वह नर्क गया, देखकर चकित हुआ; बड़ा हैरान हुआ। इतना सुंदर था! फूल खिल रहे थे, गीत गाए जा रहे थे, बाजे बज रहे थे, चहल-पहल थी, रौनक थी। वह बड़ा हैरान हुआ।
उसने शैतान से पूछा कि यह नर्क और वह स्वर्ग? दुनिया में बड़ी गलत खबरें फैला रखी हैं।
शैतान ने कहा, हम करें क्या? हमें कोई मौका ही नहीं प्रचार का। एकतरफा प्रचार है। सब मंदिर भगवान के हैं, सब मस्जिद भगवान की हैं। हमारे साथ बड़ी ज्यादती हुई है। यह अपनी आंख से देख लो। हमें मौका ही नहीं। हमें नाहक बदनाम किया गया है।
उसने कहा, तो फिर मैं नर्क ही चुनूंगा। आंख खुल गई। फिर वह मरा तो उसने चुना नर्क। जब वह नर्क गया तो चकित हुआ। दुष्ट एकदम उसके ऊपर टूट पड़े। वह

दृश्य दिखाई ही न पड़ा, जो पहले दिखाई पड़ा था--रौनक, गीत-गान! कड़ाहे जल रहे और तेल उबाला जा रहा और लोग फेंके जा रहे... ।
उसने कहा, यह मामला क्या है? अभी दो दिन पहले ही मैं आया था।
शैतान ने कहा, भई, वह तो जो दर्शक आते हैं, उनके लिए नर्क का एक कोना बना रखा है दिखाने के लिए; यह असली नर्क है। तब तुम एक विजिटर की तरह आए थे, अब निवासी की तरह आए। अब तुम्हें मजा मिलेगा।
नर्क के द्वार पर भी स्वर्ग की तख्ती लगी है। तख्तियों के धोखे में मत
आ जाना।
लोग कांटों से बच के चलते हैं
मैंने फूलों से जख्म खाए हैं
असल में कांटे भी होशियार हो गए हैं; फूलों की ओट में छिपे हैं। कांटों से तो सब बचते हैं, फूलों को सब तोड़ना चाहते हैं। जैसे तुम मछलियों को पकड़ने जाते हो तो कांटे पर आटा लगा देते हो। मछली कोई कांटे को थोड़े ही पकड़ने आती है, मछली आटा पकड़ने आती है; फंसती कांटे से है।
अगर तुम जीवन की इस सारी प्रक्रिया को जागकर देखोगे तो तुम पाओगे, जहां-जहां तुमने दुख पाया, जहां-जहां कांटे मिले, वहां-वहां तुम गए तो सुख की आशा में थे। अभिलाषा तो फूल की थी, कांटा मिला यह बात और।
लेकिन कब जागोगे? कितनी बार यह पुनरुक्त हुआ है कि जब-जब तुमने सुख चाहा, तब-तब दुख पाया; इससे अपवाद कभी हुआ ही नहीं। जब-जब फूल मांगे, तब-तब कांटे मिले। मछलियां भी होशियार हो गई हैं, तुम कब तक रुके रहोगे? मछलियां भी सजग होकर चलने लगी हैं। आदमी फिर-फिर सुख की आकांक्षा करता है। परिपक्व मनुष्य की यही दशा है कि वह देख लेता है, हर कांटे ने अपना घूंघट बनाया है फूल से।
जिसने मार्ग पूरा कर लिया है वह शोकरहित हो ही जाएगा, क्योंकि वह सुख
की आकांक्षा नहीं करता। उसने फूल ही त्याग दिए, फूल ही छोड़ दिए; अब कांटे उसे धोखा नहीं दे सकते। अब आटे की ही आकांक्षा नहीं करता, अब कांटे कैसे उसकी गर्दन को उलझा लेंगे?
"जो शोकरहित और सर्वथा विमुक्त है।"
यही अर्थ है सर्वथा विमुक्त होने का। अगर तुम अभी भी सुख की आकांक्षा
कर रहे हो, अगर तुम धर्म की तरफ भी सुख की आकांक्षा से ही गए हो, तो तुम्हारा संसार अभी पूरा नहीं हुआ। तुम्हारा धर्म भी तुम्हारे संसार का ही हिस्सा है। धर्म की तरफ तो वही जा सकता है, जिसने जान लिया कि सब सुख दुख ले आते हैं। जिसने यह इतनी गहनता से जान लिया, समझ लिया कि इसका अपवाद होता ही नहीं। सभी सफलताएं असफलता ले आती हैं। सभी सम्मान अपमान को बुलावा दे आते हैं। सभी प्रशंसाओं के पीछे निंदा छिपी है। जन्म के पीछे मौत खड़ी है, जिसने ऐसा देख लिया निरपवाद रूप से, वही सर्वथा विमुक्त है।
जीवन की राह पर जो पक गए, वे सर्वथा विमुक्त हो जाते हैं।
"और जिसकी सभी ग्रंथियां क्षीण हो गई हैं।"
ग्रंथियां क्या हैं? यह शब्द समझने जैसा है। यह बुद्धों के मनोविज्ञान का बड़ा बहुमूल्य शब्द है। पश्चिम में अभी-अभी मनोविज्ञान ने इसके समानांतर शब्द गढ़ा हैः कांपलेक्स; उसका अर्थ भी ग्रंथि है। लेकिन भारत में यह शब्द पांच हजार साल पुराना है। और जो लोग मुक्त हो गए हैं, उनको हमने कहा हैः निर्ग्रंथ, जिनकी ग्रंथि छूट गई, जिनके कांपलेक्स समाप्त हो गए।
ग्रंथि क्या है? गं्रथि का सीधा अर्थ होता हैः गांठ। गांठ का मतलब क्या होता है? गांठ का मतलब होता हैः गहरी आदत। इतनी गहरी आदत कि तुम खोलो भी तो गांठ अपने से बंध जाती है; वापस-वापस बंध जाती है। तुम इधर खोलकर छोड़ भी नहीं पाते... ।
जैसे कि कहावत है कि कुत्ते की पूंछ को कोई बारह वर्ष भी पोंगरी में रखे तो भी वह तिरछी की तिरछी! वह बारह वर्ष के बाद जब तुम पोंगरी अलग करोगे, वह तत्क्षण तिरछी हो जाएगी--ग्रंथि! आदत बड़ी गहन है उस पूंछ की।
तुमने कभी इसका अपने जीवन में विचार किया कि तुम कितनी बार नहीं जाग
गए हो, कितनी बार नहीं समझ गए हो कि क्रोध जहर है! कुत्ते की पूंछ हो गई है।

हजार बार समझ लेते हो, लेकिन जब फिर मौका आता है, फिर तिरछी की तिरछी; फिर क्रोध हो जाता है।
इस ग्रंथि को खोलना पड़े। खोलने से ही काम न चलेगा, क्योंकि तुम फिर-फिर बांध लेते हो। तुम भूल ही गए हो कि तुमने कहां-कहां अपने भीतर ग्रंथियां बांधीं। दोष तुम दूसरे को देते हो; तुम कहते हो, इस आदमी ने कुछ ऐसी बात कही कि क्रोध आ गया। क्रोध किसी आदमी से नहीं आता, अपनी गांठ से आता है। तुम कहते हो, किसी आदमी ने गाली दे दी इसलिए मैं क्रोधित हो गया। लेकिन गाली गांठ से टकराए तो ही क्रोध आता है। अगर भीतर गांठ न हो, गाली आर-पार निकल जाती है; कहीं टकराती नहीं।
जिसे हम अभी जीवन कहते हैं, वह ग्रंथियों का जीवन है। उसमें सब गांठ
से चल रहा है काम। करीब-करीब तुम्हारे संबंध में भविष्यवाणी की जा सकती है कि तुम कल क्या करोगे। क्योंकि तुमने जो आज किया है, वही तुम कल करोगे। इसलिए तो ज्योतिषी तुम्हें धोखा देने में समर्थ हो जाते हैं। तुम्हारी जीवन की व्यवस्था ऐसी है--कोल्हू के बैल जैसी, गोल चक्कर में घूमती है। अब यह भी कोई बड़ी कठिनाई की बात है कि कोल्हू के बैल को कोई कह दे कि अब फिर तेरा कदम फलां जगह पड़ेगा? पड़ने ही वाला है, वहीं पड़ता रहा है।
ज्योतिषी तुम्हारे संबंध में सच हो जाता है, क्योंकि जानता है तुम कोल्हू के बैल हो। तुम जो अब तक करते रहे हो, वही तुम करते रहोगे; वही तुम दोहराए चले जाओगे। कुछ बातें ज्योतिषी तुमसे नियमित रूप से कह देता है, जिसमें कोई भूल-चूक नहीं होती। जैसे वह हर आदमी से कह देता है, रुपया हाथ में आता है लेकिन टिकता नहीं। किसके टिकता है? और जिनके टिक भी जाता है, वे भी मानते नहीं कि टिकता है। कृपण से कृपण आदमी भी यही मानता है कि उससे ज्यादा फिजूल-खर्च और कोई भी नहीं। कृपण से कृपण भी यही कहेगा कि ठीक कहा; रुपया हाथ में आता है, टिकता नहीं। ज्योतिषी जान रहा है तुम्हारी लोभ की दशा को; वह सार्वजनिक है।
हां, किसी बुद्ध का हाथ देखेगा तो गलती में पड़ जाएगा। मगर यह कभी-कभी होता है। बुद्ध के हाथ सदा उपलब्ध नहीं हैं। जिन के हाथ उपलब्ध हैं, वे सोए हुए लोग हैं। वह तुमसे कहता है कि जिनको तुम अपना मानते हो, वही तुम्हें धोखा दे जाते हैं। बात उसने पते की कह दी। जंचती है। जिनको तुम अपना मानते हो, वही धोखा दे जाता है। सभी आदमी के संबंध में सच है--गांठ है इसकी।
सच है, ऐसा नहीं; बात कुछ ऐसी है कि तुम किसी को अपना मानते कहां, पहली बात। और जिनको तुम अपना मानते हो तुम खुद ही उनको धोखा दे रहे हो; वे तुम्हें कैसे न देंगे? तुम्हारी इच्छा यह है कि तुम तो उन्हें धोखा दो और वे तुम्हारे बने रहें; यह नहीं होता। तुम भी उन्हें धोखा दे रहे हो, वे भी तुम्हें धोखा दे रहे हैं। धोखे की ही सब दोस्ती है यहां। ज्योतिषी जिसको भी मिले, उससे ही कह देता है कि जिनको तुम अपना मानते हो, वे धोखा दे जाते हैं।
ज्योतिषी कहता है, तुम जिनके साथ नेकी करते हो, वे तुम्हारे साथ बदी करते हैं। यह बड़े मजे की बात है। सबको जंचती है। तुमको भी ख्याल है कि तुमने बड़ी नेकियां की हैं। की वगैरह नहीं हैं, ख्याल है; अहंकार की आदत है, गांठ है कि मुझ जैसा नेक आदमी! मैं तो वही उसूल मानता हूंः नेकी कर कुएं में डाल। करता जाता हूं, डालता जाता हूं, कभी धन्यवाद की भी आकांक्षा नहीं रखी।
हर आदमी को यही ख्याल है कि मैं कितना कल्याण कर रहा हूं संसार का! और लोग कैसे हैं कि इनको समझ में नहीं आ रहा। कोई पूजा के थाल नहीं सजाता, कोई आरती नहीं उतारता। मैं कल्याण किए जा रहा हूं और लोग बदी किए जा रहे हैं। उनसे पूछो तो वे भी यही सोच रहे हैं कि वे कल्याण कर रहे हैं और लोग उनके साथ बदी कर रहे हैं।
तुम्हारी गांठें... गांठों का अर्थ होता हैः यांत्रिक जीवन। होश हो तो तुम्हारे संबंध में भविष्यवाणी नहीं हो सकती। क्योंकि फिर तुम्हारा कल नया होगा, आज की पुनरुक्ति नहीं। फिर तुम्हारा हर कल नया होगा, फिर तुम्हारा हर पल नया होगा। नया होना तुम्हारा ढंग होगा। दूसरों की तो छोड़ दो, तुम भी अपने संबंध में भविष्यवाणी न कर सकोगे। तुम भी कंधे बिचकाकर रह

जाओगे कि कल का तो कुछ पता नहीं। कल जब आएगा तब देखेंगे। कल जब आएगा तभी देख सकेंगे।
गांठ खोलनी ही पड़े। लेकिन गांठ भी तभी खुलेगी, जब तुम जागकर जीवन की पीड़ा को अनुभव करोगे। गांठ पीड़ा दे रही है।
मेरे पास रोज लोग आते हैं; वे कहते हैं, बड़ा दुख है। इस ढंग से कहते हैं, जैसे उन्हें कोई और दुख दे रहा है। मानते भी वे यही हैं कि सारा संसार उन्हें दुख दे रहा है। पति आता है, वह कहता है, पत्नी दुख दे रही है। पत्नी आती है, वह कहती है, पति दुख दे रहा है। बच्चे आते हैं, वे कहते हैं, मां-बाप मारे डाल रहे हैं। मां-बाप कहते हैं कि बच्चे गले की फांसी हो गए हैं। दूसरे दुख दे रहे हैं।
इसका अर्थ हुआ कि तुमने अभी जीवन की परिपक्वता का कोई भी अनुभव नहीं पाया। जैसे ही तुम जरा सा भी अनुभव पाओगे, तुम पाओगे, मैं अपने को दुख दे रहा हूं। और अगर दूसरे भी मुझे दुख देते हैं तो इसीलिए दुख देते हैं कि मैं चाहता हूं कि वे मुझे दुख दें। मैं रास्ते निकालता हूं, मैं उपाय करता हूं, मैं पूरी व्यवस्था जमा देता हूं। अगर वे न दें तो भी मुसीबत।
मेरे एक मित्र थे। मेरे साथ ही एक युनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे, सदा रोना रोते थे कि घर जाता हूं तो पांव रुकने लगते हैं भीतर जाने से। पत्नी जैसी होनी चाहिए, वैसी पत्नी है। बड़ी खतरनाक है। छाती धड़कने लगती है। सीधे-सादे आदमी हैं।
तो मैंने उनसे कहा, तुम एक दिन ऐसा करो, कुछ जरूर तुममें भी कारण होंगे। पहले तो तुमने प्रेम-विवाह किया इस स्त्री से, तुमने इसे चुना। जरूर तुम्हारे भीतर कोई दुख पाना चाहता होगा इस स्त्री से, इसलिए चुना, नहीं तो क्यों? इस स्त्री को दूर से ही देखकर कोई कह सकता है, जिसको थोड़ा ही होश है, कि इससे सावधान रहना। तुम फंसे कैसे? तुम अपने आप गए? इस स्त्री ने तुमसे कहा था कि हम तुम्हें प्रेम करते हैं? बोले, नहीं। मैंने ही अपने हाथ से फांसी लगाई।
स्त्रियां यह काम करती ही नहीं। तुम किसी स्त्री को कभी दोषी न ठहरा सकोगे। वह शुरुआत करती नहीं। वह खड़ी रहती है। वह देखती रहती है, करो शुरुआत। रफ्ता-रफ्ता करीब आओ। कभी कोई स्त्री से कोई पति यह नहीं कह सकता कि तूने मुझे उलझाया। वह उलझाती नहीं। उलझाती है, खड़ी रहती है।
तो मैंने उनसे कहा, तुम ऐसा करो; तुममें ही कुछ कारण होंगे जरूर। पहले तुमने इसे चुना, जाहिर है कि तुम इस दुख की आकांक्षा करते थे। जन्म-जन्म से तुम इसी की प्रतीक्षा करते थे। अब वह मिल गई तो परेशान हो रहे हो। और मैं तुमसे कहता हूं, अगर यह स्त्री छूट जाए, तुम फिर ऐसी ही स्त्री चुन लोगे। तुम्हीं चुनोगे न! तुम ऐसा करो, तुम बदलने की कोशिश करो, बजाय इसकी फिक्र करने के। आज तुम घर जाओ, फूल ले जाओ, आइसक्रीम ले जाओ, साड़ी खरीदकर ले जाओ। तुमने कभी यह किया? उन्होंने कहा कि नहीं किया।
मैंने कहा, तुम यह करो। और घर में कुछ काम भी करो। पत्नी दिन-रात काम करती है, उसके प्लेट भी धुलवाओ, किचन भी साफ करवाओ।
उन्होंने कहा, क्या मतलब! यह मैं करूं?
मैंने कहा, करो। आज तो कम से कम करो। देखें, क्या फर्क आता है!
वे गए; उन्होंने यह किया। दूसरे दिन मुझे बताया कि और झंझट खड़ी हो गई। पत्नी एकदम रोने-चिल्लाने लगी कि तुम क्या शराब पीकर आए हो? तुमको हो क्या गया है? तुम्हें होश है कि तुम क्या कर रहे हो? कभी जिंदगी में आइसक्रीम न लाए थे!
जो भी तुम करोगे, इससे बहुत फर्क न पड़ेगा, क्योंकि तुम वही हो। तुम जो
भी करोगे, वह तुम्हारी गांठों से ही निकलेगा। वह रस तुम्हारी गांठों से ही रिस रहा है। वह मवाद तुम्हारी गांठों में भरी है। परिणाम वही होंगे। कुछ भी करो, दुख हाथ आता है।
लेकिन फिर भी तुम यह नहीं देखते कि कहीं दुख मैं ही तो पैदा नहीं कर रहा हूं! सभी दुख देने को तत्पर हैं तुम्हें! आखिर सभी को ऐसी क्या पड़ी है। सभी इतने दीवाने क्यों हैं कि तुम्हें दुख दें? लेकिन अहंकार यह मानने को राजी नहीं होना चाहता कि मैं अपने दुख का कारण हो सकता हूं। जिस दिन तुम यह

समझ जाओगे, उसी दिन से जिंदगी में क्रांति शुरू होती है। उस दिन से फिर हम दूसरों को बदलने नहीं जाते। तुम अपनी ग्रंथियों को बदलना शुरू करते हो। तुमने जो पत्नी चुनी है, तुमने चुनी है। तुम्हारे भीतर कोई गलती होगी। पत्नी ने पति को चुना है, उसने चुना है; उसके भीतर कोई गलती होगी। दूसरे के दोष देखते-देखते तो तुमने कितने जन्म गुजारे; कहीं न पहुंचे। अब तो जागो और अपना दोष देखना शुरू करो। वहीं से परिवर्तन शुरू होता है। तुम फिर एक दूसरी ही दुनिया में रहने लगते हो, क्योंकि तुम दूसरे हो गए होते हो। तुम बदले कि दुनिया बदली।
"जिसकी सभी गं्रथियां क्षीण हो गयीं, उसे कोई दुख नहीं होता।"
भीतर से अहंकार हटाओ, तुम पाओगे, अब तुम्हारा कोई अपमान नहीं कर सकता-- असंभव! सारी दुनिया भी मिलकर तुम्हें अपमानित करना चाहे तो नहीं कर सकती। एक सूफी फकीर एक गांव में गया। लोगों ने उसका अपमान करने के लिए जूतों
की माला बनाकर पहना दी। वह बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने माला को बड़े आनंद से सम्हाल लिया। लोग बड़े हैरान हुए। क्योंकि वे आशा कर रहे थे कि वह नाराज होगा, गाली देगा, झगड़ा खड़ा करेगा। इच्छा ही यह थी कि झगड़ा खड़ा हो जाए। बड़े झुक-झुककर उसने नमस्कार किया; और जैसे कि फूलों की माला हो, गुलाब पहनाए हों। आखिर एक आदमी से न रहा गया। उसने पूछा, मामला क्या है? तुम्हें होश है? यह जूतों की माला है। उसने कहा, माला है, यही क्या कम है? जूतों की फिक्र तुम करो, हम माला की फिक्र कर रहे हैं। और चमारों का गांव है, करोगे भी क्या तुम? फूल तुम लाओगे कहां से? यह कोई मालियों की बस्ती तो है नहीं; चमारों की बस्ती है। पहचान गए हम कि चमारों की बस्ती है। मगर धन्यभाग कि तुम माला तो लाए! इसे सम्हालकर रखूंगा। फूलों की तो बहुत मालाएं देखीं, यह अनूठी है। तुमने अपने संबंध में सब कुछ कह दिया।
तुम अगर भीतर अहंकार से भरे नहीं हो, अहंकार की ग्रंथि भीतर नहीं, तो तुम्हारा कोई अपमान नहीं किया जा सकता। जूतों की माला में भी माला दिखाई पड़ने लगेगी। अभी तो फूलों की माला में भी फूल दिखाई नहीं पड़ते।
एक राजनेता की सभा थी, वह बड़ा नाराज हो रहा था, बड़ा दुखी हो रहा था। बाद में मैनेजर को बहुत डांटने लगा। उसने कहा कि मामला क्या है? नाराज आप किसलिए हैं? उसने कहा, सिर्फ ग्यारह माला! उसने कहा, ग्यारह कोई कम हैं? उसने कहा, बारह के पैसे चुकाए थे।
अपनी माला भी... खुद ही पैसे चुकाने पड़ते हैं और गिनती रखनी पड़ती है। फूल भी तब फूल नहीं रह जाता। अहंकार पर चढ़े फूल भी कांटे हो जाते हैं। भीतर की ग्रंथि के बदलने की बात है।
पर यह जीवन की परिपक्वता से ही संभव है और कोई उपाय नहीं है। जीवन के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं। जीवन ही पथ है--एस धम्मो सनंतनो।
"स्मृतिवान पुरुष उद्योग करते हैं, वे गृह में नहीं रमते। हंस जिस प्रकार डबरे छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वे सभी घर छोड़ देते हैं।"
फिर भूल न हो जाए। देखना, बुद्ध के वचन में बड़ी बारीक बात है। जो विरोध बुद्ध के वचन में है, वह उद्योग और गृह में है।
बुद्ध कहते हैं, "स्मृतिवान पुरुष उद्योग करते हैं, वे गृह में नहीं रमते।"
बड़ी बात उलटी सी लगती है। कहना चाहिए कि वे आश्रम में रहते हैं, घर में नहीं रहते; समझ में आता। जंगल में रहते हैं, घर में नहीं रहते; समझ में आता। लेकिन बुद्ध जो विरोध साध रहे हैं, वह बड़ा अनूठा है।
वे कहते हैं, "स्मृतिवान पुरुष उद्योग करते हैं, गृह में नहीं रमते।" उद्योग से घर का क्या विरोध? उद्योग से घर का लेन-देन क्या?
वहीं सारा रहस्य छिपा है। घर तुम इसीलिए बनाते हो कि कल उद्योग न करना पड़े। कल की सुरक्षा के लिए आज तुम घर बनाते हो। कल की सुरक्षा के लिए आज बैंक बैलेंस बनाते हो। कल की सुरक्षा के लिए, अगले परलोक की सुरक्षा के लिए पुण्य करते हो।
अगर तुम गौर से देखो तो तुम्हारे घर बनाने की सभी चेष्टा उद्योग से बचने की चेष्टा है। धनी तुम किसलिए होना चाहते हो? ताकि उद्योग न करना

पड़े। तुम उद्योग भी करते हो तो उद्योग से बचने की ही आकांक्षा में करते हो।
स्मृतिवान पुरुष--स्मृतिवान अर्थात जागे हुए; जिन्हें होश आ गया, जिन्हें अपनी याद आ गई--वे उद्योग करते हैं, घर में नहीं रमते।
अब इस सूत्र का अर्थ बौद्ध भिक्षुओं ने समझा कि घर से भागो। इस सूत्र
का अर्थ हैः उद्योग करो और सुरक्षा के घर मत बनाओ।
इतना सीधा अर्थ भी चूक जाता है। इसको भी बताना पड़ता है। यह तो बिल्कुल साफ है, इसमें किसको बताना! लेकिन धम्मपद पर जितनी भी व्याख्याएं की गई हैं, वे सभी व्याख्याएं यही कहती हैं, घर को छोड़ दो। पच्चीस सौ साल का गलत-सलत प्रचार न मालूम कितने लोगों को भटका गया है।
बुद्ध यह कह रहे हैं, "स्मृतिवान पुरुष उद्योग करते हैं।"
इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ, वे कल के लिए कोई भी सुरक्षा आयोजित नहीं करते। कल जब आएगा, कल की चुनौती को कल ही निपटेंगे। आज अगर हम जी सके तो कल भी जी लेंगे। और आज जिस प्रज्ञा के आधार पर, जिस होश के आधार पर जीवन को सुलझाया, उसी होश के आधार पर कल भी सुलझा लेंगे। आज हम कल के लिए घर क्यों बनाएं? भविष्य के लिए आज हम चिंता क्यों करें?
जीसस का वचन हैः लोमड़ियों के लिए भी घर हैं सिर छिपाने को, लेकिन परमात्मा के बेटे के लिए कोई स्थान नहीं, जहां वह सिर छिपा ले।
वही मतलब है। जीसस ने अपने शिष्यों से कहा, देखो लिली के फूलों को जो खेत में लगे हैं; इन्हें कल की कोई भी चिंता नहीं। ये आज खिले हैं; इन्हें कल की कोई भी फिक्र नहीं। इसलिए इनके माथे पर चिंता की कोई रेखा नहीं। सम्राट सोलोमन भी इतना सुंदर न था अपने महलों में, जितने ये फूल निश्चिंत परम सौंदर्य को उपलब्ध हुए हैं।
अगर संन्यास सच्चा हो तो संन्यास से बड़े सौंदर्य की और कोई घटना नहीं। क्योंकि इसका अर्थ होता है कि संन्यासी के मन पर भविष्य का कोई बोझ नहीं। इसका दूसरा अर्थ होता है कि संन्यासी के मन पर अतीत का भी कोई बोझ नहीं। जो भविष्य के लिए घर नहीं बनाता, वह अतीत के घरों को क्यों ढोएगा? जो कल घर बनाए थे, वे कल काम आ गए। जो कल काम में आएंगे, कल बना लेंगे; आज पर्याप्त है। यह संन्यास की दशा है।
सारे चमन को मैं तो समझता हूं अपना घर
तू आशियां-परस्त है, जा आशियां बना
संन्यासी का अर्थ यह नहीं है कि उसने घर छोड़ दिया। संन्यासी का अर्थ है, उसने सारे अस्तित्व को अपना घर मान लिया; अलग से घर बनाने की जरूरत न रही। संन्यासी का अर्थ यह है कि यह पूरा अस्तित्व, यह आकाश, यह पृथ्वी अपनी है। यह जीवन अपना है; ये चांद-तारे अपने हैं। यह सारा विस्तार घर है। अब और अलग घर बनाने की क्या जरूरत?
हां, जिनकी आकाश से दुश्मनी है, जिनको चांद-तारों से भय है, जिन्हें अपनी सुरक्षा अलग से करनी है, यह पूरे परिपूर्ण की सुरक्षा जिनके लिए ना काफी मालूम होती है, जिन्हें परमात्मा काफी नहीं है, वे अपने लिए घर बनाते हैं।
परमात्मा काफी है, काफी से ज्यादा है; पर्याप्त ही नहीं है, पर्याप्त
से बहुत ज्यादा है। जिसको ऐसी समझ आनी शुरू हो गई, वह उद्योग करता है, श्रम करता है, जूझता है, लेकिन सुरक्षा नहीं खोजता। और जीवन के रहस्य उसी को पता चलते हैं, जो असुरक्षा में जीने की कला जानता है।
प्रेम करना, विवाह नहीं। विवाह सुरक्षा है, प्रेम असुरक्षा है। लेकिन
दो व्यक्ति प्रेम में पड़ते हैं कि तत्क्षण चिंता में पड़ जाते हैं कि विवाह करें। क्योंकि अगर विवाह न किया, फिर कल क्या होगा? वृक्ष जी रहे हैं, पशु- पक्षी जी रहे हैं, कुछ भी नहीं हुआ। कितने कल गुजर गए। सिर्फ आदमी को कल की फिक्र है।
तुम्हें अपने प्रेम पर भरोसा नहीं है, इसीलिए तुम सुरक्षा खोजते हो कानून की। प्रेम पर भरोसा हो तो कानून की क्या सुरक्षा! आज अगर प्रेम है तो कल भी रहेगा। कल तो और बढ़ जाएगा। इतना समय बीत चुका होगा, गंगा और थोड़ी बड़ी हो जाएगी, जीवन के झरने उसे और थोड़ा भर देंगे।

लेकिन तुम्हें आज ही कहां भरोसा है कि प्रेम है? आज ही गंगा सिकुड़ी- सिकुड़ी है। आज ही गंगा सूखी-सूखी है। आज ही ऐसा लगता है कि कब गंगा उड़ी! कब गई! इसके पहले कि गंगा उड़ जाए और रेत का रेगिस्तान रह जाए, कानून की गंगा बना लो। इसके पहले कि गंगा उड़ जाए, कानून के नल लगा लो, कानून की टोंटी लगा लो; उससे थोड़ा जल तो मिलता रहेगा। लेकिन गंगा को खोकर नल की टोंटी को पा लेना बड़ा महंगा सौदा है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विवाह मत करना; मैं यह कह रहा हूं कि विवाह प्रेम का परिपूरक न बन जाए। सामाजिक व्यवस्था है, ठीक; लेकिन तुम्हारी आंतरिक सुरक्षा न हो। तुम विवाह पर निर्भर मत रहना, तुम प्रेम पर निर्भर रहना, तो तुम संन्यस्त हो; तो तुम घर नहीं बना रहे; तो तुम कानून में सुरक्षा नहीं खोज रहे; तो तुम खुले हो; तो तुम कहते हो, कल जो होगा, देखेंगे; कल जो दिखाएगा, देखेंगे, कल के लिए आज से इंतजाम नहीं किया है।
अब एक रात अगर कम जीए तो कम ही सही
यही बहुत है कि हम मशअलें जला के जीए
क्या फर्क पड़ता है, एक दिन कम जीए? --जीए! लेकिन लोग ऐसे हैं कि वे कहते हैं, एक दिन ज्यादा जी लें; चाहे जीएं या न जीएं। लोग कहते हैं, जिंदगी लंबी हो। यह पूछते ही नहीं कि जिंदगी की लंबाई से जिंदगी का क्या लेना-देना? जीवन की सुरक्षा से जीवन की गहराई का क्या संबंध? लोग जीवन में परिमाण खोजते हैं, गुण नहीं।
जो गुण खोजता है, वही संन्यस्त; जो मात्रा खोजता है, गृहस्थ। जो कहता है, जितनी ज्यादा देर जी लें। इसकी फिक्र ही भूल जाता है कि ज्यादा देर जीने में कहीं ऐसा न हो कि हम जी ही न पाएं। ज्यादा देर की चिंता कहीं जीवन को ही नष्ट न कर दे।
अब एक रात अगर कम जीए तो कम ही सही
यही बहुत है कि हम मशअलें जला के जीए
मशालें जलाकर जीए, रोशनी में जीए। एक क्षण भी अगर कोई मशालें जलाकर जी
ले तो हजारों जन्मों से ज्यादा है। और तुम हजारों जन्म घसिटते रहो, घसिटते रहो, जीने का मौका ही न आए--आता ही नहीं, क्योंकि आज तुम कल की तैयारी करते हो। आज गंवाया।
और आज ही सब कुछ है, एकमात्र संपदा है। कल तुम परसों की तैयारी करोगे, क्योंकि कल फिर आज होकर आएगा। और आज तो तुम जीते नहीं। आज तुम सदा कल पर न्यौछावर करते हो। फिर तुम जीओगे कब? एक दिन मौत आ जाएगी और कल की सारी संभावना छीन लेगी। तुम कोरे के कोरे रह जाओगे।
जन्मते बहुत लोग हैं, जीते उतने बहुत लोग नहीं। जन्मते करोड़ों हैं, जीता कोई एकाध। जीता वही है, जो आज जीता है।
जीने को गंवाने का सबसे सुगम तरीका है--रामबाण--कि तुम कल की आकांक्षा,
कल का हिसाब, कल की सुरक्षा में जीते रहो। इंतजाम करो, जीओ मत। व्यवस्था करो कि जब व्यवस्था पूरी हो जाएगी, तब जीएंगे। व्यवस्था कभी पूरी न होगी, तुम पूरे हो जाओगे।
आंख पड़ती है कहीं पांव कहीं पड़ता है
सबकी है तुम को खबर अपनी खबर कुछ भी नहीं
सब हिसाब लगा रहे हो--बच्चों का, पत्नी का, मां-बाप का, परिवार का, समाज का, दुनिया का; इजरायल में क्या हो रहा है, कंबोडिया में क्या हो रहा है, वियतनाम में क्या हो रहा है...
आंख पड़ती है कहीं पांव कहीं पड़ता है
सबकी है तुमको खबर अपनी खबर कुछ भी नहीं
ऐसे ही बेहोशी में चलते-चलते कब्र में गिर जाओगे। मशालें जलाकर जीयो। थोड़ी रोशनी करो। छोड़ो फिक्र और सब। यह जीवन बड़ा बहुमूल्य है, इसे ऐसे मत गंवा दो। इसे रूपांतरित करो, इसे गुणवत्ता दो, इसे भगवत्ता दो। "स्मृतिवान पुरुष उद्योग करते हैं, वे गृह में नहीं रमते।"
नदी की धार हैं वे, बहते हैं; बंधे तालाब नहीं।
"हंस जिस प्रकार डबरे छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वे सभी घर छोड़ देते हैं।"

घरों से मतलब नहीं है। बुद्ध पुरुष क्षुद्र बातें करते ही नहीं। क्षुद्र घरों की क्या बात करेंगे? बुद्ध पुरुष की बात साफ है। हंस जिस प्रकार डबरे छोड़ देते हैं, मानसरोवर की तलाश करते हैं, वैसे ही स्मृतिवान पुरुष असीम की खोज में लगते हैं, सीमाएं छोड़ देते हैं।
घर यानी सीमा। सरोवर नहीं बनते, सागर की तलाश पर निकलते हैं। सागर की तलाश में ही तो सरोवर सरिता बन जाता है। सागर की तलाश न हो तो डबरा बन जाता है। धीरे-धीरे सूखता है और सड़ता है और दुर्गंध उठती है बस। डबरे का कसूर क्या है? सड़ क्यों जाता है? जहां सीमा है, वहीं सड़ांध आ जाती है। डबरे ने घर बना लिया, बहने से डरा, अनजान से घबड़ाया। पता नहीं, आगे क्या हो! यहीं ठहर गया, घर बना लिया।
नदी बढ़ती चली जाती है। आज बड़ा सुंदर किनारा है माना, लेकिन फिर भी पकड़कर रुक जाना नहीं। क्योंकि सौंदर्य को भी अगर पकड़कर रुक जाओ तो सौंदर्य भी सड़ जाता है। आज माना कि सब ठीक है, लेकिन अगर इसे तुमने जोर से मुट्ठी में बांध लिया और छोड़ने में घबड़ा गए तो यह भी राख हो जाएगा। यह सुंदर है तुम्हारे बहने में। तुम बहते रहो, नदी स्वच्छ बनी रहती है, कुंआरी बनी रहती है। बहती रहती है। नदी के कुंआरेपन को कोई छीन नहीं सकता, क्योंकि बहनेपन में कुंआरापन है।
संन्यास कुंआरापन है। संन्यास यानी सदा बहते रहना।
निराले हैं अंदाज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकुशी जानते हैं
संन्यास एक निराला अंदाज है। भीड़ के पीछे चलने को संन्यासी आत्मघात समझता है।
निराले हैं अंदाज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकशी जानते हैं
तकलीद यानी भीड़। सभी घर बनाए बैठे हैं, तुम भी घर बनाने लगे। सभी विवाह रचाए बैठे हैं, तुम भी विवाह रचाने लगे। सभी बैंक में धन इकट्ठा कर रहे हैं, तुम भी करने लगे। सभी जो कर रहे हैं, वही तुम भी करने लगे। तुम ने यह पूछा ही नहीं कि यही करने को मैं यहां आया हूं? लेकिन सभी जो कर रहे हैं! तुम्हें होश है, तुम क्या कर रहे हो? तुम अनुकरण में पड़े हो। यह तो पूछो कि तुम्हें करना है? अगर यही तुम्हारा कृत्य है तो करो; लेकिन दूसरे कर रहे हैं... ।
मुल्ला नसरुद्दीन के साथ मैं एक दिन उसकी गाड़ी में बैठकर आ रहा था। भरी धूप, गर्मी के दिन, और वह कांच न उतारे खिड़कियों के। मैंने उससे पूछा कि मार डालोगे? वह कहने लगा, मर जाना ठीक है, लेकिन मोहल्ले वालों को यह पता चल जाए कि गाड़ी एयरकंडीशंड नहीं, यह बरदाश्त के बाहर है।
दूसरों के पास एयरकंडीशंड गाड़ी है। हवा के झोंके बाहर हैं, लेकिन वह दरवाजे-खिड़कियां बंद किए बैठा है। पसीने से तरबतर है, लेकिन बरदाश्त करना ही होगा। दूसरों का अनुकरण!
तुमने कभी गौर किया कि तुम कितनी चीजें दूसरों के पीछे चलने लगते हो, करने लगते हो। किसी ने नया मकान बना लिया, तुम बनाने लगे। यह भी तो पूछो, जरूरत थी? कोई नए कपड़े बना लाया, तुम बनाने लगे। किसी की नई साड़ी देख ली, तुम चले। तुम्हें जरूरत थी? अपनी जरूरत से चलो, अपने भीतर से चलो, अन्यथा तुम आत्मघात कर रहे हो। ऐसे दूसरों के पीछे अगर दौड़ते रहे तो दौड़ोगे बहुत, पहुंचोगे कहीं भी नहीं।
"हंस जिस प्रकार डबरे छोड़ देते हैं... ।"
सबने डबरे बना रखे हैं अपने-अपने। घबड़ा गए हैं बहने से; हिम्मत खो दी है। और जहां हिम्मत गई, वहीं आत्मा गई।
बहो; मिट तो जाना ही है। लेकिन नदी के मिटने में एक शान है। डबरे के मिटने में एक गरीबी है, दीनता है, दरिद्रता है। डबरा भी सूख जाएगा। सूरज की धूप उसको भी उड़ा देगी, वह भी मिटेगा, लेकिन बड़ा तड़फता हुआ मिटेगा। झिझकता हुआ मिटेगा। पकड़ता हुआ--जमीन को पकड़े रखेगा, जोर से पैर गड़ाकर रुका रहेगा।
जबरदस्ती उसकी मौत घटेगी, स्वेच्छा से न मर सकेगा। सरलता से न बह सकेगा।
मौत उसकी बड़ी दुखदायी होगी, बड़ी पीड़ादायी होगी।

नदी भी मरेगी, नाचती हुई मरेगी, समाधिस्थ होकर मरेगी। नदी की गुनगुनाहट देखी, जब सागर में गिरती है? नाच देखा, जब सागर में गिरती है? नदी में उठती लहरों की तरंगें देखीं, जब सागर में गिरती है? मिट वह भी रही है। डबरे का जल भी वहीं पहुंच जाएगा सागर में, जरा कठिनाई से पहुंचेगा, जद्दोजहद से पहुंचेगा। नदी स्वेच्छा से जा रही है, अपनी मौज से जा रही है। अगर तुम मरना सीख जाओ अपनी मौज से तो मौत भी बड़ी सुंदर है।
संन्यासी भी मरता है, पर उसकी मौत बड़ी नाचती हुई है; वह मौत के पीछे खड़े परमात्मा को देखता है। वह मौत को अपने मिटने की तरह नहीं देखता, सागर होने की तरह देखता है कि मैं अब सागर हुआ! अब सागर हुआ!
डबरा देखता है, मैं मरा! मैं मरा! उसे सागर दिखाई नहीं पड़ता--है भी बहुत दूर। वह कभी बहा नहीं है, नहीं तो सागर के करीब पहुंच जाता। बीच में बड़ी बादलों की कतारें होंगी, तब कहीं सागर आएगा।
सभी मरते हैं। गृहस्थ भी मरता है, संन्यासी भी मरता है। पर मृत्यु का
भी गुणधर्म बदल जाता है। अगर तुम जीए ठीक से तो तुम मरोगे भी ठीक से। अगर तुम नाचते जीए तो नाचते मरोगे। तुम्हारे जीवन की शैली ही तुम्हारी मृत्यु की शैली होगी। और मृत्यु सील लगा जाएगी तुम्हारे अस्तित्व पर; कह जाएगी कि तुम कौन थे! कह जाएगी, तुम क्या थे! अगर तुम तड़फते मरे तो तुम खबर दे गए कि तुम ठीक से जीए न, चूक गए। अधूरे गए, कच्चे गए।
जिंदगानी है फकत गर्मिए-रफ्तार का नाम
मंजिलें साथ लिए राह पे चलते रहना
जीवन तो रफ्तार का नाम है, गति का। जीवन की कोई मंजिल नहीं है। बहुत मंजिलें आती हैं, मंजिल नहीं आती। सब मंजिलें पड़ाव हैं, ठहरना और आगे बढ़ जाना।
जिंदगानी है फकत गर्मिए-रफ्तार का नाम
वह जो उष्णता है गति की, वही जिंदगी है।
मंजिलें साथ लिए राह पे चलते रहना
मंजिलों को आगे मत रखना--साथ लिए। मंजिलों को भविष्य में मत रखना--आज लिए। मंजिलों को कल पर मत टालना।
मंजिलें साथ लिए राह पे चलते रहना
तो तुम डबरों की बतखें न हो जाओगे, तुम मानसरोवर के हंस हो जाओगे।
इसी अर्थ में हमने संन्यासियों को हंस और परमहंस कहा है। मानसरोवर की खोज पर जो निकले हैं, दूर असीम से मिल जाने की जिनकी तड़फ है, मिट जाने की जिनकी तड़फ है, खो जाने की जिनकी तड़फ है, बचने का जिन्हें अब मोह नहीं।
जो बचने के मोही हैं, वे घर बनाते हैं। जो अपने को खो देने को तैयार हैं, वे कोई घर नहीं बनाते। और मजा यह है कि जो बचाते हैं, वे मिट जाते हैं। जो खो देते हैं, वे कभी भी नहीं मिटते।
"जिनका कोई संग्रह नहीं है, जो भोजन में संयत हैं, शून्य और अनिमित्त विमोक्ष जिनका गोचर है, उनकी गति आकाश में पक्षियों की गति की भांति दुरनुसरणीय है।"
"जिसके आस्रव क्षीण हो गए हैं, जो आहार में आसक्त नहीं है, और शून्य तथा अनिमित्त विमोक्ष जिसका गोचर है, उसका पद आकाश में पक्षियों की गति की भांति दुरनुसरणीय हो गया है।"
"जिनका कोई संग्रह नहीं है।"
संग्रह करता है अहंकार। क्योंकि जितना तुम कह सको मेरा, उतना ही तुम्हारा मैं बड़ा हो जाता है। जितना तुम्हारा मेरा बड़ा होता है, उतना ही मैं बड़ा हो जाता है। जितना मेरा छोटा होता है, उतना मैं छोटा हो जाता है। बड़ा धन है, बड़ा पद है, बड़ा राज्य है, तो जो तुम्हारे राज्य की सीमा है, वही तुम्हारे मैं की सीमा है। राज्य सिकुड़ने लगे, तुम्हारा मैं भी सिकुड़ने लगा।
लोग धन के लिए थोड़े ही धन को चाहते हैं। पद के लिए थोड़े ही पद को चाहते हैं। यश के लिए थोड़े ही यश को चाहते हैं। यह सारी आकांक्षा अहंकार को भरने की आकांक्षा है--मैं कुछ हूं, ना-कुछ नहीं।

जिसने यह समझा कि यह मैं ही सारे दुखों का कारण है, वह ना-कुछ होने को तैयार हो जाता है। संग्रह की वृत्ति उसकी खो जाती है, परिग्रह का भाव विलीन हो जाता है, पकड़ता नहीं।
"जिनका कोई संग्रह नहीं है, जो भोजन में संयत हैं।"
बुद्ध का बहुत जोर संयम पर है। संयम का अर्थ समझ लेना; ज्यादा खाओ तो असंयम, उपवास करो तो असंयम। संयम का अर्थ होता हैः जो मध्य में संयत है, संतुलित है; न ज्यादा भोजन, न कम भोजन।
ज्यादा खाने वाले लोग हैं, असंयत हैं, असंयमी हैं। उनको तो तुम असंयमी कहते हो। फिर ये ही कभी मंदिरों में बैठ जाते हैं, मुनि हो जाते हैं, उपवास करने लगते हैं; तब तुम इनको संयमी कहते हो।
ये भी असंयत हैं। ये वही लोग हैं, जो ज्यादा खाने से परेशान थे; अब कम खाने से अपने को परेशान कर रहे हैं। गांठ मौजूद है, दुख पा रहे हैं। पहले ज्यादा खाकर पाया, अब कम खाकर पा रहे हैं।
यही तो मैंने कहा कि गांठ बदलनी जरूरी है, नहीं तो तुम कुछ भी करो, दुख
ही पाओगे। अब मजे की बात है, ज्यादा खाकर भी दुख पाया, उपवास करके भी दुख पा रहे हैं। जैसे दुख पाने के लिए इन्होंने कसम खा रखी है; जैसे दुख पाएंगे ही।
संयत का अर्थ हैः सम्यक; उतना ही, जितना जरूरी है। जितना शरीर को जरूरी है, उतना भोजन। जितना शरीर को जरूरी है, उतना श्रम। जितना शरीर को जरूरी है, उतना विश्राम। जितना आवश्यक है उससे ज्यादा नहीं, उससे कम भी नहीं। ऐसा जो संतुलित है, उसके जीवन में संगीत का उदय होता है। उसके जीवन में बड़े संतुलन की शांति छा जाती है। वह संगीत और शांति में जीता है। "शून्य और अनिमित्त विमोक्ष जिनका गोचर है।"
बुद्ध कहते हैं, जीवन को ऐसे परम स्वीकार भाव से जीना चाहिए कि जो जरूरी है, वह मिल ही जाएगा।
यही मैंने तुमसे पीछे कहा कि प्यास है तो जल पहले होगा ही। श्वास की जरूरत है तो हवाएं चारों तरफ मौजूद होंगी ही। ये दोनों साथ-साथ ही पैदा होते हैं। इसलिए तुम अपने निमित्त बहुत चेष्टा मत करो।
चेष्टा करो श्रम के निमित्त, करना जरूरी है, करना आनंदपूर्ण है; लेकिन अपने निमित्त... यह मत सोचो कि मैं न करूंगा तो क्या होगा? मैं इकट्ठा न करूंगा तो मर जाऊंगा, भूखा मर जाऊंगा। मैं अगर महल न बनाऊंगा तो साया न मिलेगा। मैं अगर धन न इकट्ठा करूंगा तो क्या होगा?
न, तुम अपने को निमित्त मत मानो। तुम इस तरह मत सोचो कि तुम्हारे किए
ही होगा। क्योंकि इससे भी अहंकार निर्मित होता है। तुम इस तरह चलो कि जो हो रहा है, हो रहा है; जो होना है, होगा।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम सुस्त हो जाओ, तुम आलसी हो जाओ; तुम करो, लेकिन तुम कर्ता मत बनो।
"उनकी गति आकाश में पक्षियों की भांति है।"
इसलिए बुद्ध पुरुषों का अनुसरण नहीं किया जा सकता। पक्षियों के पदचिह्न नहीं बनते आकाश में। रास्ते पर कोई चलता हो, पदचिह्न बनते हैं; तुम पीछे-पीछे पैरों में पैर रखकर चल सकते हो। इसलिए तो बुद्ध पुरुषों का कोई मार्ग निर्मित नहीं होता। आकाश में पक्षी उड़ते हैं, चिह्न तो छूटते नहीं, पक्षी उड़ जाता है, आकाश खाली का खाली रह जाता है।
ऐसा ही चैतन्य के आकाश में भी है। इसलिए बुद्धों से समझना, अनुकरण मत करना। मार्ग तो तुम्हें अपना ही खोजना पड़ेगा। हर पक्षी को अपना ही आकाश खोजना पड़ेगा। कोई बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं।
इसीलिए तो बुद्धों के पीछे जाना इतना दुरनुसरणीय है, इतना कठिन है। रास्ता होता तो हम सब चल लेते। रास्ता अगर होता तो हमने अब तक तो मील के सब पत्थर लगा लिए होते। रास्ता अगर होता तो चलते क्यों हम? यान चला देते, बसें दौड़ा देते। परमात्मा की तख्ती लगी हुई बसें सीधी परमात्मा के घर में प्रवेश कर जातीं।
रास्ता नहीं है। बुद्ध चलते हैं, पहुंच भी जाते हैं, रास्ता खो-खो जाता है। रास्ता बनता ही नहीं। इसलिए जिनको तुमने रास्ता समझा है, कहीं

गलती कर रहे होओगे। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, इनको लोग रास्ता समझे हैं। बुद्ध पुरुष पीछे रास्ता छोड़ते ही नहीं। महावीर चले, पहुंचे; लेकिन जैन धर्म ऐसा कोई रास्ता नहीं बनता। बुद्ध चले, पहुंचे; लेकिन बुद्ध धर्म ऐसा कोई रास्ता नहीं बनता।
बुद्ध पुरुषों की सुगंध लो, बुद्ध पुरुषों की समझ लो, बुद्ध पुरुषों
का सान्निध्य लो, सत्संग लो; चलना तुम्हें अपने ही रास्ते पर पड़ेगा, खोजना अपना ही रास्ता पड़ेगा।
और बड़ी कठिनाई यह है कि यह रास्ता जैसे तुम चलते हो, वैसे ही बनता है। जैसे कोई घने जंगल में जाता है, कोई रास्ता पहले से नहीं है। तुम चलते जाते हो, घास हटता जाता है, पगडंडी बनती जाती है। जितना तुम चलते हो, उतना ही रास्ता बनता है। तुमसे आगे रास्ता तैयार नहीं है, रेडीमेड नहीं है।
पर यह अच्छा है। अच्छा है कि परमात्मा की तरफ बसें नहीं जातीं; अन्यथा जाने का मजा ही चला गया होता; अन्यथा भीड़ पहुंच गई होती। जो पहुंचने की क्षमता वाले लोग थे वे कहीं और जाते; फिर परमात्मा की तरफ न जाते। वह बात ही व्यर्थ हो जाती।
निराले हैं अंदाज दुनिया से अपने
कि तकलीद को खुदकुशी जानते हैं
फिर बुद्ध, महावीर, कृष्ण, कबीर वहां न जाते। फिर क्राइस्ट, मोहम्मद वहां न जाते। उनके अंदाज और हैं। उसी अंदाज से असली परमात्मा पैदा होता है--उसी तुम्हारी निजता से, तुम्हारी खूबी से, तुम्हारी विशिष्टता से, अपने रास्ते को खोजने के साहस से।
कमजोर दूसरे के रास्ते पर चलता है। साहसी अपना रास्ता खोजता है; खोजता नहीं, बनाता है; उसी से आत्मा का जन्म होता है।
"जिनका कोई संग्रह नहीं है, भोजन में संयत, जिनके आस्रव क्षीण हुए, जो आहार में आसक्त नहीं, शून्य तथा अनिमित्त विमोक्ष जिनका गोचर है, उनका पद आकाश में पक्षियों की भांति है।"
बुद्ध पुरुषों के कोई कारागृह नहीं हैं; खुला आकाश है उनका। जहां- जहां हमने मंदिर-मस्जिद खड़े किए हैं, वहीं-वहीं कारागृह खड़े हो गए हैं। यह भी जिंदां वह भी जिंदां
क्या है मस्जिद, क्या है शिवालय
सब कारागृह हैं।
बुद्ध पुरुषों का तो आकाश है। अगर असली मंदिर खोजना हो, आकाश में खोजना। जमीन पर तो जो बनाए गए हैं वे आदमी के हैं; सोए हुए आदमी के हैं। वहां तो जो चल रहा है, वे शामक दवाएं हैं। जो घंटनाद चल रहा है, जो पूजा-पाठ चल रहा है, वे सब ठीक से सोने की व्यवस्थाएं हैं।

बुद्ध पुरुषों का मंदिर देखना हो तो आकाश में देखना, ऊपर की तरफ देखना, जहां कोई सीमा नहीं। आकाश यानी शून्य। और जब तुम बाहर के आकाश को देखने में समर्थ हो जाओगे, बाहर के शून्य को तुम्हारी आंखें पात्र हो जाएंगी, बाहर के आकाश के साथ संलग्न हो जाएंगी, तो तुम भीतर के आकाश को भी देखने में समर्थ होने लगोगे। बाहर का शून्य तुम्हें भीतर के शून्य की ही याद दिलाएगा। बाहर का शून्य तुम्हारे भीतर के शून्य को सुगबुगाएगा। बाहर का शून्य तुम्हारे भीतर के शून्य को जगाएगा।
और जिस दिन बाहर का शून्य और भीतर का शून्य मिलता है, उसी घड़ी का नाम निर्वाण है। उसे तुम परमात्मा कहो, मोक्ष कहो, या कोई और नाम दो। सभी नाम एक से हैं, क्योंकि उसका कोई नाम नहीं है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
छत्तीसवां प्रवचन

अंतश्चक्षु खेल

पहला प्रश्नः मेरे व्यक्तित्व के दो हिस्से हैं; एक प्रतिदिन जमीन पर लेटकर आपको साष्टांग प्रणाम करता है और उससे सुखी होता है; और दूसरा प्रायः प्रतिदिन ही पूछ बैठता है कि तुम्हें क्या पता कि ये भगवान ही हैं! क्या दोनों मेरे अहंकार के हिस्से हैं और क्या श्रद्धा निर-अहंकार में ही जन्म लेती है?

मन जहां तक है, वहां तक द्वंद्व भी रहेगा। मन बिना द्वंद्व के ठहर भी नहीं सकता; पलभर भी नहीं ठहर सकता। मन के होने का ढंग ही द्वंद्व है। वह उसके होने की बुनियादी शर्त है।
अगर तुम्हारे मन में प्रेम होगा तो साथ ही साथ कदम मिलाती घृणा भी होगी। जिस दिन घृणा विदा हो जाएगी, उसी दिन प्रेम भी विदा हो जाएगा। इसलिए तो बुद्ध पुरुषों का प्रेम बड़ा शीतल मालूम पड़ता है। वह उष्णता प्रेम की, जो हम सोचते हैं, दिखाई नहीं देती। वैसा प्रेम गया। वह ज्वार, वह ज्वर गया। इसलिए तो बुद्ध पुरुषों के प्रेम को हमने प्रेम भी नहीं कहा, करुणा कहा है, प्रार्थना कहा है। प्रेम कहना ठीक नहीं मालूम पड़ता। प्रेम का पैशन, त्वरा, तूफान, वहां कुछ भी नहीं है।
ऐसा ही समझो कि सागर में लहरें उठी हैं, बड़ी आंधी आई, बड़ा तूफान आया है, फिर लहरें शांत हो गईं। तो क्या तुम यह कहोगे--जब सागर में कोई तूफान न होगा--कि अब तूफान है लेकिन शांत है? तूफान बचा ही नहीं। अब यह कहना कि तूफान है और शांत है, व्यर्थ की बात हुई। शांत होने का अर्थ ही है कि तूफान न रहा। और जब सागर में तूफान उठता है तो अकेले सागर से नहीं उठता, हवाओं के थपेड़े भी चाहिए, आंधियां चाहिए। अकेले से कहीं तूफान उठे हैं! दो चाहिए, द्वंद्व चाहिए, संघर्ष चाहिए।
मन का सारा गुबार, मन की धूल के बवंडर द्वंद्व से उठते हैं। एक तरफ प्रेम--पैर मिलाती चलती घृणा भी साथ है। हां, तुम भूल जाते हो। जब तुम प्रेम से भरते हो, तुम घृणा को भूल जाते हो। जब तुम घृणा से भरते हो, तुम प्रेम को भूल जाते हो। क्योंकि दोनों को एक साथ देखना तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर है। जिस दिन दोनों को साथ देख लोगे, दोनों से मुक्त हो जाओगे।
एक तरफ श्रद्धा करते हो, दूसरी तरफ अश्रद्धा भी पलती है। जिसके भीतर श्रद्धा है, उसी के भीतर अश्रद्धा हो सकती है।
इसे समझने की कोशिश करना। अगर कोई मेरे संबंध में अश्रद्धा से भरा है
तो जान लेना कि कहीं पैर मिलाती श्रद्धा भी चलती होगी, उसने अभी देखी नहीं। इसलिए मेरे दुश्मनों को मेरे दुश्मन मत मान लेना, उनमें मेरे मित्र भी छिपे हैं, मौजूद हैं। आज नहीं कल प्रगट हो जाएंगे। जो मेरी निंदा करने का कष्ट उठाता है, उसके भीतर कहीं प्रशंसा छिपी है। अन्यथा निंदा भी व्यर्थ हो जाएगी। कौन निंदा की चिंता करेगा? जरूर कुछ राग है। जरूर मुझसे कुछ जोड़ है, कोई सेतु है।
दुश्मन के भीतर मित्रता छिपी है, मित्र के भीतर दुश्मनी छिपी है। इसलिए तुम किसी को दुश्मन न बना सकोगे अगर तुमने मित्र न बनाया। मित्र बनाकर ही दुश्मन बना सकते हो। मित्रता पहला कदम है।
तो तुम जब आदर से सिर झुकाते हो, तभी तुम्हारे भीतर अनादर भी सिर उठा रहा है। यह साथ ही साथ घट रहा है। इसे तुम जिस दिन समझने लगोगे, उस दिन तुम समझोगे, न तो श्रद्धा है मेरी, न अश्रद्धा है मेरी। उसी दिन तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे।
और उन दोनों से मुक्त हो जाने पर जो घटना घटती है, वही समर्पण है। उस समर्पण की ऊंचाई श्रद्धा से बहुत ऊंची है, क्योंकि उस समर्पण में श्रद्धा भी पार हो जाती है अश्रद्धा के साथ ही, दोनों के क्षेत्र पीछे छूट जाते हैं।

इसे हम कुछ और तरह से समझें। तुम मुझसे कहते हो, मन अशांत है, शांत होना है। जहां अशांति है, वहां शांत होने की आकांक्षा मौजूद हो जाती है। तुम अशांत होते हो तो शांत होने की आकांक्षा साथ-साथ बढ़ने लगी। जब तुम बहुत अशांत हो जाते हो तो तुम शांति की तलाश करते हो। शांति की तलाश अशांत लोग ही करते हैं।
जिस दिन तुम शांत हो जाओगे, उस दिन एक नई बात तुम्हें समझ में आएगी और
वह यह होगी कि अब तुम अशांति से बहुत भयभीत हो जाओगे। पहले तुम कभी भयभीत न थे। शांत होते से ही तुम पाओगे, अशांति पास में खड़ी है और कभी भी दुर्घटना हो सकती है। फिर तुम अशांत कभी भी हो सकते हो। जितने तुम शांत होने लगोगे, उतने ही तुम घबड़ाओगे कि यह अशांति तो करीब ही खड़ी है। यह कहीं से भी द्वार-दरवाजे खोलकर भीतर आ सकती है। तुम उतने ही भयभीत, कंपित होने लगोगे। यह शांति भी कोई शांति हुई, जिसके पास अशांति खड़ी है!
इसलिए फिर एक और शांति है, जहां शांति भी नहीं होती और अशांति भी नहीं होती; उसको ही बुद्ध ने शून्य कहा है। शून्य शब्द बड़ा प्यारा है, बड़ा बहुमूल्य है। इससे बहुमूल्य कोई दूसरा शब्द नहीं है। ब्रह्म भी इससे एक कदम पहले ही छूट जाता है।
शून्य का अर्थ हैः द्वंद्व न बचा। प्रेम और घृणा ने एक-दूसरे को नकार दिया। शांति अशांति ने एक-दूसरे को नकार दिया। दोनों की ऊर्जा टकरा गई और एक-दूसरे की ऊर्जा को काट गई। तुम बचे अकेले, जहां कोई द्वंद्व न रहा, निर्द्वंद्व दशा रही। उस निर्द्वंद्व दशा में सत्य का साक्षात्कार है। एकदम से तुम उसे साध भी न सकोगे, यह मैं जानता हूं। पहले तुम्हें श्रद्धा साधनी होगी, अश्रद्धा से छूटना होगा। इतना ही सही कि अश्रद्धा तुमसे थोड़ी दूर हो जाए। अश्रद्धा का पैर जरा दूर-दूर पड़ने लगे, श्रद्धा का पैर करीब पड़ने लगे, तो तुमने पहला कदम उठाया। अब जल्दी ही तुम्हें समझ आएगी कि श्रद्धा भी छोड़नी है।
ऐसा ही समझो कि पैर में एक कांटा लगा है, तुम दूसरा कांटा उठा लेते हो
इस कांटे को निकालने को। जब दोनों कांटे निकल आते हैं तो तुम क्या करते हो? जिस कांटे से तुमने कांटा निकाला, उसे सम्हालकर रख लेते हो? उसकी पूजा करते हो? उसका गुणगान करते हो? उसके शास्त्र बनाते हो, स्तुति गाते हो? तुम उसे भी उसी कांटे के साथ फेंक देते हो, जो गड़ा था, जो चुभा था। जिसने पीड़ा दी थी, उसी के साथ तुम उस कांटे को भी फेंक देते हो, जिसने पीड़ा छीन ली। तुम दोनों ही कांटों से मुक्त हो जाते हो।
अश्रद्धा का कांटा तुम्हारे मन में है, श्रद्धा के कांटे से निकालना है। इससे ज्यादा श्रद्धा का कोई उपयोग नहीं है। संदेह का कांटा तुम्हारे मन में है, श्रद्धा के कांटे से निकालना है; हिंसा का कांटा तुम्हारे मन में है, अहिंसा के कांटे से निकालना है; फिर दोनों ही फेंक देने हैं।
कहीं हिंसा का कांटा निकालकर अहिंसक होकर मत बैठ जाना। नहीं तो कांटे
की पूजा शुरू हो गई। अब तुम उलझे। एक से क्या छूटे, दूसरे से उलझे। कुएं से बचे, खाई में गिरे। और दूसरा कांटा खतरनाक है पहले से भी ज्यादा।
थोड़ी अड़चन होगी समझने में; क्योंकि तुम्हें इस दूसरे कांटे का कोई अनुभव नहीं है। पहले ने पीड़ा दी थी, दूसरे ने पीड़ा छीनी है। लेकिन अगर तुमने इसे सम्हालकर रख लिया, इसे अगर तुमने बहुत आदर दिया, तो आज नहीं कल यह चुभेगा। पहला तो शायद पैर में चुभा था, दूसरा हृदय में चुभेगा। इसे तुमने बहुत सम्हालकर रख लिया; इसे तुमने हृदय के बहुत करीब ले लिया; यह तुम्हें भयंकर पीड़ा देगा।
उपयोग श्रद्धा का जरूरी है, श्रद्धा की पूजा जरूरी नहीं। तो तुम अगर साष्टांग झुकते हो, शुभ है; इससे भी घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है कि भीतर संदेह खड़ा है। जब झुकते हो तब और भी स्पष्ट खड़ा हो जाता है। तब तुम्हारे भीतर का द्वंद्व साफ हो जाता हैः एक साष्टांग पृथ्वी पर लेटा हुआ है और एक अकड़कर खड़ा हुआ है और देख रहा है कि यह लेटना, यह साष्टांग दंडवत, यह सब व्यर्थ है। पता भी है, यह व्यक्ति भगवान है या नहीं?
यह व्यक्ति भगवान है या नहीं, इससे कुछ लेना-देना भी नहीं है। यह बात असली मुद्दे की है भी नहीं। इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन? इसे तुम जान भी

कैसे पाओगे? इसका उपाय भी क्या है जानने का? इसके लिए प्रमाण कहां खोजोगे? कोई उपाय नहीं है तुम्हारे पास। उपाय की जरूरत भी नहीं है।
यह व्यक्ति तो बहाना है, ताकि दूसरा कांटा हाथ में आ जाए। यह व्यक्ति
तो निमित्त है। यह न भी हो भगवान तो भी समझदार इसका उपयोग कर लेंगे। और यह भगवान भी हो तो भी नासमझ चूक जाएंगे। इससे प्रयोजन ही नहीं है। पत्थर की मूर्ति भी काम दे सकती है। असली सवाल श्रद्धा के शिक्षण का है। तुम अगर खाली आकाश के सामने सिर झुका सको तो खाली आकाश भी पर्याप्त है। पत्थर की मूर्ति की भी कोई जरूरत नहीं।
लेकिन कठिनाई होगी। खाली आकाश के सामने सिर झुकाओगे, पागलपन मालूम पड़ेगा; वहां कोई भी तो नहीं है। यहां कम से कम इतना तो है--कोई है। शक-शुबहा ही सही, संदेह ही सही, संदेह के योग्य भी कोई है, इतना भी बहुत है। क्योंकि जिस पर संदेह हो सकता है, उस पर श्रद्धा भी आ सकती है। जहां संदेह आ गया, श्रद्धा बहुत दूर नहीं। जहां श्रद्धा आ गई, संदेह बहुत दूर नहीं।
भूल कहां हो जाती है? अगर तुम इस उलझन में पड़ गए कि यह व्यक्ति भगवान
है या नहीं? यह पत्थर की मूर्ति वस्तुतः भगवान की मूर्ति है या नहीं? अगर तुम इस चिंता में पड़ गए तो धीरे-धीरे तुम पाओगे, तुमने श्रद्धा का हाथ छोड़ दिया; तुमने संदेह का हाथ पकड़ लिया।
संदेह भी तुम्हारे भीतर, श्रद्धा भी तुम्हारे भीतर, हाथ तुम श्रद्धा
का पकड़ना, संदेह का बहुत पकड़कर चल लिए हो। और ध्यान रखना कि श्रद्धा का हाथ भी ऐसा नहीं पकड़ लेना है कि कारागृह हो जाए। गांठ नहीं बांध लेनी है, भांवर नहीं पाड़ लेनी है। ऐसा मत कर लेना कि यह भी एक बंधन हो जाए, फिर छूटे न छुटाए बने। इसे भी कल छोड़ ही देना है। देर-अबेर इसे भी छोड़ देना है।
और अगर तुम्हें यह ख्याल में रहे कि देर-अबेर यह भी छूट ही जाएगा; जब संदेह ही चला जाता है तो श्रद्धा का फिर करोगे क्या? संदेह के रोग के लिए श्रद्धा की औषधि थी। अब इन बोतलों को छाती से लगाए घूमते रहोगे, जब बीमारी ही न रही? ध्यान रखना, कभी-कभी बोतलें बीमारी से भी महंगी हो जाती हैं। बीमारी तो छूट जाती है, फिर बोतलें पकड़ जाती हैं। अब बोतलों को लिए घूमते हो।
बुद्ध ने कहा है, कुछ पागल नाव से नदी पार कर लेते हैं, फिर नाव को सिर
पर रखकर बाजार में घूमते हैं। अब इन्हें कोई समझाए कि यह तुम क्या कर रहे हो! तो वे बड़ा तर्क देते हैं। वे कहते हैं, इस नाव ने ही नदी पार करवाई; अब इस नाव को हम कैसे छोड़ सकते हैं? इस नाव का इतना उपकार है हमारे ऊपर कि हम तो इसे सिर पर लेकर चलेंगे।
इससे तो बेहतर था कि वे नदी ही पार न करते। कम से कम बोझ से तो मुक्त थे। उस पार ही रहते, कम से कम चलने-फिरने की तो स्वतंत्रता थी। अब तो चलने- फिरने की स्वतंत्रता भी गई... यह बोझ नाव का!
लेकिन नाव का इसमें कुछ कसूर नहीं। तुम्हारी पकड़ने की आदत पड़ गई है। पकड़ने की आदतभर छोड़नी है और कुछ छोड़ने जैसा नहीं है। पकड़ने की आदतभर छोड़नी है और कुछ त्याग करने जैसा नहीं है। वही नहीं छूटती।
पाप छूट जाता है, पुण्य पकड़ जाता है। संदेह छूटता है, श्रद्धा पकड़ जाती है। निराशा छूटती है, आशा पकड़ जाती है। संसार छूटता है, मोक्ष पकड़ जाता है। लेकिन पकड़ जारी रहती है। पकड़ ही संसार है। छोड़ दो। छोड़कर जीयो। कुछ बिना पकड़े जीयो।
जो जानते हैं, वे तो नदी में भी नाव का उपयोग नहीं करते। जो नहीं जानते, वे बाजारों में नाव लेकर सिर पर चलते हैं। जो जानते हैं, वे तैरकर ही पार हो जाते हैं, नाव की कोई जरूरत नहीं है। उनके लिए इशारे काफी होते हैं, बुद्ध पुरुषों की अंगुलियां काफी होती हैं। उन इशारों से वे नाव बना लेते हैं। उन इशारों की ही नाव बन जाती है। कोई स्थूल नाव की जरूरत नहीं है। संप्रदाय बनाने की जरूरत नहीं है, धर्म काफी है।
धर्म और संप्रदाय का यही फर्क है। धर्म है मात्र इशारा, इंगित; संप्रदाय है बड़ी ठोस नाव--नाव भी लकड़ी की नहीं, पत्थर की; डुबाएगी। पार इससे तुम न हो सकोगे।

तो घबड़ाओ मत, द्वंद्व बिल्कुल स्वाभाविक है। उदास मत हो जाओ। यह द्वंद्व बिल्कुल ही जैसा मन का स्वभाव है; होगा। इससे कुछ थक जाने की, इससे कुछ बेचैन हो जाने की जरूरत नहीं है, इसे समझ लो। समझ काफी है।
नुजूम बुझते रहें तीरगी उमड़ती रहे
मगर यकीने-सहर है जिन्हें, उदास नहीं
तारे बुझते रहें, अंधेरा बढ़ता रहे, लेकिन जिन्हें सुबह का भरोसा है, उदास नहीं हैं।
नुजूम बुझते रहें तीरगी उमड़ती रहे
मगर यकीने-सहर है जिन्हें, उदास नहीं
उफुक धड़क तो रहा है, सुझाई दे कि न दे
क्षितिज लाल होने लगा, सुर्ख होने लगा--सुझाई दे कि न दे।
शुफुक उबल तो रही है, दिखाई दे कि न दे
लाली उमड़ तो रही है, सुबह करीब आती ही है--दिखाई दे कि न दे।
सुना है दो कदम आगे महक रहे हैं चमन
सुना है--अभी तुमने सुना है। अभी मैंने कहा है, अभी तुमने देखा नहीं। स्वाभाविक है, संदेह उठेगा। सुनी बात, समझी बात तो नहीं हो सकती। सुनी बात, जानी बात तो नहीं हो सकती। कान, आंख तो नहीं है।
सुना है दो कदम आगे महक रहे हैं चमन
वसंत आया है, फूल खिले हैं, बगीचे लहरा गए हैं--दो कदम आगे। दो के आगे
एक का वसंत मौजूद है।
सुना है दो कदम आगे महक रहे हैं चमन
इसीलिए तो हवाओं में है लतीफ चुभन
जब तुम बगीचे के करीब पहुंचने लगते हो तो हवाएं ठंडी होने लगती हैं।
एक मनमोहक गंध नासापुटों को छूने लगती है। शीतलता शरीर का स्पर्श करने लगती है। हवा का गुणधर्म बदल जाता है।
मेरे पास अगर तुम्हें हवा का गुणधर्म बदलता मालूम पड़ता हो, बस काफी है। मैं भगवान हूं या नहीं, इसकी फिक्र छोड़ो; करना क्या है? दो कौड़ी की बात है। इससे तुम्हें लेना-देना क्या? इतना काफी है, अगर मेरे पास तुम्हें किसी हवा की थोड़ी सी भी गंध मिल जाती हो, जिससे भरोसा आता हो कि बगीचे पास हो सकते हैं।
सुना है दो कदम आगे महक रहे हैं चमन
इसीलिए तो हवाओं में है लतीफ चुभन
इसीलिए तो अंधेरे में पड़ रही है शिकन
अगर मेरे पास तुम्हें सूरज का दर्शन न हो, न हो; अगर अंधेरे में पड़ती
एक प्रकाश की रेखा का भी पता चलता हो तो काफी है। तुम्हारे भरोसे के लिए पर्याप्त।
तुम्हें कोई सारी नदी को थोड़े ही सेतु बनाना है! तुम्हें कोई सारी पृथ्वी को थोड़े ही चमड़े से ढंक देना है! अपने पैर को ढंकने लायक चमड़ा मिल जाए, जूता बन जाए, काफी है। तुम्हें मेरे भगवान होने से क्या लेना-देना? इसीलिए तो अंधेरे में पड़ रही है शिकन
अगर अंधेरे में जरा सी प्रकाश की सिलवट भी दिखाई पड़ती हो, काफी है; इतने से काम हो जाएगा। तुम उसी को पकड़ लो। तुम इसकी चिंता ही छोड़ो कि मुझसे पूरी पृथ्वी ढंक सकेगी? मैं भगवान हूं या नहीं, मैं सूरज हूं या नहीं हूं, क्या करोगे? अगर जरा सा टिमटिमाता दीया भी तुम्हारे हाथ में पकड़ जाता हो, काफी है। तुम्हारी रात कट जाएगी। तुम्हारी सुबह करीब आ जाएगी।
सुना है दो कदम आगे महक रहे हैं चमन
इतना ही अगर तुम्हें मेरे पास सुनाई पड़ जाए--इतना ही सुनाई पड़ जाए कि बगीचे हैं; और उनकी महक तुम्हें आने लगे। इतना ही तुम्हें समझ में आ जाए कि प्रकाश है, जरा सी झलक आ जाए; तो फिर कोई फिक्र नहीं।
नुजूम बुझते रहें तीरगी उमड़ती रहे
मगर यकीने-सहर है जिन्हें, उदास नहीं
फिर क्या चिंता? तारे बुझते रहें, रात बढ़ती रहे।

वस्तुतः जैसे ही रात और गहरी अंधेरी होती है, वैसे ही सुबह करीब आने लगती है। जैसे-जैसे सुबह करीब आती है, रात और गहराने लगती है, अंधेरी होने लगती है।
तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी जैसे-जैसे, वैसे-वैसे तुम्हारी अश्रद्धा भी बढ़ेगी। इसे अगर तुम न समझे तो तुम अकारण बड़े कष्ट में पड़ जाओगे। तुम बड़े रोओगे, जार-जार होओगे। छाती पीटोगे भीतर कि यह क्या हो रहा है? मैं तो श्रद्धा बढ़ाना चाहता हूं, अश्रद्धा भी बढ़ रही है--बढ़ेगी ही। श्रद्धा के साथ अश्रद्धा बढ़ती है।
जैसे पहाड़ ऊपर उठता है तो नीचे की खाई बड़ी होती चली जाती है। वृक्ष को आकाश की तरफ जाना हो तो जड़ें पाताल की तरफ जाने लगती हैं। दोनों तरफ एक साथ गति होती है। मन द्वंद्व है।
तुम्हें लेकिन निर्द्वंद्व की थोड़ी सी झलक मेरे पास मिल जाए, काफी है, तुम फिक्र छोड़ो; भगवान होने न होने से क्या लेना-देना? तुम व्यर्थ की बातों में मत उलझो। जिनको कोई और काम नहीं, उन्हें यह काम करने दो।
अभी तुम पहचान भी कैसे पाओगे? जब तक तुमने भगवान को भीतर नहीं देखा, तुम बाहर कैसे देख पाओगे? तुम्हारी मजबूरी मेरी समझ में आती है। जब तक तुमने स्वयं को नहीं जाना, तुम मुझे कैसे जान पाओगे? तुम्हारे अंधेपन के प्रति मुझे पूरी-पूरी करुणा है, लेकिन व्यर्थ की उलझनें न बनाओ, वैसे ही जिंदगी बड़ी उलझी हुई है। व्यर्थ के तर्क-जालों में मत पड़ो। इतना ही काफी है कि तुम्हें मेरे पास से भविष्य की थोड़ी सी झलक मिल जाए--इतना ही काफी है।
मैं कहता हूं, इतना भी काफी है कि तुम्हें अपने पर संदेह आ जाए। मुझ पर श्रद्धा न भी आई तो चलेगा; तुम्हें अपने पर संदेह आ जाए, इतना ही काफी है, इतने से काम हो जाएगा।
कोई तलवार की जरूरत नहीं है। जहां सुई से काम चल जाए, वहां तलवार का करोगे भी क्या? मैं सुई ही सही, छोड़ो तलवार, लेकिन इतने से काम हो जाने वाला है। और जब काम हो जाएगा तब तलवार भी दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी।
मुझे पता है, तुम मुझे तभी समझ पाओगे, जब तुमने स्वयं को समझ लिया होगा। मैं तुम्हारा स्वयं होना हूं।
भगवान का और कोई अर्थ नहीं होता; भगवान का कुल इतना ही अर्थ होता हैः जिसने उसे जान लिया, जो सबके भीतर है। जिसने यह जान लिया कि मैं नहीं हूं, वही है। जो मिट गया, वही भगवान है। जो है, वह भगवान नहीं है।
मैं एक अनुपस्थिति हूं, एक शून्य! उस शून्य से अगर तुम थोड़ा सा राग बना लो--श्रद्धा--तो उस शून्य के पार देखने की क्षमता तुम्हें आ जाएगी। वह शून्य तुम्हारे लिए खिड़की बन सकता है।
आम चूसने की फिक्र करो, गुठलियां क्यों गिनते हो? कहीं ऐसा न हो कि ऋतु निकल जाए, तुम गुठलियां गिनते बैठे रहो, फिर पीछे बहुत पछताओगे। कहीं ऐसा न हो कि मेहमान जा चुके, तब तुम्हारी समझ में आए; तब पीछे बहुत पछताओगे। लेकिन मन की हालत ही यही है कि वह पीछे पछताता है, रोता है। मौजूद को खोता है। जा चुका, उसके लिए रोता है। जो है, उसे देखने में असमर्थ; जो नहीं हो जाता है, उसकी याद में--उसकी याद में बड़े मजार बनाता है, चिराग जलाता है। तुम्हारे सब मंदिर तुम्हारे मन की इस मुर्दा आदत के सबूत हैं। तुम्हारे काबा, तुम्हारे शिवालय, तुम्हारे मरे हुए मन की आदत के सबूत हैं। ऐसी भूल में न पड़ो। ऐसी भूल तुम पहले भी कर चुके हो। जरूरी नहीं कि यह भूल तुम पहली दफा कर रहे हो। यह संसार बड़ा लंबा चल रहा है। तुम बहुत पुराने यात्री हो। इस रास्ते पर तुम नए नहीं हो। अनेक ऐसे वक्त आए, जब तुम बुद्धों के पास से गुजरे हो, लेकिन यही सवाल!
गलत सवाल मत पूछो। इससे क्या लेना कि बुद्ध भगवान हैं या नहीं? बुद्ध
से भी लोग यही पूछते हैं, महावीर से भी यही पूछते हैं, क्राइस्ट से भी यही पूछते हैं। तुम यह पूछो मत। इससे होगा क्या? इससे पूछने से सार क्या? और कौन तुम्हें प्रमाण दे सकता है? स्वयं भगवान भी तुम्हारे सामने खड़ा हो तो भी यह संदेह तो रहेगा ही कि पता नहीं! प्रमाण क्या देगा? भगवान भी प्रमाण क्या देगा?

शायद इसीलिए तो तुम्हारे सामने खड़ा होने से डरता है, छिपा-छिपा रहता है। कितने घूंघट डाल रखे हैं उसने? सीधा सामने नहीं आता; क्योंकि सामने आया कि तुम यही पूछोगे, आप भगवान हैं, इसका प्रमाण क्या? कैसे मानें? जरूरत ही क्या है? मानने का कोई सवाल नहीं है। तुम्हारे भीतर एक कांटा
है संदेह का, उसे देखो। इसे निकालने के लिए जहां भी तुम्हारी श्रद्धा को आश्रय-स्थल मिल जाए, शरण मिल जाए, उसका उपयोग कर लो।

दूसरा प्रश्नः आपके कल के प्रवचन ने मुझे बहुत गहराई तक छू लिया। यह वचनः कि मछलियां भी आटे में छिपे कांटे को समझ गई हैं, पर मनुष्य नहीं समझा, मुझे झकझोर गया। उसने सोचने को मजबूर किया कि मैं एक व्यर्थ जीवन जी रहा हूं और कोल्हू के बैल की भांति चक्कर लगा रहा हूं। इस एहसास के लिए मेरे प्रणाम लें और आशीष दें कि मैं होशपूर्वक जी सकूं।

एक-एक बूंद जुड़कर सागर बन जाता है। एक-एक ज्योति जुड़कर महासूर्यों का जन्म होता है। ऐसी ही छोटी-छोटी समझ, छोटी-छोटी अंतर्दृष्टि को इकट्ठी करते जाओ, राशिभूत इकट्ठी करते जाओ। यही तुम्हारे भीतर परम प्रकाश की शुरुआत है।
कोई महान विस्फोट के लिए प्रतीक्षा मत करो, छोटी-छोटी चिनगारियों को इकट्ठा कर लो। जिंदगी छोटी-छोटी बातों से बनी है। जिंदगी बहुत बड़ी बातों का नाम नहीं है। बड़ी बातों की आकांक्षा भी अहंकार की आकांक्षा है। लोग प्रतीक्षा करते हैं, कुछ बड़ा घटे; वहीं चूक जाते हैं।
शुभ हुआ।
अगर होश से मुझे सुनोगे तो धीरे-धीरे ऐसी अंतर्दृष्टि रोज-रोज इकट्ठी होने लगेगी, सघन होने लगेगी। ऐसे ही कोई समाधि की तरफ गतिमान होता है।
यह जो मैं तुमसे कह रहा हूं, यह तुम्हारे मनोरंजन के लिए नहीं है। यह
जो मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम्हारे बुद्धि के संग्रह के लिए नहीं है। यह जो मैं तुमसे कह रहा हूं, तुम बड़े ज्ञानी हो जाओ, पंडित हो जाओ, इसके लिए नहीं है। तुम रूपांतरित हो सको!
लेकिन उतनी बात मेरे कहने से ही नहीं होगी, तुम्हारे समझने से भी होगी। मेरा कहना आधा है। एक हाथ मैं बढ़ाता हूं, एक हाथ तुम भी बढ़ाओ तो मिलन हो जाए। मैं कहे चला जाऊं और तुम्हारे भीतर कुछ भी अंतर्दृष्टि न जगे तो तुम्हारा हाथ तो बढ़ता नहीं, मेरा हाथ बढ़ा रहेगा; उससे कुछ मेल नहीं होने वाला है। तुम भी उठो और थोड़े जगो। और ऐसा ही थोड़ी-थोड़ी करवटें, ऐसा ही थोड़ी- थोड़ी आंख का खुलना, ऐसा ही थोड़ी-थोड़ी झलक का आना मार्ग बन जाता है।
शुभ हुआ। अगर इतना भी ख्याल में आ जाए कि मैं जो जीवन जीता रहा हूं अब तक, वह व्यर्थ है, तो बड़ी क्रांति घट गई।
और है क्या जानने को? यही जानना है कि जो मैं जी रहा हूं, वह व्यर्थ है। जैसे ही तुम्हें यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि तुम जो जी रहे हो, वह व्यर्थ है, वैसे ही तुम्हारे पैर ठिठक जाएंगे। यह यात्रा बंद हुई, क्योंकि व्यर्थ को कोई जानकर तो कर नहीं सकता। व्यर्थ भी होता है इसी मान्यता में कि सार्थक है। गलत भी चलता है इसीलिए कि ठीक दिखाई पड़ता है। मालूम तो होता है कि ठीक है।
किसी आदमी ने गलत को गलत जानकर कभी नहीं किया। व्यर्थ को व्यर्थ जानकर कोई कभी भटका नहीं। जैसे ही तुम्हें पता चल जाए कि यह रास्ता तो कहीं ले जाता नहीं, फिर भी तुम चलते रहोगे? तुम तत्क्षण ठहर जाओगे। तुम कहोगे, अब चाहे ठीक रास्ता न भी पता हो, तो इतना तो पता हो गया कि यह गलत है, इस पर न चलें। कम से कम बैठकर विश्राम ही कर लें। जब ठीक मिलेगा तब चल लेंगे; लेकिन गलत पर तो और न चलें। क्योंकि जितने गलत पर चलते जाएंगे, उतना ही पीछे लौटना पड़ेगा।
तुम्हारे जीवन में एक ठिठकने की घटना घट जाए, आधी क्रांति हो गई।
और समझना इसकोः जिसको समझ में आ गया, गलत क्या है, ज्यादा देर न लगेगी उसे समझने में कि ठीक क्या है! गलत को गलत जानने में भी ठीक की झलक तो आ गई।
गलत को गलत पहचानने में सार्थक का मापदंड कहीं तुम्हारे भीतर सक्रिय हो

गया। अंधेरे को जिसने अंधेरा जान लिया, उसे प्रकाश से थोड़ी न थोड़ी संगति बैठ गई, एक झलक मिल गई। एक किरण मिली हो भला, पर मिली। बिना एक किरण मिले अंधेरा अंधेरा मालूम न पड़ेगा।
शुभ हुआ कि लगा, "मैं एक व्यर्थ जीवन जी रहा हूं; कोल्हू के बैल की भांति चक्कर लगा रहा हूं।"
यही है दशा। वर्तुल में घूमते हैं हम; वहीं-वहीं आ जाते हैं, फिर-फिर वहीं-वहीं आ जाते हैं। कोल्हू के बैल के जैसी ही हमारी दशा है। कोल्हू का बैल चलता तो दिनभर है, पहुंचता कहीं भी नहीं।
तुम भी सुबह से शाम तक चलते हो, पहुंचते कहां हो? हाथ में कभी कुछ लगता है? मंजिल कहीं पास आती मालूम पड़ती है? जन्म के वक्त तुम जहां थे, अभी भी वहीं हो, या कहीं आगे बढ़े? कैसा मजा चल रहा है! कैसा तिलिस्म है! कैसा जादू है! कैसा भ्रम है कि दौड़ रहे, दौड़ रहे--पहुंचते कहीं नहीं।
बच्चों की किताब है, एलिस इन वंडरलैंड, एलिस परियों के देश में। एलिस
जब परियों के देश में पहुंची तो थक गई; बड़ी थक गई इस जमीन से परियों के देश तक आते-आते। भूख भी लगी है, थक भी गई है, प्यास भी लगी है, और उसने पास ही एक बड़े वृक्ष की घनी छाया में परियों की रानी को खड़े देखा। मिष्ठानों के थाल उसके चारों तरफ लगे हैं, फलों के थाल सजे हैं। और जैसे ही एलिस की नजर पड़ी परियों की रानी के ऊपर, परियों की रानी ने इशारा किया कि आ। पास ही मालूम पड़ता है वृक्ष, वह दौड़ी।
वह दौड़ती रही... दौड़ती रही... दौड़ती रही, फिर ठिठककर खड़ी हो गई। बड़ी हैरानी मालूम पड़ी, वृक्ष और उसके बीच का फासला कम नहीं होता; उतना ही है। सुबह से दौड़ती है, दोपहर आ गई, सूरज सिर पर आ गया, छाया सिकुड़कर बड़ी छोटी हो गई, भूख और भी बढ़ गई इस दौड़ने से, घटी न; और फासला उतना का उतना है!
वह फिर चिल्लाकर पूछती है कि यह मामला क्या है? मैं पागल हो गई हूं या किसी पागल मुल्क में आ गई हूं? यह क्या हो रहा है? ये कैसे नियम हैं? ज्यादा दूर नहीं है रानी, क्योंकि उसकी आवाज उस तक पहुंच जाती है। और रानी कहती है, घबड़ा मत, तू जरा ठीक से नहीं दौड़ रही है। जरा तेजी से दौड़; इतनी ही जरूरत है।
वह तेज दौड़ती है, बहुत तेज दौड़ती है, पसीने से लथपथ होकर गिर पड़ती है। सांझ होने के करीब आ गई, सूरज उतरने लगा है; देखती है, फासला उतना का उतना है। थरथरा जाती है, घबड़ा जाती है कि क्या हो रहा है! जैसे एक दुख-स्वप्न देखा हो। वह चिल्लाकर पूछती है, यह मुल्क कैसा है? क्या यहां चलने से रास्ते पार नहीं होते?
वह रानी हंसती है; वह कहती है, जहां से तू आती है, उस पृथ्वी पर भी नियम यही है। वहां भी चलने से कोई रास्ते पार नहीं होते। यहां भी नहीं पार होते, वहां भी पार नहीं होते। चलने से कभी कोई रास्ते पार हुए पागल?
यह कहानी तो बच्चों की है, लेकिन बूढ़ों के समझने योग्य है। जिस देश में तुम रह रहे हो, यह परियों का देश है। यह झूठा है, जादू से भरा है। कोई तिलिस्म है, कोई अंधापन है। तुम दौड़े चले जाते हो--तुम्हें कभी कुछ मिला? तुम कभी पहुंचे? भूख बढ़ती जाती है, महत्वाकांक्षा बढ़ती जाती है, भिक्षा का पात्र ब.ड़ा होता जाता है, भरता कुछ भी नहीं है। दौड़ते-दौड़ते दोपहर आ जाती है, जवानी आ जाती है, फिर सांझ भी होने लगती है, बुढ़ापा आ जाता है; फिर हाथ-पैर थक जाते हैं, फिर तुम गिर जाते हो जमीन पर--कब्र बन गई। पहुंचे कहीं? कोल्हू के बैल जैसा चलना है।
अगर यह दिखाई पड़ जाए तो तुम ठिठक जाओगे। तुम कहोगे, बहुत दौड़ लिए, अब दौड़ेंगे न। अब बैठकर सोच लें--उसी को हम ध्यान कहते हैं--कि अब बैठकर फिर से पुनर्निरीक्षण कर लें; अब पूरे जीवन का फिर से मनन कर लें; अब पूरे जीवन पर फिर से दृष्टिपात कर लें, फिर से निरीक्षण कर लें कि जो अब तक किया, इसमें कुछ सार है? अगर यह सब असार की तरह खो गया है, रेत पर बनाए गए घरों की तरह गिर गया, पानी पर खींची गई लकीरों की तरह मिट गया--उसी दिन खोज शुरू हो जाती है उसकी, जो शाश्वत हैः एस धम्मो सनंतनो।
उस शाश्वत की तरफ यात्रा शुरू होती है, जब जीवन की क्षणभंगुरता और व्यर्थता दिखाई पड़ती है।

शुभ हुआ, घबड़ाना मत; क्योंकि इस घड़ी में घबड़ाहट पकड़ेगी। जब सारा जीवन व्यर्थ मालूम पड़ता है, सब सोच-समझ विक्षिप्तता मालूम होती है, किया-धरा सब मिट्टी हो गया होता है, इतना श्रम किया, इतने भवन बनाए, सब गिर गए होते हैं, तो अचानक एक घबड़ाहट पकड़ती है।
उस घबड़ाहट में बहुत से लोग और तेजी से दौड़ने लगते हैं, यह सोचकर कि शायद हम ठीक से दौड़ नहीं रहे हैं। दूसरे तो पहुंच रहे हैं--कोई सिकंदर हो गया, कोई नेपोलियन हो गया--दूसरे तो पहुंच रहे हैं, एक मैं ही नहीं पहुंच पा रहा हूं, जरूर दौड़ की कुछ कमी है।
तो कुछ तो घबड़ाकर और तेजी से दौड़ने लगते हैं। ऐसी गलती मत करना! क्योंकि तेज दौड़ने से कोई... दौड़ने से कोई संबंध ही नहीं है पहुंचने का। धीमे दौड़ो कि तेज दौड़ो, दौड़ने से कुछ लेना-देना नहीं है पहुंचने का। पहुंच तुम नहीं सकते, क्योंकि पहुंचने की जगह भीतर है। दौड़कर तुम कैसे भीतर पहुंच सकते हो? भीतर तो कोई रुककर पहुंचता है, दौड़कर कैसे पहुंचेगा? सोचकर तुम थोड़े ही भीतर पहुंच सकते हो! सोचना यानी मन का दौड़ना। सोच रुक जाता है तो तुम भीतर पहुंचोगे। सोच का रुक जाना यानी ध्यान। महत्वाकांक्षाओं से तुम कैसे पहुंचोगे? निर्वासना से कोई पहुंचता है। सार की बात इतनी है कि ठहरकर कोई पहुंचता है; तेज दौड़ने का कोई संबंध नहीं है। तेज दा.ैडकर तुम जल्दी थक जाओगे। तेज दौड़कर कब्र जल्दी करीब आ जाएगी। तेज दौड़कर तुम हजार तरह के रोग इकट्ठे कर लोगे, पहुंचोगे नहीं। घबड़ाना मत; जब अचानक ऐसी समझ आती है कि सब व्यर्थ है, एक झंझावात घेर लेता है, एक आंधी पकड़ लेती है, घबड़ाहट होती है--सब व्यर्थ! अब तक का किया- धरा सब व्यर्थ। अहंकार डांवाडोल हो जाता है। नाव जैसे डूबने लगी! इस नाव को डूब ही जाने देना है। इस नाव के न डूबने के कारण ही तुम्हारा जीवन व्यर्थ हुआ जा रहा है।
इसलिए इसको बचाने में मत लग जाना। और बचाने में लगने की आकांक्षा बिल्कुल स्वाभाविक है। इस स्वाभाविक आकांक्षा से ऊपर उठना होगा। घबड़ाना मत; अंधेरा घेर लेगा, आंधी घेर लेगी, लेकिन तुम बैठ रह जाना।
शब के पहलू में कहीं फूट रही है पौ भी
कभी दुनिया में अंधेरे न जहांगीर हुए
अंधेरा कभी दुनिया में जीत नहीं पाया है। कभी अंधेरा जहांगीर नहीं हुआ है कि सारी दुनिया का मालिक हो गया हो। अंधेरे के भीतर ही सुबह छिपी है और फूटने के करीब है--फूट रही है। अंधेरा सुबह का गर्भ है। अंधेरी रात सुबह की मां है।
शब के पहलू में कहीं फूट रही है पौ भी
घबड़ाओ मत; यह जो अंधेरा तुम्हें घेर लेगा व्यर्थता के बोध में, इसी के भीतर छिपी कहीं सुबह तैयार हो रही है। ताजी सुबह आने के करीब है।
कभी दुनिया में अंधेरे न जहांगीर हुए
अंधेरा आता है, जाता है; घबड़ाना मत। और बड़ा अंधेरा घेर लेता है, जब जीवन की व्यर्थता मालूम होती है। इस घड़ी में सदगुरु की जरूरत है, जो तुम्हें कहे, घबड़ाओ मत; सुबह करीब है। जो तुम्हें कहे--
कभी दुनिया में अंधेरे न जहांगीर हुए
क्योंकि बहुत लोग इस घड़ी में और भी पागलपन से दौड़ने लगते हैं, सोचकर
कि शायद दौड़ने में कमी रह गई है; सोचकर कि शायद तर्क करने में कमी रह गई है, और तर्क करने लगते हैं; सोचकर कि यह कैसे हो सकता है कि मैं और सदा से व्यर्थ? और भी अपनी सुरक्षा में लग जाते हैं। और भी अपने चारों तरफ तर्क-जाल खड़ा कर लेते हैं। और कहते हैं, नहीं, यही ठीक है।
बहुत लोगों को मैं जानता हूं, जो मेरे पास आने से डरते हैं। क्योंकि उन्हें भी दिखाई तो पड़ता है, कहीं से खबर तो आती लगती है कि जैसा चल रहे हैं, वह व्यर्थ है। लेकिन मानने की हिम्मत नहीं; कमजोर हैं, कायर हैं। और कायर मानता नहीं कि कायर है। तो वह दूर रहने के कारण जुटाता है। वह कहता है, वहां कुछ भी नहीं है, जाने से सार क्या? ऐसा करके अपने का भुलावा देता है, ताकि इस मान्यता में जी सके कि मैंने जो किया है, व्यर्थ ही नहीं है, सार्थक है।

अहंकार विपरीत है व्यर्थता के बोध के, क्योंकि व्यर्थता अगर जीवन में
है तो अहंकार गया, गिरा। अहंकार के लिए सहारा चाहिए कि हम जो कर रहे हैं, बड़ा सार्थक है। अहंकार को न केवल यह सहारा चाहिए कि हम जो कर रहे हैं, सार्थक है; यह भी सहारा चाहिए कि वह परम अर्थों में सार्थक है; आत्यंतिक अर्थों में सार्थक है।
एक आदमी धन कमाता है, इकट्ठा करता है धन, कभी न कभी उसे दिखाई पड़ता है
कि यह तो सब व्यर्थ हो गया। ये ठीकरे मैंने इकट्ठे कर लिए, इनका कोई मूल्य नहीं है। तो घबड़ाकर दान करने लगता है, पुण्य करने लगता है। जिन ठीकरों से यहां कुछ न मिला, अब सोचता है, परलोक में कुछ मिल जाए; मगर ठीकरे वही हैं। अब तुम थोड़ा सोचो। जो यहीं व्यर्थ सिद्ध हुए, वे वहां कैसे सार्थक हो जाएंगे? जो यहां तक सार्थक सिद्ध न हुए, वे परलोक में कैसे सार्थक हो जाएंगे? संसार में भी जिनके द्वारा धोखा हुआ, अब तुम परमात्मा में भी उन्हीं के द्वारा धोखा खाना चाहते हो?
ध्यान रखना, घबड़ा मत जाना। जिस दिन समझ में आता है, सब व्यर्थ है, उस दिन जिंदगी एक दुख-स्वप्न की भांति टूट जाती है--जैसे अचानक वीणा के तार टूट गए; एक झनझनाहट रह जाती है, संगीत खो जाता है। धीरे-धीरे झनझनाहट भी खो जाती है। तुम बिल्कुल शून्य में थिर रह जाते हो। शून्य घबड़ाता है। कुछ करने का मन होता है--कुछ भी कर लो।
हाय ख्वाबों की खियाबां साजियां
आंख क्या खोली, चमन मुरझा गए
तुमने अब तक जो भी बगीचे देखे, फूल देखे, सब सपनों के थे। और तुमने जो क्यारियां लगाने की कल्पनाएं और योजनाएं बनाई थीं, वे सब स्वप्न में थीं। हाय ख्वाबों की खियाबां साजियां
वे जो क्यारियां लगाने की तुमने बड़ी योजनाएं बना रखी थीं, महल बनाए थे, बगीचे लगाए थे, वे सब स्वप्न में थे।
आंख क्या खोली, चमन मुरझा गए
आंख खुलते ही पता चलता है कि चमन खोने लगे; बगीचे कहीं दूर अंधेरे में डूबने लगे, कहीं दूर हटे जाते हैं।
किस तजल्ली का दिया हमको फरेब
और ऐसा लगता था कि हम जो कर रहे हैं, उससे प्रकाश के करीब आ रहे हैं।
किस तजल्ली का दिया हमको फरेब
किस धुंधलके हमको पहुंचा गए
सपनों ने कैसा धोखा दिया! आशा बंधाई प्रकाशों की और अंधेरों में पहुंचा गए।
किस तजल्ली का दिया हमको फरेब
किस धुंधलके हमको पहुंचा गए
घबड़ाहट पकड़ेगी, हाथ-पैर कंप जाएंगे, प्राण कंप जाएंगे।
पश्चिम में, डेनमार्क में एक बहुत प्रसिद्ध विचारक हुआः सोरेन कीर्कगार्ड। उसने कहा है, इसी घड़ी में मनुष्य-जीवन की सबसे बड़ी चिंता पैदा होती है।
और चिंताएं तो सब साधारण हैं। पत्नी बीमार है, चिंता होती है। बच्चा बीमार है, चिंता होती है। दुकान डूबी जाती है, दिवाला निकलता है, चिंता होती है। खुद का बुढ़ापा आता है, चिंता होती है।
माना, चिंताएं हैं हजार, लेकिन सोरेन कीर्कगार्ड ने कहा है, वे चिंताएं हैं, चिंता नहीं; असली चिंता तो तब पकड़ती है, जब तुम्हें अचानक लगता है कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गई।
हाय ख्वाबों की खियाबां साजियां
आंख क्या खोली, चमन मुरझा गए
किस तजल्ली का दिया हमको फरेब
किस धुंधलके हमको पहुंचा गए
तब चिंता पकड़ती है। यही चिंता या तो पागलपन बन सकती है या बुद्धत्व का जन्म। यह चिंता चौराहा है। इस चिंता से एक राह तो पागलपन की तरफ जाती है; कि तुम इतने घबड़ा जाओ... कि तुम इतने घबड़ा जाओ कि सम्हल न सको; कि तुम टूट

जाओ, बिखर जाओ; कि अहंकार के गिरने के कारण, टूटने के कारण, तुम फिर अपने को वापस खड़ा न कर पाओ। बहुत लोग पागल हो जाते हैं।
इसलिए सदगुरु का--जिसको बुद्ध ने कल्याण मित्र कहा है--बड़ा अर्थ है। ऐसी घड़ी में, जब तुम गिरने के करीब आ जाओगे, किसी का हाथ चाहिए जो तुम्हें सम्हाल ले। किसी का हाथ चाहिए, जो तुमसे कहे, घबड़ाओ मत; जो था, वह व्यर्थ हुआ, इससे यह मत सोचो कि सभी व्यर्थ है। सार्थक मौजूद है। और यह शुभ घड़ी है, मंगल घड़ी है। शुभाशीष समझो, कृतज्ञ होओ कि परमात्मा ने आधी मंजिल तो पूरी कर दी; दिखा दिया व्यर्थ क्या है! अब एक पर्दा और उठने को है, और सार्थक भी प्रगट हो जाएगा।
अन्यथा आदमी पागल हो जाता है। बहुत से धार्मिक व्यक्ति पागल हो जाते हैं। बिना कल्याण मित्र के रास्ते पर चलना खतरनाक हो सकता है। तुम पता नहीं सम्हल पाओ, न सम्हल पाओ।
और ध्यान रखना, यह शुरुआत है, यह रास्ते का प्रारंभ है--जीवन की व्यर्थता का दिखाई पड़ जाना। यह यात्रा कुछ ऐसी है कि शुरू तो होती है, अंत कभी नहीं होती फिर। जीवन की व्यर्थता दिखाई पड़ती है, इसके बाद उस जीवन का अनुभव होना शुरू होता है, जो परम सार्थक है।
लेकिन वह जीवन विस्तीर्ण है, विशाल है; उसका कोई ओर-छोर नहीं। तुम उसमें डूबोगे, खो जाओगे, अंत न पाओगे। तुम उसमें मिटोगे, शून्य हो जाओगे। तुम उसे जानोगे तो, लेकिन पूरा-पूरा कभी न जान पाओगे।
जैसे पक्षी क्या पंखों से आकाश की परिभाषा कर सकेगा? उड़ तो लेता है, जान तो लेता है, लेकिन पंख क्या परिभाषा कर सकेंगे आकाश की?
और यह यात्रा अंतहीन है; इसीलिए तो हम परमात्मा को अनंत कहते हैं। संसार की सीमा है, क्योंकि एक न एक दिन व्यर्थ का अनुभव समझ में आ जाता है, उसी दिन सीमा आ जाती है। परमात्मा की कोई सीमा नहीं है; उसकी सार्थकता का कोई अंत नहीं हैः सार्थकता--और सार्थकता--और सार्थकता--शिखर पर शिखर खुलते चले जाते हैं।
कितनी दिलचस्पो-पुरसुकूं है ये
रहगुजर, जिसकी इंतिहा ही नहीं
अपूर्व है यह रास्ता। अदभुत है यह मार्ग। अनंत आनंदों से भरा है यह मार्ग। बड़ी शांति से, शांति के मेघों से ढंका है यह मार्ग।
कितनी दिलचस्पो-पुरसुकूं है ये
कितना मनमोहक! कितना आह्लादकारी और कितना शांतिदायी!
रहगुजर, जिसकी इंतिहा ही नहीं
ऐसी राह, जो शुरू तो होती है, लेकिन समाप्त नहीं।
शुभ हुआ। एक छोटी सी अंतर्दृष्टि हाथ लगी। इस चिराग को पकड़ो, इस ज्योति को सम्हालो। यही ज्योति कल सूरज बन जाएगी।

तीसरा प्रश्नः क्या अभिव्यक्ति मात्र मर्यादा नहीं है?

निश्चित ही, अभिव्यक्ति मात्र मर्यादा है। जो प्रगट होता है, उसकी सीमा है; प्रगट होते ही सीमित हो जाता है। जो अप्रगट रह जाता है, वही असीम है।
सृष्टि की सीमा है, स्रष्टा की नहीं।
कविता की सीमा है, कवि की नहीं।
चित्र की सीमा है, फ्रेम है, चित्रकार की नहीं।
क्योंकि जो अप्रगट है, वह बहुत है उससे, जो प्रगट हुआ। वह अनंत गुना है उससे, जो प्रगट हुआ।
मैंने तुमसे जो कहा, उसकी सीमा है। जो मैं तुमसे कभी न कह पाऊंगा, उसकी कोई सीमा नहीं है।
बुद्ध एक जंगल से गुजरते हैं; पतझड़ के दिन हैं, सूखे पत्तों से सारा वन-प्रांत भरा है, हवाएं उन सूखे पत्तों को जगह-जगह उड़ाए फिरती हैं; बड़ा शोरगुल है। आनंद ने पूछा, भगवान! एक बात पूछनी है। आज निजी एकांत मिल गया

है, कोई और नहीं है। मैं पूछता हूं, कि आप जो जानते हैं, वह सभी मुझसे कह दिया है?
बुद्ध ने अपनी मुट्ठी में सूखे पत्ते भर लिए और कहा, जो मैंने तुमसे कहा है, वह इस मुट्ठी में बंद पत्तों की भांति है; और जो नहीं कहा, वह इन सारे सूखे पत्तों की भांति है, जिनसे पूरी पृथ्वी भरी है।
स्वभावतः, जो कहा जाता है, उसकी सीमा हो जाती है। भाषा सीमा बनाती है। भाषा परिभाषा बनती है। जो नहीं कहा जाता, जो अभिव्यक्त नहीं होता, जो अभिव्यक्ति के पार रह जाता है, वही असीम है।
मौन असीम है, मुखरता की सीमा है।
इसलिए तो बोलता हूं तुमसे; लेकिन बोलता इसीलिए हूं, ताकि तुम अबोल में
जा सको। कहता हूं तुमसे इतना, सिर्फ इसीलिए कि तुम मौन की तलाश कर सको।
मेरे बोलने से अगर तुम्हें मौन का थोड़ा सा स्वाद आ जाए, मेरे बोलने से अगर तुम्हें शून्य का थोड़ा सा रस लग जाए, बस प्रयोजन पूरा हो गया।
यह अंगुली उठाता हूं आकाश की तरफ, यह अंगुली आकाश नहीं है; यह अंगुली
तो बड़ी सीमित है। अंगुली को तो भूल जाना, आकाश की यात्रा पर निकल जाना। लेकिन फिर भी जब अंगुली उठाता हूं तो अंगुली आकाश की तरफ इशारा तो करती है। मैं चुप भी हो जाऊं, चुप बैठ जाऊं, तो तुम समझ न पाओगे। तब अंगुली भी आकाश की तरफ न उठेगी। बोल-बोलकर भी तुम नहीं समझ पाते हो; कह-कहकर भी तुम्हें पहुंच नहीं पाता; बिना बोले तो तुम्हारे लिए बात बिल्कुल ही अबूझ हो जाएगी, बेबूझ हो जाएगी।
बोलता हूं, ताकि तुम्हारी समझ से थोड़ा सेतु बन सके। लेकिन सेतु बनते
ही सारी चेष्टा यही है कि तुम्हें समझ के पार ले जाना है। तुम पर निर्भर है। मैं जो कह रहा हूं, जो शब्द मैं तुमसे कह रहा हूं, अगर तुम समझ लो तो वे शब्द इशारे बन जाएंगे; अगर तुम न समझो तो वे शब्द कब्रों की तरह हो जाएंगे; उन में कोई सत्य मर गया। अगर तुम समझ लो तो उन्हीं शब्दों से अंकुर निकल आएंगे शून्य के, मौन के तुम्हारे भीतर। अगर न समझो तो सूचनाएं इकट्ठी हो जाएंगी।
इन्हीं अलफाज में मदफन हैं शाहों के जमीर
इन्हीं अलफाज में मलफूफ है मजहब का खुदा
जिन्होंने जाना, जो अपने मालिक बने, उनके वक्तव्य इन्हीं शब्दों में दफन हैं।
इन्हीं अलफाज में मदफन हैं शाहों के जमीर
इन्हीं अलफाज में मलफूफ है मजहब का खुदा
और इन्हीं शब्दों में धर्मों का परमात्मा बंद है।
तुम पर निर्भर है। अगर तुम इन शब्दों का सार समझ लो--सार शून्य है, सार मौन है। बड़ी विपरीत बात है; शब्द से निःशब्द को कहना पड़ता है। बड़ी विरोधाभासी बात है, बड़ी उलटी बात है। चालीस साल बुद्ध बोलते हैं, सिर्फ इसलिए कि लोग चुप हो जाएं।
मैं रोज बोले चला जाता हूं, ताकि लोग चुप हो जाएं। बात बड़े पागलपन की लगती है कि अगर लोगों को यही समझाना है कि चुप हो जाओ, तो आप चुप बैठें। बात सीधी होगी, लोग समझ जाएंगे; चुप होना है। लेकिन मामला कुछ ऐसा है कि सफेद लकीर अगर तुम्हें दिखानी हो तो काले तख्ते पर खींचनी पड़ती है। सफेद दीवाल पर भी खींची जा सकती है; खिंच तो जाएगी, दिखाई न पड़ेगी। स्कूल का मास्टर भी जानता है कि काला तख्ता रखना पड़ता है। सफेद दीवाल भी काम दे सकती है, लिख सकता है, लेकिन लिखा हुआ पढ़ेगा कौन? लिख तो जाएगा, पढ़ना संभव न होगा। सफेद लकीर को दिखाने के लिए काली पृष्ठभूमि चाहिए।
मौन समझाने के लिए शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। शब्द काली पृष्ठभूमि है। तो जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वह शब्दों के बीच में है। जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वह लकीरों के अंतराल में है। तुमसे जो मैं कह रहा हूं, उसमें नहीं है, जो मैं कहना चाहता हूं--आसपास है, शब्दों के आसपास है। शब्द को सीधा मत पकड़ लेना, वहीं भूल हो जाएगी। शब्द को झपटकर मत पकड़ लेना; अन्यथा कब्र बन जाएगी। शब्द को आहिस्ते से, बड़े आहिस्ते से, बड़े

परोक्ष ढंग से सुनना। शब्द की धुन को पकड़ना, शब्द के गीत को पकड़ना, शब्द के भीतर पड़े संगीत को पकड़ना, शब्द तो खोल की तरह छोड़ देना।
शब्द के भीतर शून्य को डालकर भेजा है। शब्द तो कैप्सूल है, औषधि भीतर है। तुम पर सब निर्भर करेगा। ऐसा मत करना कि कैप्सूल की खोल तो चबा जाओ; और भीतर जो है, उसे फेंक दो। ऐसा ही होता रहा है।
इक हर्फ इक तवील हिकायत से कम नहीं
एक छोटे से अक्षर में सब कुछ समाया हो सकता है, एक लंबी बात कही गई हो सकती है।
इक हर्फ इक तवील हिकायत से कम नहीं
इक बूंद इक बहर की वुसअत से कम नहीं
एक छोटी सी बूंद में पूरा सागर छिपा है, सागर की पूरी विशालता छिपी है। अगर तुमने बूंद को जान लिया तो सागर को जान लोगे। बूंद को जानने के बाद सागर में जानने को बचता क्या है? जो बूंद में बड़े छोटे रूप में है, वही सागर में बड़े रूप में है।
निकले खुलूस दिल से अगर वक्ते-नीमशब
इक आह इक सदी की इबादत से कम नहीं
एक आह इक सदी की इबादत से कम नहीं
ठीक, सम्यक ढंग से, एकांत में, मौन में, आधी अंधेरी रात में--
निकले खुलूस दिल से अगर वक्ते-नीमशब
जब सारा जगत सोया हो, किसी को पता भी न चले।
क्योंकि आदमी बड़ी प्रदर्शनवादी है। प्रार्थना भी करता है, दूसरों को दिखाने के लिए करता है। मंदिर में देखो, लोग प्रार्थना करते हैं, जैसे भीड़ बढ़ती है, प्रार्थना का शोर बढ़ने लगता है। कोई नहीं रह जाता, सन्नाटा हो जाता है। लोग देख लेते हैं, अब कोई नहीं, सार क्या?
प्रार्थना परमात्मा से नहीं हो रही, भीड़ सुन ले। लोगों को पता चल जाए
कि प्रार्थना करने वाला कितना धार्मिक है!
आधी रात में! सूफी फकीर कहते रहे हैं, जब किसी को पता न चले। चुपचाप, एक
आह भी--
इक आह इक सदी की इबादत से कम नहीं
सौ साल की गई प्रार्थनाएं एक छोटी सी आह में समा सकती हैं।
अमरीका से एक सत्य का खोजी भारत आया था। वह एक सूफी फकीर की तलाश कर रहा था। कहीं से सुराग मिल गया था। लेकिन सूफियों का पता लगाना जरा कठिन होता है। ढाका के आसपास कहीं फकीर है, ऐसा सुनकर वह ढाका पहुंचा। टैक्सी की, टैक्सी वाले से पूछा कि इस फकीर को जानते हो?
उसने कहा, कुछ-कुछ।
पहुंचा दोगे उसके पास?
उस टैक्सी वाले ने कहा, बहुत कुछ तुम पर निर्भर करता है, मुझ पर नहीं।
यह थोड़ा चौंका। बात बड़ी सूफियाना मालूम पड़ी। पहले तो कहा कुछ-कुछ, फिर कहा कि तुम पर निर्भर करता है, मेरी तरफ से पूरी कोशिश करूंगा।
टैक्सी में बैठा। यह आदमी कुछ अजीब सा मालूम पड़ा। रास्ते में इसने पूछा कि क्या तुम भी किसी सूफी के शिष्य हो? तुम्हारे पास हवा में थोड़ी इबादत है। उस टैक्सी वाले ने वहीं गाड़ी रोक दी और परमात्मा से प्रार्थना की, कि क्षमा कर!
यह आदमी बहुत हैरान हुआ कि मामला क्या है! उसने पूछा कि बात क्या है? मैंने कुछ चोट पहुंचा दी? क्योंकि वह रोने लगा।
उसने कहा कि प्रार्थना का पता चल जाए दूसरे को तो प्रार्थना खराब हो गई। मेरे गुरु ने यही सिखाया हैः भीतर गुनगुनाना। तुम्हें कैसे पता चल गया?
लेकिन जब कोई प्रार्थना भीतर गुनगुनाता है तो उसके आसपास की हवा बदल जाती है। जब कोई परमात्मा की याद से भीतर भरा होता है तो उसके आसपास की हवा में गंध होती है--एक सुवास, एक ताजगी, जैसे कमल खिल रहे हों भीतर! दिखाई तो नहीं पड़ते दूसरे को, लेकिन अगर दूसरे ने भी प्रार्थना की हो, थोड़ी भी

प्रार्थना की रस्म भी अदा की हो, बहुत गहरे न भी गया हो, उपचार भी पूरा किया हो, थोड़ा बाहर-बाहर से भी पहचान बनाई हो, तो भी उसकी समझ में आ जाएगा।
उसने कहा--ड्राइवर ने--कि भूल हो गई, आपको पता चल गया; जरूर कहीं न कहीं छिपा हुआ अहंकार होगा।
निकले खुलूस दिल से अगर वक्ते-नीमशब
आधी रात अगर हृदय से भरी हुई आह--
इक आह इक सदी की इबादत से कम नहीं
जो मैं तुमसे कह रहा हूं, छोटे-छोटे शब्द हैं। जो मैं तुमसे कह रहा हूं, उसकी सीमा है। लेकिन जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं, उसकी कोई सीमा नहीं। तुम मेरे शब्दों को बहुत जोर से मत पकड़ लेना, अन्यथा उनके प्राण निकल जाएंगे। तुम उन्हें अपने भीतर तो उतरने देना, मुट्ठी मत बांधना, क्योंकि शब्द मर जाते हैं बड़े जल्दी। शब्द बड़े कोमल हैं, बड़े नाजुक हैं, बहुत हिफाजत करना। तुम्हारे विचारों की भीड़ में मेरे शब्द न खो जाएं, अन्यथा तुम्हारे विचार, इसके पहले कि वे तुम तक पहुंचें, उन्हें नष्ट कर देंगे। तुम्हारे तर्क से मेरे विचार न टकरा जाएं, अन्यथा तुम्हारा तर्क उन्हें खंड-खंड कर देगा।
तुम जरा मुझे जगह दो। तुम जरा हटकर खड़े हो जाओ। तुम जरा तुमसे ही हटकर खड़े हो जाओ, ताकि मैं सीधा-सीधा, चुपचाप तुम्हारे भीतर आ जाऊं।
माना ये शब्द बड़े छोटे हैं--जैसे छोटे-छोटे बीज! और अगर तुमने इनको भूमि दे दी, थोड़ी नम, आंसुओं से गीली जगह दे दी, तो मुझे पक्का पता है, तुम एक बड़ी उपजाऊ जमीन अपने भीतर लिए चल रहे हो। बड़ी संभावनाएं हैं। परमात्मा तुम्हारी संभावना है, अब और बड़ी संभावना क्या होगी?
ठीक है, अभिव्यक्ति की तो मर्यादा है--होगी ही। शब्दों का उपयोग करना पड़ेगा, धारणाओं का उपयोग करना पड़ेगा, भाषा का उपयोग करना पड़ेगा। ये सब मर्यादाएं लग जाएंगी। अब समझदारी इसमें है सुनने वाले की, कि मर्यादाओं पर ध्यान न दे; वह जो अमर्याद मर्यादा के भीतर से बहने की चेष्टा कर रहा है, उस पर ध्यान दे।
नदी को देखना, किनारों को मत देखना। किनारों में तो सीमाएं हैं, नदी असीम की तरफ बही जा रही है। नदी हमेशा सागर की तरफ उन्मुख है; किनारों में बंधी कहां है? किनारों के बीच है माना, किनारों में बंधी कहां है?
जो मैं कह रहा हूं--शब्द किनारे हैं। उनके सहारे के बिना नदी सागर तक
भी न पहुंच पाएगी, उनका सहारा चाहिए। तुम तक न पहुंचा सकूंगा अन्यथा। इसलिए बोले चला जाता हूं। आज चूकोगे, कल चूकोगे, परसों चूकोगे, कभी तो ऐसी घड़ी आएगी, कभी तो ऐसा होगा कि तुम बीच में न खड़े होओगे और मैं पहुंच जाऊंगा। एक भी बीज पहुंच जाए, बस पर्याप्त है। एक बार तुम्हारे भीतर अंकुरण होने लगे। बीज तुम्हारे भीतर टूटे, सब हो जाएगा।
इक सफीना है तेरी यादगार
इक समंदर है मेरी तनहाई
जब तक तुम्हारे भीतर परमात्मा की याद नहीं उठी है, तब तक तुम एक सागर हो--रिक्तता के, एकाकीपन के, अकेले।
इक सफीना है तेरी यादगार
इक समंदर है मेरी तनहाई
और जैसे ही तुम्हारे भीतर परमात्मा की याद जगनी शुरू होगी--एक बीज भी टूटा, स्मरण आया--नाव बनी। उसकी याद है नाव। उसकी याद फिर पार ले जाती है। सत्संग का कुल इतना ही अर्थ हैः आओ जिक्रे-यार करें। उसकी याद करें, बहाने खोजें, उसकी बात करें। कुछ निमित्त बनाएं, उसकी स्मृति को जगाएं। धम्मपद एक बहाना है, गीता एक बहाना है, कुरान एक बहाना है, किसी बहाने सही! आओ जिक्रे-यार करें। उस प्यारे की याद करें।
पर लोग बड़े पागल हैं। अगर मैं महावीर के वचनों पर बोलता हूं, जैन सुनने आ जाते हैं। जिक्रे-यार से कुछ लेना-देना नहीं। अगर बुद्ध-वचनों पर बोलता हूं, वे नदारद हो जाते हैं। अगर क्राइस्ट पर बोलता हूं, क्रिश्चियन उत्सुक हो जाता है। नानक पर बोला, कुछ सरदार दिखाई पड़ने लगे थे; फिर नहीं दिखाई पड़ते--बस, एक हमारे सरदार गुरुदयाल को छोड़कर!

नहीं, जिक्रे-यार से कुछ मतलब नहीं है। अन्यथा ये तो बहाने हैं। उसी
की याद कर रहे हैं बहुत-बहुत बहानों से। पता नहीं, कौन सा बहाना ठीक पड़ जाए। किस मौके पर घटना घट जाए, बीज उतर जाए।

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं कि कामना बहिर्गामी है, फिर क्या है जो अंतर्यात्रा पर ले जाता है?

संसार में हार जाना; वासना में हार जाना; तृष्णा की असफलता परमात्मा में ले जाती है, अंतर्गमन में ले जाती है। जीवन जैसा तुम जी रहे हो, व्यर्थ है, इसकी प्रगाढ़ चोट जगा जाती है। फिर बाहर के जीवन में उत्सुकता नहीं रह जाती।
इसे थोड़ा समझो। क्योंकि मैं देखता हूं, बहुत से लोग अंतर्जीवन में उत्सुक होते हैं, लेकिन चोट नहीं पड़ी है। बाहर का जीवन असफल नहीं हुआ है। और भीतर के जीवन में उत्सुक हो रहे हैं। तो उनका भीतर का जीवन भी बाहर के जीवन का ही एक हिस्सा होता है; भीतर का जीवन नहीं होता। उनका मंदिर भी दुकान का ही एक कोना होता है। उनकी प्रार्थना भी उनके बही-खातों का प्रारंभ होती है--श्री गणेशाय नमः। बही-खाते का प्रारंभ भगवान से। ठीक से चले दुकान तो परमात्मा का स्मरण कर लेते हैं। परमात्मा का स्मरण करके नर्क की व्यवस्था करते हैं।
जहां तक मुझे पता है, इन दुकानदारों ने नर्क के दरवाजे पर भी लिख दिया होगा--श्री गणेशाय नमः। उनकी यात्रा... तुमने चोरों को देखा? चोर भी जाते हैं चोरी को तो भगवान का नाम लेकर जाते हैं। मेरे पास आ जाते हैं ऐसे कुछ लोग। वे कहते हैं, आशीर्वाद दे दें, इच्छा पूरी हो जाए।
तुम इच्छा तो बताओ!
अब आप तो सब जानते ही हैं।
किसी को मुकदमा जीतना है... तुम्हारी इच्छाएं व्यर्थ नहीं हो गई हैं
जब तक, तब तक अंतर्यात्रा शुरू न होगी। तुम मंदिर में फूल चढ़ा आओगे, वह भी तरकीब होगी संसार में सफल हो जाने की। भगवान को भी राजी कर लो, कौन जाने कोई बीच में अड़ंगा डाल दे!
गणेश का नाम इसीलिए शुरू में लिखा जाता है। कहते हैं, गणेश उपद्रवी थे। जो प्रारंभिक कथा है, वह बड़ी मजेदार है। गणेश उपद्रवी थे और दूसरों के कार्यों में विघ्न-बाधा डालते थे। इसलिए उनका नाम लोग शुरू में ही लेने लगे कि उनको पहले ही राजी कर लो। फिर तो धीरे-धीरे लोग भूल ही गए कि असली बात क्या थी! असली बात सिर्फ यही थी कि उनके उपद्रव के डर से लोग कुछ भी काम करते--शादी-विवाह करते, दुकान खोलते, मकान बनाते--उनका नाम पहले ले लेते कि तुम राजी रहना। हम तुम्हारे ही हैं, हमारी तरफ ख्याल रखना। धीरे-धीरे बात बदल गई। अब तो गणेश जो हैं, वे मंगल के देवता हो गए हैं। धीरे-धीरे लोग भूल ही गए कि उनकी याद करते थे, उनके विघ्न-उपद्रव की प्रवृत्ति के कारण। शब्द ने एक करवट ले ली, नया अर्थ ले लिया।
लोग मंदिर में फूल चढ़ा आते हैं, मजार पर हो आते हैं फकीर की, ताबीज बांध लेते हैं धर्म का, लेकिन संसार के लिए।
पूछा है, "आप कहते हैं, कामना बहिर्गामी है।"
समस्त कामनाएं बहिर्गामी हैं; कामना मात्र बहिर्गामी है। भीतर ले जाने वाली कोई भी कामना नहीं है। कामना ले ही जाती बाहर है।
तो स्वभावतः प्रश्न उठता है, फिर हम भीतर कैसे जाएं? क्योंकि जब कोई कामना ही भीतर जाने की न होगी तो हम भीतर जाने का प्रयास क्यों करेंगे! बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है, "फिर क्या है जो अंतर्यात्रा पर ले जाता है?"
वासना की असफलता, कामना की विफलता, संसार की पराजय। भीतर जाने की कोई वासना नहीं है, जब सभी वासनाएं हार जाती हैं, तुम अचानक भीतर सरकने लगते हो। जब सभी वासनाएं हार जाती हैं, तुम बाहर नहीं जाते; बाहर जाना व्यर्थ हो गया। और तब अचानक तुम भीतर खींचे जाते हो।

इस फर्क को समझ लेनाः भीतर कोई नहीं जाता। तुम बाहर जाते हो, बाहर जा सकते हो, भीतर खींचे जाते हो; इसलिए भीतर पहुंचना प्रसादरूप है। बाहर भर मत जाओ, भीतर खींच लिए जाओगे। तुम बाहर पकड़े हो जोर से किनारों को, इसलिए भीतर की धार तुम्हें खींच नहीं पाती। तुमने नाव को किनारे की खूंटियों से बांध दिया है, अन्यथा नदी समर्थ है इसको ले जाने में बड़ी दूर की यात्रा पर। वासना नहीं है भीतर जाने की कोई। मोक्ष की कामना कोई भी नहीं होती। जब कोई कामना नहीं होती, तब उस दशा का नाम मोक्ष है।
मेरी शिकस्त मेरी फतह का रसूल बनी
मेरी शिकस्त ही तो इदराक का उसूल बनी
मेरी शिकस्त! मेरी हार, मेरी पराजय, मेरा संसार में व्यर्थ हो जाना, मेरी गहन निष्फलता--
मेरी शिकस्त मेरी फतह का रसूल बनी
वही मेरी विजय का पैगंबर बन गई--अंतर्विजय का।
मेरी शिकस्त ही तो इदराक का उसूल बनी
और बाहर का हार जाना ही तो भीतर के ज्ञान का आधार बना, सार-सूत्र बना, उसूल बना।
इसीलिए मैं तुमसे कहता हूं, बाहर से भागने की जल्दी मत करना; हार ही जाओ। एक बार हार ही लो, एक बार बुरी तरह पराजित हो जाओ, एक बार इस तरह हारो कि आशा जरा भी न बचे। आशा का जरा सा भी सूत्र बच जाए तो तुम भीतर न जा सकोगे। तुम एक खूंटे को बाहर पकड़े ही रहोगे। तुम कहोगे, अभी शायद कुछ और हो सकता है। शायद कल... आज नहीं हुआ, कल... परसों; थोड़ा और प्रयास कर लें, थोड़ी और चेष्टा कर लें; जल्दी क्या है?
जब सभी आशा अस्त हो जाती है--अब यह जरा समझना होगा--जब सभी आशा अस्त हो जाती है तो तुम्हारे मन में ख्याल उठेगा, तब तो बड़ी निराशा हो जाएगी। बारीक बात है! जब सभी आशा अस्त हो जाती है तो तुम निराश नहीं होते, क्योंकि निराशा तो आशा के कारण ही होती है। जितनी तुम आशा बांधते हो, जितनी तुम आस बांधते हो, उतने ही निराश होते हो। जब-जब आशा हारती है, तब-तब निराश होते हो।
जब आशा इस भांति हार जाती है कि जीतना संभव ही नहीं है, होता ही नहीं।
जब तुम इस सत्य को समझ लेते हो कि आशा हारेगी ही; तुम्हारी आशा हारती है, ऐसा नहीं; आशा का हारना स्वभाव है; आशा धोखा है; तब तुम निराश नहीं होते। न आशा बचती है, न निराशा बचती है। आशा के साथ ही निराशा भी चली जाती है। सफलता के साथ ही विफलता भी चली जाती है। अचानक तुम खाली हो जाते हो आशा- निराशा दोनों से। रात-दिन दोनों गए।
अगर निराशा बची रही तो इसका मतलब है, अभी आशा मौजूद है कहीं। अभी भी तुम निराश हो, इसका मतलब, अभी भी तुम सोच रहे हो, कोई उपाय हो सकता था। अभी भी तुम सोच रहे हो, आशा सफल हो सकती थी। यह मेरी आशा हार गई, इसका यह अर्थ नहीं कि आशा हारती है। यह आशा हार गई, इसका यह अर्थ नहीं कि सभी आशाएं हारती हैं। मैं थोड़े और उपाय करूं, ठीक से करूं, थोड़ी और व्यवस्था से करूं, तो जीत जाऊंगा। इसलिए निराश हो। अगर आशा मात्र का स्वभाव विफलता है तो निराशा का कोई कारण न रहा।
बुद्ध को बहुत लोगों ने निराशावादी समझा है। क्योंकि वे कहते हैं, संसार दुख है, जीवन दुख है, जन्म दुख है, मरण दुख है, सब दुख है। लोग सोचते हैं, बुद्ध निराशावादी हैं।
नहीं, बुद्ध तो केवल सत्य कह रहे हैं; जैसा है, वैसा कह रहे हैं; निराशावादी नहीं। बुद्ध के चेहरे पर निराशा की छाया भी नहीं है। आशा की रुग्ण चमक भी नहीं है, निराशा की अंधेरी छाया भी नहीं है। बुद्ध बिल्कुल शांत हैं; न आशा है, न निराशा है। इस घड़ी में ही अंतर्यात्रा शुरू होती है। मेरी शिकस्त मेरी फतह का रसूल बनी
मेरी शिकस्त ही तो इदराक का उसूल बनी

आखिरी प्रश्नः कल आपने कहा कि आदतों को ही ग्रंथि कहा गया है, जो जीवन
को जकड़ लेती हैं; क्या आदत और आदत में भेद नहीं? वैसे तो चलने से लेकर

लिखने तक आदतें ही हैं, फिर क्या सभी आदतें जड़ता लाती हैं? और क्या संभव है कि सबसे मुक्त हुआ जाए?

आदत जड़ता नहीं लाती, आदत तुम्हारी मालिक हो जाए तो जड़ता लाती है। आदत
को छोड़ना नहीं है, आदत के ऊपर उठना है, अतिक्रमण करना है। तुम जो करो, उसमें मालकियत तुम्हारी रहे। आदत का उपयोग करो, खूब करो, करना ही पड़ेगा। आदत उपकरण है, साधन है।
तो पहली तो बात यह ख्याल में ले लेना, बोलोगे तो आदत है, उठोगे तो आदत है, चलोगे तो आदत है, लेकिन यह ध्यान रहे कि मालिक कौन है? अगर चलने की आदत के कारण चल रहे हो और तुम्हें चलना नहीं है। तुम कहते हो, हे भगवान! बचा, चलना नहीं है, लेकिन आदत है तो चले; क्या करें? धूम्रपान करना नहीं है, लेकिन कर रहे हैं, क्या करें? आदत है! बचाओ।
आदत मालिक हो--बस, तो जड़ता लाती है। तुम आदत के मालिक होओ, फिर कोई हर्जा नहीं; फिर कोई बात ही नहीं। फिर तुम्हें धूम्रपान करना हो तो मजे से करो। न करना हो, न करो। इतना ही ध्यान रहे कि तुम मालिक हो।
मैं नहीं कहता कि धूम्रपान छोड़ो; बात ही फिजूल है। धूम्रपान से कुछ नहीं मिलता, छोड़कर क्या मिलेगा? अगर छोड़कर कुछ मिल सकता है तो पीकर भी कुछ मिल ही रहा होगा। तब तो धूम्रपान बड़ा मूल्यवान है। कुछ लोगों ने तो ऐसा बना रखा है कि धूम्रपान छोड़ दोगे तो भगवान मिल जाएगा। काश, इतना सस्ता होता मामला! जो नहीं कर रहे हैं धूम्रपान, उनको क्या मिल गया है?
कोई आदत महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण बन जाती है, अगर मालिक हो जाए; खतरनाक हो जाती है। और मजा यह है कि अगर तुम अपनी आदत के मालिक हो तो बहुत सी आदतें अपने आप छूट जाएंगी। छोड़ना न पड़ेंगी। क्योंकि वे व्यर्थ हैं।
धूम्रपान पाप नहीं है, मूढ़तापूर्ण है। पाप मैं नहीं कहता। पाप क्या
है उसमें? एक आदमी धुएं को भीतर ले जाता है, बाहर लाता है, इसमें पाप है? थोड़ा सोचो भी तो! धुएं की माला फेर रहा है, इसमें पाप कहां हो सकता है? मूढ़ता समझ में आती है कि मूढ़ है। नाहक ही फेफड़ों को खराब कर रहा है। इतनी स्वच्छ हवाएं मौजूद हैं... ।
और जब तक मौजूद हैं, ले लो; जल्दी ही धुआं ही धुआं हो जाने वाला है। इतनी ताजी हवाएं मौजूद हैं, अगर फेफड़ों का ही ज्यादा अभ्यास करना है, प्राणायाम करो, स्वच्छ हवाओं को भीतर ले जाओ; सुवासित हवाओं को भीतर ले जाओ, उनकी माला जपो; रोग भीतर ले जा रहे हो! पाप कुछ भी नहीं है, मूढ़ता है। पाप कहना बहुत बड़ा शब्द हो गया। इतनी छोटी बात के लिए पाप नहीं कहना चाहिए।
और ऐसी छोटी-छोटी बात के लिए लोग नर्क में सड़ाए जाएं, यह भी जरा जंचता नहीं। पहले इन ने गलती की, अब भगवान कर रहा है। पहले ये धुएं में पड़े रहे, अब भगवान इनको धुएं में डाल रहा है, आग में उतार रहा है। यह कुछ जरा जरूरत से ज्यादा मामला हो गया। बड़ी निर्दोष सी मूढ़तापूर्ण बात है। पकड़ उसकी इसमें है कि तुम उससे छूट नहीं पाते, मालिक नहीं हो।
और तब मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम बुरी आदतों के मालिक नहीं हो तो
वे तो बुरी हैं ही; अच्छी आदतों के भी अगर तुम मालिक नहीं हो तो वे भी बुरी हैं।
अगर ऐसा है कि तुम्हें रोज प्रार्थना करनी ही पड़ेगी; कि तलफ लगती है,
कि न की प्रार्थना, तो दिनभर ऐसा लगता है, कुछ चूक गए, कुछ खाली हो गए। बार-बार याद आती है कि करो। तो यह प्रार्थना भी धूम्रपान हो गई। यह आदत जरा बड़ी हो गई, तुम से बड़ी हो गई।
कोई आदत तुम से बड़ी न हो। मजे से प्रार्थना करो, लेकिन मालिक तुम ही रहो। किसी दिन न करनी हो तो ऐसा न हो कि आदत करवाए; कि करना पड़ेगी। बस, आदत तुम्हारी मालकियत न अपने हाथ में ले ले; फिर कोई चिंता नहीं। मजे की बात यह है कि जैसे ही तुम मालिक हुए, व्यर्थ आदतें अपने आप छूट जाएंगी। क्योंकि उनको करने का कोई अर्थ ही न रहा। वे तुम इसीलिए करते थे कि तुम मालिक न थे और आदत तुम्हें मजबूर करती थी कि करो और तुम्हें करनी पड़ती थी।

तलफ का मतलब क्या होता है? मजबूरी! एक बेतहाशा जोर उठता है भीतर कि पीओ सिगरेट! न पीओ तो मुसीबत, पीओ तो मुसीबत। पीओ तो पाप कर रहे हो, न पीओ तो यह बेचैनी पकड़ती है, सारा शरीर जकड़ता है। कुछ मन नहीं लगता, कुछ करने में मन नहीं लगता। एक झंझट खड़ी हो गई है।
झंझट धूम्रपान की नहीं है, न माला जपने की है, झंझट इसकी है कि तुम आदत
को मालिक बन जाने देते हो।
अगर आदतें ही तुम्हारी छाती पर मालिक हो जाएं, पत्थर की तरह छाती से लटक जाएं और तुम डूबते चले जाओ तो जड़ता आ जाती है, ग्रंथि बन जाती है। निर्ग्रंथ होने का अर्थ हैः कोई आदत नहीं।
कोई आदत नहीं होने का यह मतलब नहीं है कि तुम चलोगे कैसे फिर, बोलोगे कैसे फिर, भोजन कैसे करोगे, स्नान कैसे करोगे? कोई आदत न होने का मतलब यह है, किसी आदत की कोई मालकियत नहीं। जब जरूरत होती है, उपयोग कर लेते हैं; जब जरूरत नहीं होती तो उठाकर अलग रख देते हैं।
मैं किसी आदत को न तो बुरा कहता हूं, न भला। आदत न कोई बुरी होती है, न भली। आदत बुरी हो जाती है, मालिक हो जाए तो। आदत भली हो जाती है, अगर तुम मालिक हो जाओ।
और यह भी तरकीब समझ लेना, यह बड़ी तरकीब गहरी है। लोग बुरी चीजों को भी अच्छे नाम दे देते हैं। अब बहुत सी आदतों को तुमने अपनी मालकियत सौंप दी है और उनको तुम अच्छी आदत कहते हो। अच्छी कहकर तुमने पीड़ा अलग कर ली; अब छूटने की कोई जरूरत न रही।
एक आदमी कहता है, हम रोज प्रार्थना करते हैं। जिस दिन नहीं करते हैं,
उस दिन बड़ी बेचैनी मालूम होती है। कोई न कहेगा इससे कि यह आदत बुरी है। हां, मैं कहूंगा कि यह आदत बुरी है, इसे छोड़ो। अन्यथा कोई न कहेगा; क्योंकि यह तो धार्मिक आदत, अच्छी आदत है। इसको थोड़े ही छोड़ना है! लोग कहेंगे कि यह तो बहुत ही अच्छा है कि प्रार्थना की तलफ लगती है। ये तो बड़े तुम्हारे सौभाग्य हैं।
मैं तुमसे कहता हूं, सिगरेट की तलफ लगे कि प्रार्थना की, बराबर है। तलफ का मतलब है, कोई चीज तुमसे बड़ी हो गई। कोई चीज तुम्हारे चैतन्य से बड़ी हो गई। किसी चीज ने तुम्हारी गर्दन को दबा लिया। अगर तुम्हें आज नहीं करनी है तो न नहीं कर सकते हो। अगर आज प्रार्थना नहीं करनी है तो भी करनी पड़ेगी, मजबूर हो, तो सिगरेट में और इसमें फर्क क्या रहा? कोई फर्क न रहा। और सिगरेट के खिलाफ तो और भी तरह के कारण हैं, इस प्रार्थना के खिलाफ तो कोई भी कारण नहीं है। डाक्टर कह नहीं सकते कि कैंसर होता है, टी.बी. होती है, फलां-ढिकां। प्रार्थना? इसमें न टी.बी. होती है, न कैंसर होता है। यह आदत तो बड़ी साफ-सुथरी है। और इसलिए और भी खतरनाक है।
ध्यान रखना, कोई आदत अच्छी नहीं, न बुरी। नाम देने की तरकीबें मत लगाओ। तुम बुरी चीजों को अच्छे नाम लगाकर चिपका देते हो; अच्छे लेबल लगा देते हो। फिर बड़ी उलझन होती है जीवन में।
मेरा हिसाब बहुत सीधा-सादा है। तुम मालिक तो अच्छा; फिर चाहे आदत शराब पीने की ही क्यों न हो, तुम मालिक, अच्छा। तुम निर्णायक हो। अगर तुम यही निर्णय करते हो कि जहर पीना है, जहर पीओ। तुम्हारी स्वतंत्रता है।
लेकिन बस, इतना ख्याल रखना कि बेईमानी न हो, यह तुम्हारी स्वतंत्रता हो। ऐसा न हो कि तुम हो तो मजबूर, और कहो कि नहीं, स्वतंत्रता से पीते हैं। और हो मजबूर, बिना पीए नहीं रहा जाता। धोखा मत देना, क्योंकि धोखा तुम अपने को देते हो, किसी और को नहीं।
और मैं तुमसे यह भी कहता हूं, अगर प्रार्थना और इबादत की आदत भी तुम्हारी मजबूरी बन गई हो तो बुरी। नाम बदलने से कुछ भी नहीं होता। पर नाम बदलने का काम चलता है।
भारतीय पार्लियामेंट में, हिमालय में पाई जाने वाली नील गाय को मारने
का सवाल था। वह गाय जैसी होती है और खेतों को नुकसान कर रही थी और संख्या उसकी बहुत बढ़ गई थी--उन्नीस सौ बावन के करीब।
तो अब गाय को कैसे मारना? नील गाय--उसका नाम गाय जैसा है; वह गाय है नहीं, गाय जैसी है। झंझट खड़ी हो जाएगी, मूढ़ों का उपद्रव मच जाएगा। साधु-

संन्यासी दिल्ली पर हमला कर देंगे कि गाय को मार रहे हो? यह तो महापाप हुआ जा रहा है। हजार ब्राह्मणों को मारने के बराबर पाप लगता है एक गाय को मारना। यह तो तूफान आ जाएगा।
तो राजनीतिज्ञों ने होशियारी की। पहले उन्होंने उसका नाम बदल दिया-- नील घा.ेडा। बात खतम! अब मजे से मारो। कोई न उठा--न कोई शंकराचार्य, न कोई साधु-संन्यासी--कोई दिल्ली की तरफ न गया। बात ही खतम हो गई। नील घोड़ा है, इसको मारने में क्या हर्ज है? लेकिन मर वही गाय रही है।
बादे-सरसर को अगर तुमने कहा मौजे-नसीम
अगर आंधी-अंधड़ को तुमने सुबह की ताजी हवा कहा, धूल-धवांस से भरे हुए, गुबार से भरे हुए अंधड़ को--
बादे-सरसर को अगर तुमने कहा मौजे-नसीम
इससे मौसम में कोई फर्क नहीं आएगा
क्या फर्क पड़ेगा? तुम आंधी को, अंधड़ को, धूल-धवांस से भरे हुए उपद्रव
को मलय-समीर कहो, मलयानिल से आती सुबह की ताजी हवा कहो।
इससे मौसम में कोई फर्क नहीं आएगा
नामों में बहुत मत उलझो। नाम बड़ा धोखा देते हैं। नामों के कारण हमने
कई तरह की तरकीबें लगा ली हैं। अच्छी आदत--कोई उसके खिलाफ नहीं; मैं हूं उसके खिलाफ। बुरी आदत--सब उसके खिलाफ हैं; मैं उसके खिलाफ नहीं हूं।
बुरी और अच्छी की मेरी परिभाषा सिर्फ इतनी है और सीधी साफ है; आदतों
से इसका कोई संबंध नहीं है, मालकियत से संबंध है। जो आदत तुम्हारी मालिक हो गई, जिसकी कैद तुम्हारे ऊपर ठहर गई, जो तुम्हारे हाथ में जंजीर बन गई, वह सोने की भी हो, हीरे-जवाहरात भी जड़े हों, तो भी बुरी। जिसके तुम मालिक हो, वह आदत भली।
तुम्हारी मालकियत मापदंड है। तुम्हारा स्वामित्व, तुम्हारी परम स्वतंत्रता एकमात्र कसौटी है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
सैतीसवां प्रवचन

उपशांत इंद्रियां और कुशल सारथी

यस्सिन्द्रियानि समथं गतानि अस्सा यथा सारथिना सुदंता।
पहीनमानस्स अनासवस्स देवापि तस्स पिहृयंति तादिनो।। 85।।

पठवीसमो नो विरुज्झति इंदरवीलूपमो तादि सुब्बतो।
रहदो" व अपेत-कद्दमो संसारा न भवंति तादिनो।। 86।।

संतं अस्स मनं होति संता वाचा न कम्म च।
सम्मदांं विमुत्तस्स उपसंतस्स तादिनो।। 87।।

संसार तो एक बाजार है; स्वयं को छोड़कर सभी कुछ वहां मिलता है। जो पाने योग्य है, उसे छोड़कर सभी कुछ वहां पाया जा सकता है। जिसे पाकर और पाने की सब चाह चली जाती है, बस उसी को तुम वहां न पा सकोगे। बहुत कुछ वहां मिलता है, सभी कुछ वहां मिलता है, लेकिन जो भी वहां मिलता है, उससे और पाने की चाह बढ़ती चली जाती है। जल कुछ ऐसा मिलता है कि प्यास घटती नहीं, जलन बुझती नहीं, तृप्ति आती नहीं; जैसे जल नहीं, प्यास की आग में संसार घी बनकर पड़ता चला जाता है।
और मनुष्य का मन ऐसे है, जैसे छोटा सा बच्चा बाजार में आया हो, मेले में आया हो, और हर चीज को खरीदने के लिए ठिठक जाता है; और हर चीज को खरीदने के लिए रोने लगता है, तड़फने लगता है, परेशान होने लगता है। और यह बच्चा सारी चीजें भी खरीद ले और सांझ होते-होते, दुकानें बंद होते-होते अपने घर बहुत सा खेल-खिलौना लेकर आ जाए तो भी खेल-खिलौने ही हैं; उनका कोई मूल्य नहीं है। उनसे आशा तो बंधती है, बड़ी आशा बंधती है, लेकिन आशा कभी पूरी नहीं होती। दो-चार दिन बाद बच्चा पाता है कि जिन खेल-खिलौनों के लिए इतना ठिठका, इतना रोया, इतना परेशान हुआ, उसने खुद ही उन्हें छोड़-छाड़कर कोनों में डाल दिया है। खुद ही उन्हें बाहर फेंक आया है।
लेकिन मन एक पुनरुक्ति है। बार-बार तुम वही करते हो, फिर भी जाग नहीं आती। और एक बच्चा होता तो ठीक है, तुम्हारे भीतर वासनाओं की बड़ी बचकानी भीड़ है। हर इंद्रिय की न मालूम कितनी वासनाएं हैं। हर इंद्रिय पर्त दर पर्त वासना ही वासना है। पूरे जन्म बीत जाते हैं, हाथ कुछ भी लगता नहीं। और इतनी समझ भी नहीं लगती कि जहां हम खोजते थे, वहां मिलने को ही कुछ भी न था। जिसे यह दिखाई पड़ने लगा, जो दुकानों की तरफ से उपेक्षा से गुजरने लगा, जिसके भीतर धीरे-धीरे अपने को खोजने की तलाश पैदा हुई, जिसे यह ख्याल आया कि जब अपने को ही नहीं पाया तो और कुछ पाकर करूंगा भी क्या? यह बोध जन्मा कि सब पाने के पहले अपने को पा लेना जरूरी है, तो बुनियाद बनेगी, तो आधार पड़ेगा। तो ही जीवन का भवन खड़ा हो सकता है। अपने को बिना पाए रेत पर बनाते हैं हम भवन को। अगर गिर-गिर जाए तो कसूर किसका है?
बुद्ध के आज के सूत्र इंद्रियों की दौड़, मन की व्यर्थ वासनाओं की अभिलाषा; और कैसे उन वासनाओं के कोई पार होता है, उस संबंध में हैं। जवानी, हुस्न, गमजे, अहद, पैमां, कहकहे, नगमे
रसीले होंठ, शर्मीली निगाहें, मरमरी बांहें
यहां हर चीज बिकती है, खरीददारो
बताओ क्या खरीदोगे?
भरे बाजू, गठीले जिस्म, चौड़े आहनी सीने
बिलखते पेट, रोती गैरतें, सहमी हुई आहें
यहां हर चीज बिकती है, खरीददारो
बताओ क्या खरीदोगे?
सभी कुछ बिक रहा है--सिर्फ एक तुम को छोड़कर।
सभी कुछ दुकानों में सजा है--सिर्फ एक तुम को छोड़कर।

सभी कुछ बाजार में उपलब्ध है--सिर्फ एक तुम हो कि बाजार में तुम उसे न
पा सकोगे। सिर्फ एक तुम हो कि तुम उसे बाहर कहीं भी न पा सकोगे। सिर्फ एक तुम हो, जो बाजार के बाहर हो। सिर्फ एक तुम हो, जो कमोडिटी नहीं; अन्यथा सब चीजें बाजार में हैं, अन्यथा सभी चीजें अर्थशास्त्र हैं। सिर्फ एक तुम हो, जो अर्थशास्त्र के हिस्से नहीं।
इसलिए मार्क्स ने--कम्यूनिजम के जन्मदाता ने--तुम्हें स्वीकारा ही नहीं; उसने कहा, आदमी के पास कोई आत्मा नहीं है। क्योंकि जो बाजार में न बिक सके, वह उसकी समझ के बाहर है। वस्तुएं समझ में आती हैं, आत्मा समझ में नहीं आती। क्योंकि जिसका मूल्य हो सके, उसकी ही समझ हो सकती है! आत्मा का क्या मूल्य है?
मार्क्स ने जीवन के सारे पहलुओं पर बड़ी ठीक-ठीक दृष्टि दी है, लेकिन सारी दृष्टि भ्रांत हो गई, क्योंकि बुनियाद गलत हो गई। सिर्फ एक बात को इनकार कर गया--आत्मा। आत्मा को उसे इनकार करना ही पड़ेगा। वह शुद्ध अर्थशास्त्री है, इकोनामिस्ट है। आत्मा को जगह नहीं है वहां।
अर्थ के पार है धर्म। बाजार के पार हो तुम। जहां वस्तुओं की दौड़ समाप्त होती है, वहीं अपनी खोज शुरू होती है।
और जब तक तुम वस्तुएं मांगते रहोगे--फिर चाहे वे वस्तुएं तुमने जाकर मंदिर में परमात्मा से ही क्यों न मांगी हों, तुम बाजार की ही मांग कर रहे हो। फिर वे वस्तुएं चाहे तुमने स्वर्ग में ही क्यों न मांगी हों, न मांगी हों इस पृथ्वी पर, इससे भेद नहीं पड़ता। बाजार कहीं के भी हों, जमीन के हों कि इंद्रपुरी के हों, इससे क्या भेद पड़ता है? बाजार बाजार है।
जब तक तुम्हारी समझ में एक बहुत बुनियादी ख्याल नहीं आ गया है कि जानने योग्य मैं हूं, पाने योग्य मैं हूं, खोजने योग्य मैं हूं; फिर शेष सब खोज लेंगे इसके बाद। अपना तो ठीक-ठीक पता हो जाए कि मैं कौन हूं? कहां से हूं? क्या हूं? मालिक का तो पता लगा लूं, फिर मालकियत भी खोज लेंगे। सम्राट की तो थोड़ी पहचान कर लें, फिर साम्राज्य भी खोज लेंगे।
और मजे की बात यह है कि जिसने स्वयं को पाया, वह इस पाने में ही सभी कुछ
पा लेता है, सभी खोज पूरी हो जाती है।
महावीर ने कहा हैः एक को पाने से सब पा लिया जाता है। एक को जानने से
सब जान लिया जाता है।
लेकिन इस एक से हम बचते रहते हैं। कारण है; कारण बड़ा उलझा हुआ है। कारण बड़ा दुरूह है, बेबूझ है, पहेली जैसा है। कारण यह है कि यह एक हमें मिला ही हुआ है, इसलिए हम इसे पाने की कोशिश नहीं करते। पाने की कोशिश तो स्वभावतः उसी के लिए होती है, जो हमें मिला हुआ नहीं है। आंख उसी को देखती है, जो हमारे पास नहीं है। दूर पर नजर जाती है, पास से चूक जाती है।
और तुम अपने इतने पास हो कि तुम्हारे और तुम्हारे बीच में कोई फासला
ही नहीं है। तुम तुम हो; मिले ही हुए हो, इसीलिए चूकते जा रहे हो। यह जो दुर्घटना घटी है कि मछली पूछती है, सागर कहां है; यह जो दुर्घटना घटी है कि आदमी अपनी खबर ही भूल जाता है, विस्मरण ही हो जाता है कि मैं भी हूं; वह इसीलिए घटी है कि तुम पहली तो बात, मिले ही हुए हो।
दूसरी बातः तुम मौजूद हो। तुम्हारा स्वभाव ही तुम हो। यह इतने निकट है, यह इतने करीब है कि देखने के लिए जगह चाहिए, फासला चाहिए। अगर आंख बहुत करीब आ जाए किसी चीज के तो देख नहीं पाती; थोड़ी दूरी चाहिए।
मुल्ला नसरुद्दीन एक गवाही के लिए अदालत में गया था। किसी ने गोली चलाकर किसी को मार दिया था। उससे न्यायाधीश ने पूछा कि तुम कितनी दूर थे? उसने कहा, यही कोई दो मील के करीब। न्यायाधीश ने कहा, दो मील! तुम्हें कितनी दूर से दिखाई पड़ता है? उसने कहा, ठीक-ठीक नहीं कह सकता, चांद-तारे मुझे दिखाई पड़ते हैं। हिसाब आप कर लो। चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं!
असल में दिखाई पड़ने के लिए दूरी चाहिए। जैसे-जैसे चीजें निकट आने लगती हैं, धुंधली होने लगती हैं। राह पर गुजरती स्त्री दिखाई पड़ती है, अपनी पत्नी दिखाई नहीं पड़ती। जो दूसरे के पास है, दिखाई पड़ता है, जो अपने पास है, नहीं दिखाई पड़ता। जिस मकान में तुम रहते हो, वह दिखाई नहीं पड़ता, पड़ोसी जिसमें रहता है, वह दिखाई पड़ता है--दूरी चाहिए।

अब यह बड़ा मुश्किल है; तुम से तुम्हारी दूरी कैसे हो? कोई उपाय नहीं कि तुमसे तुम्हारी दूरी हो जाए। इसलिए धीरे-धीरे हम उसको विस्मरण ही कर देते हैं, जो हम हैं। खोया नहीं है हमने स्वयं को, विस्मरण किया है।
इसलिए धर्म पाने की कला नहीं है, सिर्फ स्मरण की कला है, याद की कला है। खोया कभी भी नहीं है; विस्मरण हुआ है। सुध भूल गई है, सुरति खो गई है। तुम नहीं खो गए हो, सिर्फ याद खो गई है।
जो मिला ही है, इसे पाने के लिए क्या करना पड़ेगा?
जो मिला ही है, इसे पाने के लिए वस्तुतः कुछ करना नहीं है; जो नहीं मिला है, उसे पाने की दौड़ अगर थोड़ी देर को रुक जाए, बस काफी है। विधायक रूप से इसे पाने के लिए कुछ भी नहीं करना है, यह मिला ही हुआ है। सिर्फ तुम इसे भूलने के लिए इसकी तरफ पीठ किए जो-जो कर रहे हो, वह रुक जाए, तो तुम सन्मुख हो जाओ। विमुख होना रुक जाए तो तुम सन्मुख हो जाओ।
इसलिए सारे बुद्ध पुरुष इंद्रियों की, वासनाओं की दौड़ से तुम्हें छूटने को कहते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि इंद्रियों की वासनाओं में कुछ खराबी है; कुछ भी नहीं है वहां, सपना है; न कुछ खराबी है, न कुछ भलाई है; वहां कुछ है ही नहीं--ख्वाब है, कल्पना है।
लेकिन तुम्हें बड़ी गलत बातें समझाई गई हैं। तुम्हें यह समझाया गया है
कि इंद्रियों में कुछ खराबी है, इसलिए उनसे मुक्त हो जाओ। इंद्रियों में कुछ भी खराबी नहीं है, सिर्फ धोखा है, मृग-मरीचिका बस, ज्यादा से ज्यादा। दिखाई पड़ता है कि दूर सरोवर है, है नहीं। उस दिखाई पड़ने वाले सरोवर में कोई भी खराबी नहीं है, सिर्फ भ्रमजाल है। इसलिए जिन्होंने जाना, उन्होंने इसे माया कहा है।
माया का अर्थ होता हैः जो मालूम होती है और है नहीं। अब जो है ही नहीं, उसमें खराबी क्या होगी? खराबी होने के लिए तो होना जरूरी है।
इंद्रियों में कुछ खराबी नहीं है। अगर तुमने इंद्रियों में खराबी देखकर उन्हें छोड़ा तो तुम कभी छोड़ ही न पाओगे। क्योंकि तुम खराबी मानकर चले, इसका अर्थ है कि तुमने इंद्रियों के यथार्थ को स्वीकार कर लिया कि वे हैं। तुम अगर बाजार से डरकर भागे तो बाजार की याद तुम्हें सताती रहेगी; फिर पहाड़ तुम्हें बाजारों से मुक्त न कर पाएंगे। हिमालय की भी वैसी सामर्थ्य नहीं। तुम जहां भी जाओगे, बाजार तुम्हारे साथ ही रहेगा। और ध्यान रखना, कल्पना के बाजार और भी मधुमय मालूम होते हैं, और भी मधुर, और भी मदिर।
एक तो सभी बाजार कल्पना के हैं। बाहर के बाजार ही कल्पना के हैं। जब तुम आंख बंद करके उन कल्पना के बाजारों को देखते हो तो उनमें और हजार रंग जुड़ जाते हैं, हजार सुगंधें आ जाती हैं।
इसलिए तो एक मजे की घटना घटती है रोज, पर तुम पकड़ नहीं पाते, कि जो चीज तुम्हारे पास नहीं होती, बड़ी सुंदर मालूम होती है, हाथ में आते ही उतनी सुंदर नहीं रह जाती। जिस महल के लिए तुम वर्षों तड़फे थे, बन जाने पर अचानक तुम थके से खड़े रह जाते हो। अब क्या करना है? जिस कार के लिए तुम पागल होकर दौड़े थे, पोर्च में आकर खड़ी हो जाती है, तुम भी थके से खड़े रह जाते हो; अब क्या करना है? जो सौंदर्य मालूम पड़ा था, जो सुख की आशा बंधी थी, हाथ में आते ही खोने लगती है। मृग-मरीचिका दूर से ही दिखाई पड़ती है, पास आने पर मिट जाती है।
तो पहला सूत्र तो यह ख्याल रखो कि देखने के लिए दूरी जरूरी है; पास जो है, वह भूल जाता है।
दूसरा सूत्र याद रखो कि जैसे-जैसे चीजें पास आती हैं, वैसे ही पता चलता है, कौन सत्य है, कौन झूठ है! पास आने पर ही सचाई और झूठ का निर्णय होता है। जो झूठ है, वह पास आते-आते खोने लगता है, बिखरने लगता है। जो सच है, वह पास आते-आते बढ़ने लगता है।
इमर्सन ने कहा है कि महापुरुष वही है, जिसके पास आने पर वह और भी बड़ा होता चला जाए। दूर से तो हजारों महापुरुष मालूम होते हैं; पास आने की बात है। पास आने पर जो छोटा होने लगे, समझना कि महापुरुष होना मृग-मरीचिका थी। पास आने पर जो और बड़ा होने लगे, तुम जैसे-जैसे पास आओ, उसका शिखर इतना ऊंचा

उठने लगे कि तुम्हारी आंखें भी वहां तक न पहुंच पाएं; जब तुम उसके बिल्कुल निकट आकर खड़े हो जाओ तो वह तुम्हारी दृष्टि से बहुत दूर, अनंत आकाश में उठ जाए, तो ही जानना कि महापुरुष है।
पास आने पर ही सत्य का पता चलता है।
इंद्रियों में कुछ खराबी नहीं है; इंद्रियां सपने देखने के ढंग हैं। सारा मन ही स्वप्न देखने का यंत्र है; स्वप्न देखने की बड़ी कुशल व्यवस्था है। और इसे ऐसा नहीं है कि तुम नहीं जानते हो; तुम जानते हो, लेकिन जानना नहीं चाहते हो। तुम डरते हो कि कहीं यह बात गहरी होकर भीतर बैठ न जाए।
ऐ नासेहो! बेफायदा समझाते हो मुझको
मैं खूब समझता हूं मगर दिल से हूं नाचार
कोई समझाए भी तो तुम यही कहते होः समझता तो मैं हूं, व्यर्थ मेहनत मत करो मुझे समझाने की, मगर मैं मजबूर हूं, दिल से मजबूर हूं।
यह बात झूठ है। जो समझता है, वह बाहर हो जाता है।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, हम जानते हैं, क्रोध व्यर्थ है, फिर
भी हो जाता है। मैं उनसे कहता हूं, तब तुम जानो कि अभी तुमने जाना नहीं। क्योंकि ऐसा कभी होता ही नहीं। जो जान लिया जाए, वह जीवन बन जाता है। जो जानकर भी जीवन न बने, वह जाना ही नहीं गया। तुम वहां भी अपने को धोखा दे रहे हो। मन ने तुम्हें वहां भी भरमाया, भटकाया।
मैं खूब समझता हूं मगर दिल से हूं नाचार
ऐ नासेहो! बेफायदा समझाते हो मुझको
तुम यह भी समझ लेते हो कि तुम समझते हो; यह समझने से बचने की तरकीब हुई। तुम यह भी मान लेते हो कि जान लिया; यह जानने के बीच तुमने दीवाल खड़ी कर ली। यह सच है कि बहुत मौके आए थे जानने के, यह बात सच है; लेकिन उन मौकों को तुम चूकते गए हो। उन मौकों के कारण ही तुमको यह भ्रम होता है कि तुमने जान लिया, माना।
कितनी बार तुमने क्रोध किया, कितनी बार कामवासना से भरे, कितनी बार घृणा ने पकड़ा, कितनी बार हिंसा तुम्हारे हृदय में उठी, बहुत-बहुत मौके आए; वे जानने के मौके थे, तुम जान नहीं पाए। जान लेते तो फिर उनका आना बंद हो जाता। जाना नहीं, जागे नहीं कि क्रांति शुरू हुई। क्रांति फिर ठहरती नहीं।
ज्ञान को जीवन में बदलने के लिए कोई कृत्य नहीं करना पड़ता।
ज्ञान की परिभाषा यही हैः जो अपने आप कृत्य बन जाए। जो ज्ञान कृत्य न बने, जिसे बनाना पड़े, वह ज्ञान ही नहीं; वह किसी से उधार ले लिया होगा। वह तुम्हारी समझ नहीं, तुम्हारी दृष्टि नहीं, वह किसी और की दृष्टि होगी। बुद्ध का पहला सूत्र हैः
"सारथी द्वारा दान्त किए गए घोड़े के समान जिसकी इंद्रियां शांत हो गई हैं, वैसे अहंकाररहित, अनास्रव पुरुष की देवता भी स्पृहा करते हैं।" एक-एक शब्द को गौर से समझना, क्योंकि उनके साथ बड़ी गलत व्याख्याएं जुड़ी रही हैं। और करीब-करीब गलत व्याख्याएं इतनी प्राचीन हो गई हैं कि जाने-अनजाने, हम सभी उनकी गिरफ्त में आ गए हैं।
"सारथी द्वारा दान्त किए गए घोड़े के समान।"
अगर तुम बौद्ध भिक्षुओं से पूछो तो वे कहेंगे, जैसे सारथी घोड़े को दमन
कर देता है, जैसे सारथी घोड़े पर लगाम बांध देता है, जैसे सारथी कोड़े से घा.ेडे को मजबूर कर देता है, ऐसे ही जिस व्यक्ति ने अपनी इंद्रियों को दमन किया है, कोड़ों से मारा है, सारथी की तरह लगामों से बांधा है, हजार तरह के कष्ट दिए हैं ताकि इंद्रियां झुक जाएं, तप किया है--ऐसा वे अर्थ करेंगे। चूक हो रही है।
तुम फिर से किसी सारथी को घोड़े को शिक्षण देते देखो। अगर सारथी कुशल
है तो कोड़ा सिर्फ दिखाता है, मारता नहीं। अगर मारता है तो सारथी नहीं है।
अगर सारथी और भी कुशल है तो सिर्फ कोड़ा पास ही रखता है, दिखाता भी नहीं। जो दिखाता है, वह अभी भी कुशलता के मार्ग पर जा रहा है। अगर सारथी और भी कुशल है तो कोड़े की सिर्फ अफवाह फैलाता है, साथ भी नहीं रखता।

घोड़े को ठीक-ठीक सारथी प्रेम करता है, मित्रता बनाता है, थपथपाता है, स्नान करवाता है, घोड़े से मैत्री साधता है, घोड़े और अपने बीच एक अंतर्संवाद की स्थिति बनाता है, घोड़े की भाषा समझने की कोशिश करता है, अपनी भाषा घोड़े को समझाने की कोशिश करता है।
जर्मनी में एक बहुत प्रसिद्ध घोड़ा था। हंस उस घोड़े का नाम था। उससे ज्यादा प्रसिद्ध घोड़ा दुनिया में दूसरा कभी नहीं हुआ; कुछ ही वर्ष पहले मरा। उस घोड़े की सारे जगत में ख्याति हो गई थी। दूर-दूर से उसके लोग दर्शन करने आते थे। क्योंकि उस घा.ेडे ने एक अदभुत चमत्कार दिखलाना शुरू किया था; और वह यह कि वह कुछ गणित के सवाल हल करने लगा था। तुम उससे पूछो, दो और दो कितने? तो वह अपने पैर से टाप मारकर चार चोट कर देता।
बहुत दिन तक यह बात चली। लेकिन एक वैज्ञानिक ने कोई तीन वर्ष मेहनत की उसके साथ और तब वह पकड़ पाया कि मामला क्या था। घोड़ा कुछ बुद्धिमान नहीं था, घोड़े को कुछ पता ही नहीं था संख्या का और गणित का। लेकिन सारथी और घोड़े के बीच एक अंतर्संवाद बन गया था। तो वह सारथी पास खड़ा रहता। घोड़ा सिर्फ इतना जानता था कि सारथी जब सिर झुकाता, तब वह टाप रोक देता; इससे ज्यादा कुछ जानता नहीं था। लेकिन उसने सारी दुनिया के बड़े-बड़े बुद्धिमानों को धोखा दे दिया।
अब वह सिर झुकाना भी इतना बारीक था कि इस वैज्ञानिक को भी तीन साल लग
गए यह बात पकड़ने में कि यह आदमी जरा सा सिर झुकाता है और घोड़ा टाप रोक देता है। जब तक वह सिर नहीं झुकाता, वह टाप मारता रहता है। हिसाब सारथी करता है, इशारा सारथी करता है, घोड़ा सिर्फ इशारा पकड़ता है। उसने बड़े-बड़े गणित के सवाल हल किए। वह सदा ठीक-ठीक उत्तर देता।
और यह वैज्ञानिक भी पकड़ न पाता, एक बार गलती हो गई; सारथी से गणित में गलती हो गई, इसलिए घोड़े से गलती हो गई। गलती के कारण सारथी थोड़ा अचकचा गया, क्योंकि घोड़ा झंझट में पड़ा जा रहा है। इससे थोड़ा ख्याल उसको आया कि जरूर करता कुछ है सारथी, घोड़ा सिर्फ अनुगमन कर रहा है।
जो कुशल सारथी है, वह घोड़े से प्रेम निर्मित करता है। घोड़े की भाषा जाननी जरूरी है, अगर घोड़े की मालकियत करनी हो। मार-पीटकर जो घोड़े के ऊपर सवार हो जाता है, वह कोई सारथी थोड़े ही है, वह तो हिंसा से सवार हो गया है। अब यह मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि दुनिया में दो तरह से लोग अपनी इंद्रियों पर सवार हो सकते हैंः एक वे, जो जबरदस्ती कोड़े मारकर, निरीह इंद्रियों को सताकर, निर्दोष इंद्रियों के साथ हिंसा का व्यवहार करके, भूखा मारकर, रतजगा करवाकर, उपवास-अनशन से, हजार तरह के कष्ट, धूप में खड़े होकर, कांटों पर लेटकर, इंद्रियों के साथ हिंसा करने के द्वारा इंद्रियों को वश में करते हुए मालूम पड़ते हैं। इंद्रियां वश में होती नहीं, केवल जड़ हो जाती हैं, मृतवत हो जाती हैं।
इसलिए तुम अपने त्यागियों में जीवन की उत्फुल्लता न देखोगे, जो होनी चाहिए। जो कि भोगी में दिखाई पड़ती है, उतनी उत्फुल्लता भी तुम्हारे त्यागी में दिखाई नहीं पड़ती। तुम्हारे भोगी में भी कभी-कभी नृत्य की भनक आती है, वह भी तुम्हारे त्यागी में नहीं आती।
त्यागी तो नाचता हुआ होना था। जिसे जीवन का परम आनंद मिला हो, जिसे जीवन का सत्य मिला हो, उसकी तो गंध बदल जानी थी; उसके पास तो फूल ही फूल खिल जाने थे। जिसके जीवन में परमात्मा झांका हो, उसके जीवन में तुम कैसी उदासी देखते हो? कैसी मुर्दगी देखते हो? जैसे कब्रिस्तान चारों तरफ हो उसके। जैसे लाशों से घिरा बैठा हो--बैठा है घिरा, अपनी ही लाश से; बैठा है मरा, अपनी ही लाश से। इंद्रियां मार डालीं, मालकियत नहीं हुई। परमात्मा नहीं मिला है, संसार खो गया है।
इसे मैं फिर दोहरा दूं। संसार का खो जाना ही परमात्मा का मिलना नहीं है, यद्यपि परमात्मा का मिलना जरूरी रूप से संसार का खो जाना है। संसार खो गया है, संसार छोड़ दिया है, जबरदस्ती की है, लेकिन परमात्मा इसके हृदय की खिड़की से झांका नहीं। अन्यथा जैसे सूर्योदय हो, ऐसी इसके भीतर कोई ज्योति तुम्हें दिखाई पड़ती। इसके शब्द-शब्द में गीत होता, इसके उठने-बैठने में एक और ही हवा होती, किसी और ही लोक की खबर होती। इसका व्यक्तित्व गाता हुआ

होता, जैसे एक मस्ती छाई हो। बिन पीए जैसे पूरी मधुशाला पी गया हो। एक खुमार, ऐसा कि जिसकी गहराई न आंकी जा सके; एक ऐसी मस्ती, जिसको समझने- समझाने का कोई उपाय न पाया जा सके; ऐसी अतर्क्य खुशी, जिसका बाहर कोई कारण न दिखाई पड़ता हो; जो भीतर से ही आती हो और भर-भर जाती हो। तुम इस व्यक्तित्व में झरने पाते। लेकिन वैसा कहीं दिखाई नहीं पड़ता।
कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर में दिखाई पड़ा है, लेकिन उनके पीछे चलने वाले में दिखाई नहीं पड़ता। कहीं कोई चूक हो रही है। चूक यही हो रही है कि जो बुद्धों ने कहा है, उसकी बड़ी गलत व्याख्या हो गई है। और गलत इसलिए हो गई है कि जो सरल था, जो हम कर सकते थे, वह हमने कर लिया है। यह बहुत ही आसान है। घोड़े के ऊपर कोड़े बरसा देने से आसान और क्या होगा? बड़ी तृप्ति मिलती है।
लोग दुष्ट हैं। अभी दूसरों के साथ दुष्ट हैं, वही दुष्टता अपने पर लगा देने में बड़ी देर नहीं लगती। अभी दूसरों को सताने में मजा लेते हैं, फिर इसी प्रक्रिया को अपने पर थोप लेने में कोई ज्यादा अड़चन नहीं आती। प्रक्रिया तो सधी-सधाई है, सिर्फ था.ेडी सी दिशा बदलनी होती है। हिंसा औरों के साथ बंद हो जाती है, अपने साथ शुरू हो जाती है।
तुम अपने मंदिरों में, अपनी मस्जिदों में, अपने गुरुद्वारों में न मालूम किस-किस तरह के हिंसक लोगों की पूजा कर रहे हो। तुम जरा गौर से देखो, वे कर क्या रहे हैं? जो तुमने दूसरों के साथ किया है, वही वे अपने साथ कर रहे हैं। तुम दूसरों पर क्रोधी हो, वे खुद पर क्रोधी हैं।
तुम्हारे क्रोध का पता चल जाता है, क्योंकि दूसरा क्यों बरदाश्त करे? उनके क्रोध का पता नहीं चलता, क्योंकि वहां कोई दूसरा है नहीं, खुद ही हैं। अपने को कोई सताए तो शिकायत भी किससे करे? शिकवा भी क्या हो? अपने को ही सताए तो कहने किससे जाए? और जब इस सताने के आधार पर पूजा मिल जाती हो, चरणों में फूल चढ़ने लगते हों, सिर झुकने लगते हों, तो अहंकार को मजा आ जाता है।
अहंकार ही हिंसा का सूत्र है।
तुम दूसरों के प्रति भी हिंसा से भर जाते हो, जहां तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है। इसे समझ लेना। दूसरों के प्रति तुम हिंसा करते हो तभी, जब तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है। अपने प्रति हिंसा करने वाले आदमी के अहंकार को बड़ा रस आने लगता है, बड़ा भरने लगता है अहंकार। लोग पूजा देते हैं, श्रद्धा देते हैं, सम्मान देते हैं। तुमने कभी ख्याल किया... ।
एक जैन मुनि मुझे मिलने आए थे; उन्होंने मेरी कुछ बातें सुनी होंगी, कुछ किताबें पढ़ी होंगी, उनको जमीं। सोच-विचारशील आदमी मालूम पड़ते थे। कहने लगे, छोड़ देना चाहता हूं यह। समझ में आया है कि अभी तक सिर्फ अपने को सताता रहा हूं। और अब कठिनाई हो गई है, जब से आपकी बात समझ में आनी शुरू हुई है, तब से यह एक नई बेचैनी शुरू हो गई है कि यह मैं क्या कर रहा हूं? इसे छोड़ देना चाहता हूं।
तो मैंने कहा, पूछना किससे है? इसे लेते वक्त मुझसे नहीं पूछा था, इसे छोड़ते वक्त मुझसे पूछने की क्या जरूरत है?
उन्होंने कहा, पूछना जरूरी है, क्योंकि मैं पचास साल का हुआ; अभी जो मेरे चरणों में सिर रखते हैं, वे मुझे घर में बर्तन साफ करने की नौकरी भी देने को राजी न होंगे। मुझमें कोई और योग्यता नहीं है, बस यही एक योग्यता है--अपने को सताने की, उपवास करने की, व्रत करने की, नियम करने की; यही एक योग्यता है। यही मेरी पूजा और श्रद्धा का आधार है। यह मैं छोड़ देता हूं तो जो मेरे चरणों में सिर रखते हैं, आज सब कुछ लुटाने को तैयार हैं मेरे लिए, वे मुझे घर में बर्तन साफ करने की भी नौकरी न देंगे; इसलिए पूछना जरूरी है। उस दिन मुझे ख्याल आया कि तुम जिनकी पूजा कर रहे हो, तुमने कभी सोचा कि अगर वे अपने को सताना बंद कर दें, तो तुम उनमें पूजा योग्य कुछ भी पाओगे? उनके जीवन में कोई सृजन है? उनके जीवन में स्रष्टा की कोई झलक है? वे सुंदर गीत बना सकेंगे, मूर्तियां रच सकेंगे, चित्र बना सकेंगे, कोई आविष्कार कर सकेंगे, चिकित्सक हो सकेंगे, शिक्षक हो सकेंगे--क्या हो सकेंगे? उनके जीवन में और कुछ भी नहीं है।

तब मुझे दिखाई पड़ना शुरू हुआ; तब मैंने गौर से देखना शुरू किया तो मुझे लगा कि जीवन में जो लोग किसी भी भांति सफल नहीं हो पाते, जीवन की प्रतिस्पर्धा में जो कहीं भी टिक नहीं पाते, जो सभी तरह से प्रतिभाहीन हैं, वे ही तुम्हारे संन्यासी बन गए हैं। इतना तो कोई भी कर सकता है। खुद को सताने में कोई प्रतिभा की जरूरत है? मूढ़ से मूढ़ व्यक्ति यह कर सकता है। वस्तुतः तो सिर्फ मूढ़ ही कर सकता है; जिसमें थोड़ी बुद्धि हो, वह करेगा कैसे? क्या उसे यह दिखाई न पड़ेगा--जो दूसरे के साथ करना गलत है, वह अपने साथ करना सही कैसे हो सकता है?
जीसस का प्रसिद्ध वचन है कि तुम दूसरों के साथ वही करना, जो तुम चाहते
हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें।
इसके साथ ही मैं एक वचन और जोड़ देना चाहता हूंः तुम अपने साथ भी वही करना, जो तुम मानते हो कि दूसरे के साथ करना उचित है। जो दूसरे के साथ करना तक अनुचित है, वह अपने साथ तो करना अनुचित होगा ही। हिंसा को तुम आत्म-हिंसा मत बना लेना। और अक्सर हिंसा आत्म-हिंसा सरलता से बन जाती है। इसलिए इस सूत्र के जो अर्थ किए गए हैं, वे अर्थ बुनियादी रूप से गलत हैं। उन अर्थों में ऐसा भाव है कि जैसा घोड़े को मार-पीटकर कोई बस में ले आए, ऐसे ही तुम अपने को मार-पीट करके बस में ले आना।
यह संभव नहीं है; यह असंभव है। इंद्रियों को समझना होगा, शरीर को समझना होगा, शरीर की भाषा को समझना होगा। तुम शरीर में बसे हो। तुम्हें शरीर में रहना है। तुम्हें शरीर का उपयोग करना है। भोग के लिए ही नहीं, तुम्हें ध्यान के लिए भी शरीर का उपयोग करना है।
इस घोड़े को मार मत डालना। इस घोड़े को ऐसा न करना कि खाना खिलाना बंद कर दो, ताकि इतना दीन-हीन हो जाए कि तुम जहां चलाओ, वहीं चले। क्योंकि इसकी ऊर्जा ही खो जाए, इसमें कोई शक्ति ही न रहे।
यह शरीर तो शक्तिशाली हो; क्योंकि इसी शरीर की तरंगों पर यात्रा करनी है। यह शरीर संसार में ही नहीं लाता, यही शरीर परमात्मा में भी ले जाता है। इसी शरीर से उसके द्वार भी खुलेंगे। यह शरीर मंदिर है।
इसलिए मैं इस सूत्र की व्याख्या करता हूंः एक कुशल सारथी घोड़े के साथ दोस्ती बांधता है, गहरी मैत्री स्थापित करता है, प्रेम का हाथ फैलाता है। धीरे-धीरे... और प्रेम का हाथ कौन नहीं समझता? घोड़े भी समझ लेते हैं। प्रेम का हाथ कौन नहीं समझता? प्रेम के हाथ को समझने के लिए बुद्धिमानी की जरूरत नहीं, केवल हृदय धड़कता हो, बस काफी है। प्रेम के हाथ को शरीर भी समझ लेता है।
तुमने कभी यह ख्याल किया? शरीर शास्त्र की भाषा न समझे, प्रेम की भाषा समझ लेता है। अगर कोई तुम्हारे हाथ पर हाथ प्रेम से रखे तो क्या तुम्हें समझने में देर लगती है?
कभी मां अपने बेटे को चांटा भी मार देती है, चांटा तो वही है, लेकिन भीतर हाथ में प्रेम की ऊर्जा है। फिर कोई और उसे चांटा मार देता है, चांटा वही है, भौतिकशास्त्र कुछ भेद न कर पाएगा; दोनों में एक ही घटना घटी है, लेकिन बेटे के हृदय में व्याख्या बड़ी भिन्न है। मां के प्रति वह क्रोध से नहीं भरता, शायद और भी गहरे अनुग्रह से भर जाता है। उसने मारा, वह प्रेम के ही कारण। किसी दूसरे ने मारा, वह प्रेम के कारण नहीं। हाथ की ऊर्जा बदल जाती है। हाथ की उष्मा बदल जाती है।
शरीर भी भाषा समझता है। तुमने कभी ख्याल किया? किसी व्यक्ति के पास बैठकर, अचानक प्रफुल्लता तुम्हारे भीतर सरकने लगती है, सुबगने लगती है। किसी दूसरे व्यक्ति के पास बैठकर, अचानक तुम दीन-हीन मालूम होने लगते हो। कुछ तुम्हारे भीतर सिकुड़ने लगता है। किसी व्यक्ति के पास आते ही, जैसे सुबह करीब आ जाए; और किसी दूसरे व्यक्ति के पास आते ही, जैसे सुबह दूर हो जाए। किसी व्यक्ति के पास आते ही, जैसे फूल खिलने लगें, और किसी व्यक्ति के पास आते ही, जैसे सब मुर्झा जाए।
शरीर की भाषा है। शरीर की भाषा को समझना होगा। शरीर की भाषा को जिसने समझना शुरू किया, वही सारथी है। शरीर से लड़ना नहीं है, यह तो पागलपन है।

जिसकी तुम सवारी कर सकते हो, जो तुम्हें दूर-दूर की यात्रा पर ले जाता है, उसके साथ संघर्ष में उतर जाना निपट अज्ञान है।
"सारथी द्वारा दान्त किए गए घो.ड़े के समान।"
दान्त का अर्थ, सारथी के प्रेम में शांत हो गए घोड़े के समान। सारथी के प्रेम, सारथी की समझ, सारथी के अनुग्रह में घोड़ा जैसे दान्त हो जाता है, झुक जाता है, स्वीकार कर लेता है। क्योंकि एक बात सारथी की समझ में आ जाती है घोड़े को कि घोड़ा जितना अपने को चाहता है, उससे भी ज्यादा सारथी चाहता है। एक बात समझ में आ जाए घोड़े को कि जो मैं करूंगा, उसमें शायद भूल भी हो जाए, सारथी जो करेगा, उसमें भूल न होगी। सारथी मुझसे ज्यादा समझदार है--बस, पर्याप्त है। घोड़ा शांत होकर पीछे चलने लगता है।
जैसे छोटा बच्चा अपने पिता का हाथ पकड़ लेता है और साथ चल पड़ता है; यह जानता है कि मैं भटक जाऊं, पिता न भटकेंगे। वे ज्यादा जानते हैं, जीवन उन्होंने ज्यादा देखा, रास्ते उन्होंने ज्यादा पहचाने हैं। हाथ पकड़ लिया, बात भूल जाती है। फिर वह मस्ती से चलता है। भला पिता परेशान हो, चिंतित हो कि कहीं भूल न जाए, भटक न जाए, लेकिन बेटे को अब कोई चिंता नहीं है। वह और हजार बातें करता है, लेकिन भटकने की कोई चिंता नहीं।
जिस दिन तुम्हारा शरीर और तुम्हारे बीच मैत्री का संबंध बन जाता है, जिस दिन तुम कुशल हो जाते हो शरीर की भाषा समझने में और शरीर को अपनी भाषा समझाने में, उस दिन शरीर तुम्हारे पीछे चलने लगता है; उस दिन इंद्रियां यहां-वहां नहीं भागतीं, तुम्हारे पीछे चली आती हैं। जैसे गड़रिए के पीछे उसकी भेड़ें चली आती हैं, ऐसी तुम्हारी इंद्रियों का समूह तुम्हारे पीछे चला आता है। और यह बड़े आनंद का अनुभव है, जब तुम्हारी इंद्रियां तुम्हारे पीछे आती हैं।
अभी तो ऐसा है, सभी इंद्रियां सभी दिशाओं में भाग रही हैं। तुम कभी एक
के पीछे भागते हो, कभी दूसरे के पीछे भागते हो, कभी तीसरे के पीछे भागते हो। तुम्हारा सारा जीवन आपाधापी के सिवाय और कुछ भी नहीं। अंत में तुम पाओगे कि दौड़-धूप बहुत हुई, हाथ कुछ भी न लगा। अंत में तुम पाओगे, जहां खड़े थे, वहीं समाप्त हो गए।
आए भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए
मैं जा ही ढूंढ़ता तेरी महफिल में रह गया
तुम जगह ही खोजते हुए--कहां खड़े हों, कहां बैठें--एक इंद्रिय के पीछे भागे, दूसरी के भागे, तीसरी के भागे। तुम इस बिबूचन में, इस विडंबना में ही रहे।
आए भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए
कोई बुद्ध आता है--आता भी है, बैठता भी है, उठ भी खड़ा होता है; जीवन का सार भी ले लेता है, जीवन का निचा.ेड ले लेता है; और आगे की यात्रा पर निकल जाता है। और तुम!
मैं जा ही ढूंढ़ता तेरी महफिल में रह गया
मरते वक्त जीवन हाथ से जब चूक जाए, तब कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे मन में भी यही ख्याल रह जाए--
आए भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए
यह रह जाएगा, अगर इंद्रियों के पीछे दौड़ते रहे।
मेरी बात थोड़ी कठिन मालूम होगी। मैं तुमसे कहता हूंः इंद्रियों के पीछे मत दौड़ना। मैं तुमसे यह भी कहता हूंः इंद्रियों को मार-पीटकर अपने पीछे मत कर लेना। क्योंकि जिस व्यक्ति ने मार-पीटकर इंद्रियों को पीछे कर लिया है, वह भला लगे देखने में कि इंद्रियां उसके पीछे चल रही हैं, सच नहीं है यह। वह इंद्रियों के पीछे लगा रहेगा। क्योंकि पूरे वक्त जिसको मार-पीटकर पीछे किया है, उसका ख्याल रखना पड़ेगा--भाग न निकले।
तुम्हारे साधु-संन्यासियों को गौर से देखना; तुमसे भी ज्यादा भयभीत! कंप रहे हैं, डर रहे हैं। कोई इंद्रिय छिटक न जाए। कोई वासना निकल न जाए यहां-वहां।

इतने प्राण जहां कंपते हों, इतना जहां भय हो, वहां परमात्मा का प्रवेश
हो सकेगा? बुद्ध ने कहा है, महावीर न कहा है, अभय उसके आगमन का द्वार है। तो इतने भय में वह आ सकेगा?
नहीं, वह आता है तब, जब तुम मस्ती से गीत गाते चलते हो। तुम अपनी बांसुरी बजाते चलते हो और इंद्रियां तुम्हारे पीछे चलती हैं।
कृष्ण का प्रतीक इसी तरफ इशारा है। लोग बड़ी गलती कर लिए हैं और गलत अर्थ कर लिए हैं। कृष्ण का बांसुरी बजाना और गोपियों का उनके चारों तरफ नाचना--रास की जो कल्पना है, वह यही है। इंद्रियां गोपियां हैं और जब आत्मा की बांसुरी बजने लगती है, वे चारों तरफ नाचने लगती हैं। रास शुरू हो जाता है।
कहते हैं, कृष्ण की सोलह हजार गोपियां थीं--सोलह हजार वासनाएं। यह तो सिर्फ प्रतीक संख्या है। इसका अर्थ होता है, हजार-हजार; बहुत वासनाएं हैं-- सोलह हजार--लेकिन अगर भीतर की बांसुरी बजने लगे, कृष्ण का आविर्भाव हो, तब वे सभी गोपियां बन जाती हैं; वे सोलह हजार तुम्हारे आसपास नाचने लगती हैं। सभी परम पुरुषों के पास रास बना है। और जहां रास न बने, समझना कहीं कोई चूक हो गई। मैं तुमसे कहता हूं, कृष्ण के पास ही गोपियां नहीं नाचती थीं, मैंने उन्हें बुद्ध के पास भी नाचते देखा है; अब भी देखता हूं। यह सदा ही होगा, यह होना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। जब आत्मा मस्ती के गीत गाती है, इंद्रियां सराबोर होकर नाचने लगती हैं।
इंद्रियां तुम्हें तभी तक भटकाती हैं, जब तक तुम कोरे हो और आनंद से शून्य हो। इसलिए इंद्रियां तुम्हें भटका पाती हैं। क्योंकि वे छोटा-मोटा सुख का जो तुम्हें आश्वासन देती हैं, वह अभी तुम्हें सुख मालूम पड़ता है। जब तुम भीतर आनंद से भरे होते हो, जब तुम उन्हें इतना आनंद दे पाते हो, जब तुम उन पर आनंद की वर्षा कर पाते हो, तब इंद्रियां कहां जाती हैं? बाजार छूट जाता है।
और जब इंद्रियां तृप्त होकर तुम्हारा पीछा करती हैं, अनुगमन करती हैं, तुम्हारे साथ नाचती हुई चलती हैं, तब जिंदगी, जिंदगी बनी; तब यात्रा, धर्म-यात्रा बनी; तब कारवां परमात्मा की तरफ चला।
"सारथी द्वारा दान्त किए गए घोड़े के समान जिसकी इंद्रियां शांत हो गई हैं।"
इंद्रियां शांत ही तब होती हैं, जब उन्हें इतना मिल जाता है, जितना उन्होंने कभी सोचा ही न था; और कोई उपाय नहीं है। तुम जबरदस्ती शांत करने की कोशिश कर रहे हो। तुम इसी तरह हो, जैसे कि कोई मां अपने बच्चे को डरा- धमका कर बैठा दे एक कोने में डंडा बताकर कि बैठ वहां कोने में; हिलना-डुलना नहीं। देखा? वह बैठा रहता है दबाए अपने को, मुंह लाल हो जाता है, आंसू बह रहे हैं, हिलता-डुलता नहीं। लेकिन भीतर देखो, तूफान उबल रहा है।
ऐसे ही तुम्हारे साधु-संन्यासी हैं; बैठे हैं नर्क-स्वर्ग के डर से,
भय से--कोई डंडा सामने लिए खड़ा है, हिल-डुल नहीं सकते--लेकिन भीतर जरा उनके देखो, भीतर वे भी अपने देखने में डरते हैं, शांत नहीं हुआ है कुछ भी। क्योंकि शांति तो आनंद की छाया है।
शांति का अर्थ हैः तृप्ति। शांति का अर्थ हैः पा लिया जो पाना था; पा लिया जो सोचा था; पा लिया ज्यादा, जितना चाहा था। स्वप्न भी जिसके न देख सकते थे, वह भी पा लिया।
मेरे ख्वाबों के दरीचे से ये झांका किसने
नींद की झील पे ये किसने कमल फैलाए
जैसे ही आनंद की किरण उतरती है, कमल ही कमल फैल जाते हैं। तुम आनंदित होते हो, शांति तुम्हारे चारों तरफ घनीभूत हो जाती है। आनंदित व्यक्ति का लक्षण है शांति। शांति को सीधा मत चाहना, शांति परिणाम है।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं, शांत होना है। मैं कहता हूं, पहले मस्त तो हो लो। वे कहते हैं, मस्ती वगैरह से हमें कुछ लेना-देना नहीं, हमें शांत होना है। मैं उनसे कहता हूं, पहले नाच तो लो। वे कहते हैं, आप भी क्या बातें कर रहे हैं? हम शांत होने आए हैं। उनको मैं कैसे समझाऊं कि शांति जो है, वह कोई सीधा लक्ष्य नहीं है।

शांति का अर्थ हैः तृप्ति, परितृप्ति, परितोष। शांति का अर्थ हैः ऐसी गहन तृप्ति कि अब वासना की कोई लहर नहीं उठती।
जैसे जब भूख लगी हो तो कैसे शांत होओगे, कहो? जब भूख लगी हो, कैसे शांत होओगे? जब पेट में आग जलती हो, कैसे शांत होओगे? जब प्यास लगी हो और कंठ जलता हो और चारों तरफ रेगिस्तान हो, कैसे शांत होओगे?
लेकिन जब कंठ को जल मिल जाए, क्षुधा शांत हो तो एक परितोष छा जाए। ऐसी
ही भीतर की भी क्षुधा जब शांत होती है और भीतर की अतृप्ति जाती है, आनंद बरसता है, तब शांति आती है।
बुद्ध के पास शांति है जरूर, क्योंकि भीतर कोई नाच उठा है। बुद्ध के पीछे चलने वाले चूक गए बात; उन्होंने समझा, शांत होना है।
ख्याल रखना, परिणाम को कभी भी लक्ष्य नहीं बनाया जा सकता; परिणाम तो परिणाम है।
जैसे समझो कि सौ डिग्री तक पानी गर्म होता है तो परिणाम में भाप अपने
आप बन जाती है। अब अगर तुम भाप बनाने की सीधी ही कोशिश में लग जाओ और यह भूल ही जाओ कि सौ डिग्री तक पानी के गर्म हुए बिना भाप नहीं बनती तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम बड़ी अड़चन में पड़ोगे। भाप बनेगी कैसे? भाप परिणाम है। कारण मौजूद कर दो, परिणाम अपने आप घट जाता है।
आनंद की सौ डिग्री जब पूरी होती है, जब आनंद का अहोभाव होता है, तब शांति होती है। अशांति क्या है, इसे समझने की कोशिश करो। अशांति यही है कि कहीं कोई तृप्ति नहीं। अशांति यही है कि जहां भी जाते हैं, भूख मिटती नहीं, प्यास मिटती नहीं। अशांति यही है कि जो भी करते हैं, कुछ फल हाथ लगता नहीं; इसलिए अशांत हैं।
अगर ऐसे में शांत हो गए तो बड़ी कठिनाई होगी; फिर तो तुम खोज से वंचित
ही रह जाओगे। परमात्मा की बड़ी अनुकंपा है कि तुम्हें शांत नहीं होने देता। शांत तो तुम तभी हो सकोगे, जब मंजिल आ जाए। शांत तो तुम तभी हो सकोगे, जब आनंद की खोज हो जाए।
यह अशांति शुभ है, इसे मिटाने की कोशिश मत करना; इसे समझने की कोशिश करना। यह अशांति सूचक है। यह तो खबर देती है कि तुम चूक रहे हो। यह तो इंगित करती है, यह तो थर्मामीटर है। यह तो बताती है भर कि तुम चूक रहे हो कहीं। कहीं जीवन गलत जा रहा है। प्यास कहीं जा रही है और जिस जल को तुम खोज रहे हो, वह जल नहीं है। जो जल तुम सोचते हो मिल गया, वह जल नहीं है। प्यास बढ़ती जा रही है, आग बढ़ती जा रही है, तुम अशांत होते जा रहे हो।
यह केवल इस बात की खबर है, कहीं और खोजो; किसी और दिशा में खोजो। चल चुके बाहर, भीतर चलो। कर चुके बहुत याद संसार की--आओ जिक्रे-यार करें-- परमात्मा की याद करो। बहुत खोज चुके दूसरे में, बहुत खोद चुके दूसरे में, कुछ भी न पाया; जल आता नहीं। चलो, अब अपने में खोदें।
एक यात्रा व्यर्थ जा रही है, इसलिए तुम अशांत हो। यात्रा सार्थक होने लगे, तत्क्षण शांति आनी शुरू हो जाती है। दिशा में चल भी पड़ो तो तत्क्षण तुम पाओगे, ठंडी हवाएं आने लगीं, सुवासित हवाएं आने लगीं। उस दिशा में मुड़ते ही शांति पंख फैलाने लगती है।
"सारथी द्वारा दान्त किए गए घोड़े के समान जिसकी इंद्रियां शांत हो गई हैं।"
शांत की नहीं गई हैं, हो गई हैं। शांत कीं, चूके; शांत हुईं, पाया।
करने और होने का फर्क ख्याल में रखना। करना तो जबरदस्ती भी हो सकता है--जबरदस्ती ही होता है--होना जबरदस्ती नहीं होता। तुम सिर्फ आयोजन जुटाओ, तुम सिर्फ कारण पूरे कर दो, तुम परिस्थिति बनाओ, एक दिन अचानक हो जाता है। होना सदा प्रसादरूप है। तुम्हारे करने से हो, ऐसा नहीं; तुम्हारे करने से नहीं होता, तुम सिर्फ व्यवस्था जुटा देते हो, तुम द्वार खोलकर खड़े हो जाते हो; फिर सूरज उगता है, भीतर चला आता है। तुम इतना ही कर सकते हो कि द्वार खोलकर खड़े रहो।
तुम सौ डिग्री तक पानी को गर्म कर दो, ईंधन जुटा दो, आग जला दो। फिर सौ डिग्री पर पानी अपने से भाप बन जाता है। फिर तुम्हें पानी को खींच-खींचकर भाप नहीं बनाना पड़ता।

तुम पौधों को पानी दे दो, धूप दे दो, खाद दे दो, फिर तुम्हें खींच-खींचकर फूल बाहर निकालने नहीं पड़ते; वे अपने से उमगते आते हैं। फूल पैदा नहीं किए जाते, पैदा होते हैं। हां, फूल पैदा होने के लिए व्यवस्था तुम जुटा दो, बस। माली फूल पैदा नहीं करता, फूल पैदा हो सकें, इसके लिए जरूरी व्यवस्था जुटाता है। खाद डालता है, भूमि तैयार करता है, पानी सींचता है और प्रार्थना करता है। क्या कर सकता है और? प्रार्थना करता है कि खिलें फूल, अभीप्सा करता है कि खिलें फूल, प्रतीक्षा करता है कि खिलें फूल। व्यवस्था पूरी कर देता है, किसी दिन फूल खिलते हैं। उस दिन माली यह न कहेगा कि मैंने खिलाए।
फूल तो सदा परमात्मा ही खिलाता है। फूल तो सदा अस्तित्व से खिलते हैं,
हम सिर्फ आयोजन करते हैं।
अगर तुम किसी बड़े चिकित्सक से पूछो तो वह यही कहेगा कि हम दवा देते हैं, मरीज को आराम देते हैं, स्वास्थ्य नहीं देते; सिर्फ इंतजाम कर देते हैं। स्वास्थ्य तो अपने से ही आता है। स्वास्थ्य के मार्ग की बाधाएं अलग कर देते हैं, लेकिन स्वास्थ्य को खींचकर तो कोई भी नहीं ला सकता। सिर्फ बीच में कोई अड़चन न रहे, कोई द्वार बंद न रहे, कोई शिला, कोई चट्टान अटकी न रहे, वह हम हटा देते हैं; फिर हम प्रतीक्षा करते हैं।
इसलिए ठीक-ठीक चिकित्सक सदा प्रार्थनापूर्ण होता है। और जो प्रार्थनापूर्ण होता है, वही ठीक चिकित्सा कर पाता है। क्योंकि स्वास्थ्य सिर्फ बीमारी का अलग हो जाना नहीं है, बीमारी के अलग हो जाने पर कुछ घटता है अनहोना; उतरता है कुछ पार से। स्वास्थ्य की कोई व्याख्या नहीं है, स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं है। ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही कह सकते हैं कि बीमार तुम न रहो तो तुम तैयार हो स्वास्थ्य के लिए; फिर शेष सब उसके हाथ में है।
"जिसकी इंद्रियां शांत हो गई हैं।"
और ध्यान रखना, बड़ी महत्वपूर्ण सूचना बुद्ध इसके बाद देते हैं।
"सारथी द्वारा दान्त किए गए घोड़े के समान जिसकी इंद्रियां शांत हो गई हैं, वैसे अहंकाररहित... ।"
जिसने शांत की हैं, वह कभी अहंकाररहित हो ही नहीं सकता। उसको शांत करने का अहंकार पकड़ लेता है कि मैंने इंद्रियां शांत कर दीं। मैं त्यागी, मैं आत्मविजयी, मैं यह, मैं वह। जिसने इंद्रियों को शांत कर दिया जबरदस्ती, जिसने त्याग कर दिया जबरदस्ती, वह हिसाब गुनता रहता है भीतर, कितने लाख छोड़ दिए। पहले गिनता था, इकट्ठे करता था; अब छोड़ दिए तो भी गिनता है; गिनती जारी रहती है। कितने उपवास कर लिए, हिसाब रखता है।
अगर परमात्मा ऐसे कभी मिला तो अपने पूरे खाते-बही यह सामने रख देगा कि देखो। इसके मन में धन्यवाद शायद ही हो, शिकायत भला हो; यह कहेगा, इतना किया और तुमने इतनी देर लगा दी? न्याय नहीं मालूम होता। और लुच्चे-लफंगे और बेईमान सब मजा कर रहे हैं।
मेरे पास पुराने ढब के संन्यासी आ जाते हैं, वे यही मुझे सदा कहते हैं
कि यह क्या है? अन्याय हो रहा है। साधु पुरुष दुख पा रहे हैं, असाधु मजा कर रहे हैं।
मैं उनसे कहता हूं, अगर तुम साधु हो तो तुम ही मजा कर रहे होओगे; कोई असाधु मजा कर नहीं सकता। वह असाधु कैसे मजा कर लेगा? अगर असाधु मजा कर रहा है तो तुम नाहक चूक रहे हो, तुम असाधु हो जाओ। साधु का अर्थ ही यह है कि वह आखिरी मजा ले रहा है।
मैं साधु को परम भोगी कहता हूं। जिनको तुम भोगी कहते हो, वे बड़े त्यागी हैं। परमात्मा को छोड़ रहे हैं, कूड़ा-करकट इकट्ठा कर रहे हैं। इनको तुम भोगी कहते हो? परम धन को छोड़ रहे हैं, ठीकरे इकट्ठे कर रहे हैं; इनको तुम भोगी कहते हो? समाधि को छोड़ रहे हैं, संभोग को पकड़े बैठे हैं; इनको तुम भोगी कहते हो? ये त्यागी हैं, ये महात्यागी हैं; इनकी पूजा करो, इनकी अर्चना करो, आरती के थाल सजाओ, इनकी रथ-यात्राएं निकालो। ये बड़ा त्याग किए हैं। कौड़ी पकड़ी है, हीरे छोड़े हैं; इनसे बड़ा और क्या त्याग होगा?

जिनको तुम त्यागी कहते हो, अगर वे सच में त्यागी हैं, तो वे महाभोगी हैं। उन्होंने कौड़ी छोड़ी, हीरा पाया; इसमें त्याग क्या? व्यर्थ छोड़ा, सार्थक पाया; इसमें त्याग कहां?
बुद्ध का सूत्र बड़ा महत्वपूर्ण है, "वैसे अहंकाररहित... ।"
बुद्ध पुरुष एक-एक शब्द भी तभी बोलते हैं, जब उसमें बड़ी गहरी सार्थकता हो। साधना अगर तुमने की तो अहंकार पकड़ेगा। अगर समझ जगाई तो समझ के जागने में अहंकार खो जाता है। इसलिए मैं समझ को ही एकमात्र साधना कहता हूं। क्रोध को समझो, क्रोध चला जाएगा। और पीछे, खाली जगह में यह अहंकार न छूट जाएगा कि मैं अक्रोधी हूं। क्रोध को तभी गया हुआ मानना, जब पीछे यह बात न रह जाए कि मैं अक्रोधी हूं। लोभ को तभी गया हुआ मानना, जब पीछे यह भाव न रह जाए कि मैं अलोभी हूं। भोग को तभी गया हुआ मानना, जब भीतर यह भाव न बने कि मैं त्यागी हूं। अगर विपरीत भाव बन जाए, चूक हो गई।
इसलिए तो तुम त्यागियों, संन्यासियों के चेहरे पर अकड़ देखते हो। भारी अकड़ है, उन्होंने बड़ा किया है। स्वभावतः, जब कोई करता है तो अकड़ होती है। तुमने क्या किया है? कुछ भी नहीं। उन्होंने बड़ा त्याग किया है, धन-दौलत छोड़ी, घर-द्वार छोड़ा, उन्होंने कुछ किया है; उनकी अकड़ स्वाभाविक है।
जैन मुनि किसी को नमस्कार नहीं करते। कैसे करें नमस्कार! ज्यादा से ज्यादा आशीर्वाद दे देते हैं; वह भी उनकी बड़ी कृपा है। नमस्कार नहीं कर सकते किसी को, हाथ नहीं जोड़ सकते किसी को। त्यागी और भोगी को हाथ जोड़े? त्यागी और साधारणजन को हाथ जोड़े? असंभव!
यह किस भांति का त्याग हुआ? कहीं चूक हो गई।
तो बुद्ध कहते हैं, "वैसे अहंकाररहित... ।"
जिसके जीवन में त्याग आता है समझ से; जिसने घोड़े को समझा है; शांत हुआ घोड़ा, शांत किया नहीं; वही कुशल सारथी है।
"वैसे अहंकाररहित, अनास्रव पुरुष की देवता भी स्पृहा करते हैं।"
वैसे व्यक्ति से तो देवता को भी, देवताओं को भी ईर्ष्या होगी, प्रतिस्पर्धा होगी। देवताओं को भी!
बुद्ध ने कहा है कि जब कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो देवता उसके चरणों में सिर झुकाने आते हैं। क्योंकि देवता कितनी ही ऊंचाई पर हों सुख के, लेकिन सुख भी बंधन है। भोग की कितनी ही सूक्ष्मता हो, इंद्रियों का जाल मौजूद है।
तो जब कोई ऐसी दशा को उपलब्ध होता है, जहां इंद्रियां बिल्कुल ही शांत
हो गई हैं, जहां मालकियत पूरी हो गई, जहां आदमी दुख के ही पार न गया, सुख के भी पार गया, जहां आनंद बरसा, जहां शांति घनीभूत हुई, जहां सब तरह की उत्तेजना क्षीण हो गई, जहां अब कोई तरंगें नहीं उठतीं, मन निस्तरंग हुआ, चेतना ऐसे हो गई, जैसे झील पर कोई लहर न हो, ऐसी अवस्था जहां भी घटती है, सारा अस्तित्व ही नमस्कार करता है। सारा अस्तित्व ही ईर्ष्यालु होता है। कौन न ऐसा होना चाहेगा!
देखती है मुझे हैरानी से तारों की निगाह
उस बुलंदी पे उड़ा जाता है तौसन मेरा
ऐसी घड़ी आती है चैतन्य की, जब कि उन ऊंचाइयों पर उड़ती है चेतना कि जहां तारे भी ईर्ष्या से, हैरानी से चौंककर खड़े रह जाते हैं।
देखती है मुझे हैरानी से तारों की निगाह
उस बुलंदी पे उड़ा जाता है तौसन मेरा
"सुंदर व्रतधारी, तादि पृथ्वी के समान नहीं क्षुब्ध होने वाला और इंद कील के समान अकंप होता है, ऐसे पुरुष को कर्दम-रहित जलाशय के समान संसार नहीं होता है।"
"सुंदर व्रतधारी... ।"
क्या कारण पड़ा होगा बुद्ध को सुंदर भी जोड़ने में? व्रतधारी कहने से काम न चलता था? बात तो काफी हो जाती थीः व्रतधारी।
लेकिन बुद्ध को सुंदर जोड़ना पड़ा है। क्योंकि व्रत भी असुंदर हो जाते हैं अगर अहंकार उनके पीछे पलता हो। अहंकार प्रत्येक वस्तु को कुरूप कर जाता है। व्रतों का भी एक सौंदर्य है, लेकिन वह तभी, जब व्रत घटते हों, घटाए

न जाते हों। जब सारथी कोड़ा मारकर घोड़े को न चलाता हो। सारथी का इशारा समझकर घोड़ा चलता हो, तब सौंदर्य है। सारथी के पीछे-पीछे चलता हो; सारथी को कहना भी न पड़ता हो और पीछे चलता हो, ऐसा प्रेम बन गया हो सारथी और घोड़े के बीच।
शरीर पीछे आता हो छाया की तरह। शरीर छाया है आत्मा की। इसे समझना। जैसे शरीर की छाया बनती है--जब तक तुम्हें आत्मा का पता नहीं है, तब तक तुम्हारे लिए शरीर है और शरीर की बनती छाया है--जिस दिन तुम्हें आत्मा का पता चलेगा, उस दिन तुम पाओगे, अरे! आत्मा है; आत्मा की छाया शरीर है; आत्मा की छाया की छाया बाहर पड़ रही है। जिस दिन तुम्हें भीतर का पता चलेगा, शरीर छाया की तरह तुम्हारे पीछे चलने लगता है। छाया को चलाना तो नहीं पड़ता। तुम कोड़े तो नहीं चलाते कि छाया पीछे आए; छाया आती है। जब तक तुम्हें अपना पता नहीं है, तभी तक अड़चन है।
"सुंदर व्रतधारी... ।"
कौन है सुंदर व्रतधारी? जिसके व्रत समझ से आविर्भूत हुए, प्रज्ञा से आविर्भूत हुए; जिसने जीवन को जाना, देखा, पहचाना, समझा, जीया; जो जीवन में परिपक्व हुआ; जिसका फल पका और गिरा; कच्चा नहीं टूटा; जिसके जीवन में व्रत आए हैं।
तुम कभी-कभी व्रत ले लेते हो। तुम जाकर मंदिर में व्रत ले लेते हो कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं। तुम व्रत क्यों लेते हो? अगर तुम्हें समझ आ गई है तो व्रत की कोई जरूरत नहीं, तुम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गए हो। अगर समझ नहीं आई तो व्रत तुम अपने ऊपर जबरदस्ती करने को ले रहे हो, ताकि भय रहे कि मंदिर में व्रत लिया है, समाज के सामने व्रत लिया है, किसी साधु पुरुष के सामने व्रत लिया है; अब कैसे तोड़ें?
तुम किसलिए व्रत लेते हो? मेरे देखे गलत लोग ही व्रत लेते हैं। ठीक लोग व्रत में जीते हैं, लेने का कोई सवाल नहीं। लेने का मतलब ही यह है कि तुम अपने भीतर द्वंद्व पैदा कर रहे हो। तुम कहते हो, बहुत क्रोध किया, अब जाकर कसम खा लेते हैं, अब क्रोध न करेंगे।
लेकिन यह कसम की जरूरत क्यों है? क्या अभी भी क्रोध करने की संभावना है? क्या तुम सोचते हो कल तुम फिर भी क्रोध करोगे, अगर कसम न लो? तो कसम लेने से कल आने वाला क्रोध कैसे रुकेगा? कसमों से क्रोध के रुकने का क्या लेना-देना है? अगर कसमों से क्रोध रुकते होते तो सभी के रुक सकते थे। सभी कसम ले लेते; कसम लेने में क्या बनता-बिगड़ता है?
नहीं, तुम अपने साथ एक खेल खेल रहे हो। क्रोध किसलिए आता है? जब भी अहंकार को चोट लगती है, क्रोध आता है। अब तुम उसी अहंकार का उपयोग क्रोध को दबाने के लिए कर रहे हो। तुम कहते हो, जाकर समाज के सामने, समूह के सामने, व्रत ले लेंगे खड़े होकर कि अब हम क्रोध न करेंगे। अब यह तुम्हारे अहंकार की अकड़ होगी। कि अगर तुमने क्रोध किया तो लोग कहेंगे, अरे! गिरते हो? पतित होते हो?
एक आदमी संन्यासी हो जाता है, मुनि हो जाता है, तो लोग जुलूस निकालते हैं, शोभायात्रा निकालते हैं, बड़ा उत्सव मनाते हैं। यह तरकीब है। यह तरकीब है कि अब लौटना मत; नहीं तो जूते पड़ेंगे। क्योंकि यह शोभायात्रा का उलटा हो जाएगा।
मेरे पास संन्यासी आते हैं, मैं उनको चुपचाप दे देता हूं। वे कहते हैं, आप कुछ इसके लिए उत्सव वगैरह नहीं करते?
मैंने कहा, इसलिए ताकि भागने की तुम्हें सुविधा रहे। तुम कल छोड़ना चाहो तो कोई अड़चन न आए। मैं तुम्हारे संन्यास को अहंकार नहीं बनाना चाहता। यह तुम्हारी मौज है। तुमने लिया, तुम छोड़ना चाहो, तुम छोड़ सकते हो। यह कोई व्रत नहीं है, यह कोई कसम नहीं है, यह तुम्हारा बोध है। अगर बोध ही खो गया और फिर कसम ही हाथ में रह गई तो क्या करोगे।
विनोबा जी ने एक नवविवाहित युवक और युवती को ब्रह्मचर्य का व्रत दिलवा दिया। मैं उस आश्रम में मेहमान था तो वे दोनों मेरे पास आए।
उन्होंने कहा, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं; हम बड़ी कठिनाई में पड़ गए हैं।
तोड़ें तो कठिनाई; क्योंकि लगता है, यह तो पाप होगा, भयंकर पाप होगा। न

तोड़ें तो कठिनाई; क्योंकि चौबीस घंटे सिवाय कामवासना के और कोई विचार नहीं है। रात हम दो अलग कमरों में सोते हैं। मैं अपनी तरफ से ताला लगा लेता हूं और चाबी खिड़की से दूसरी तरफ फेंक देता हूं, ताकि रात कहीं मैं वासना के ज्वर में ताला खोलकर पहुंच न जाऊं। तो चाबी पत्नी के पास रहती है, वहां ताला नहीं है, वह खोल नहीं सकती। ताला मेरी तरफ रहता है, वहां चाबी नहीं है।
मगर यह ब्रह्मचर्य हुआ? असुंदर हो गया व्रत। इस ब्रह्मचर्य से शांति आएगी तुम सोचते हो? पागलपन आएगा। ये दोनों के दोनों पागल हो जाएंगे--ये पागल हो ही गए हैं। अहंकार की अड़चन आ रही है अब। अब वे कहते हैं कि व्रत ले लिया है, सब के सामने व्रत ले लिया, तालियां बजीं। हम खड़े हुए तो बड़े हम प्रसन्न हुए कि कोई महान कार्य कर रहे हैं; अब इसको तोड़ें कैसे? अब अहंकार बाधा बन रहा है। अब रातभर सो नहीं सकते। अब बेचैन हैं। अभी युवा हैं, स्वाभाविक है; गलती उनकी नहीं; गलती होगी तो विनोबा की है।
जो स्वाभाविक है, उसको समझ से जाने दो; जल्दी मत करो। जीवन में जल्दी बड़ी घातक है। अधैर्य क्या है! परमात्मा पर भरोसा रखो। जैसे वासना आई है, वैसे ही वासना चली भी जाती है। तुम जरा साक्षीभाव रखो। देखो, भरपूर देखो हर चीज को। वासना है तो उसे भी देखो; जरूर कुछ उपयोग होगा उसका; अन्यथा होती ही नहीं। अकारण कुछ भी नहीं है। और देखने के बाद ही तुम्हारी ही अंतर्बोध की दशा बनेगी कि व्यर्थ है; फिर कसम लेने का क्या सवाल उठेगा? तो मेरे देखे, गलत लोग कसम लेते हैं, ठीक लोग कसम लेते नहीं। ठीक को कसम की जरूरत नहीं है। गलत झंझट में पड़ जाता है।
"सुंदर व्रतधारी... ।"
लेकिन इसका बौद्ध भिक्षुओं से अर्थ पूछना, तो वे बिल्कुल और करते हैं। वे कहते हैं, जिन्होंने व्रत लिया, वे सुंदर हैं--सुंदर व्रतधारी। उसका यह अर्थ नहीं करते, जो मैं कर रहा हूं। वे कहते हैं, जिन्होंने व्रत लिया वे सुंदर हैं; जिन्होंने व्रत नहीं लिया, वे असुंदर हैं। सुंदर हैं व्रतधारी; व्रतहीन असुंदर हैं।
अब तुम समझ लेना; दोनों में से जो तुम्हें चुनना हो, चुन लेना। मैं यह कहता हूं कि सुंदर व्रतधारी तभी है, जब व्रत जीवन की समझ से आया हो; लिया न गया हो, आया हो, उतरा हो, बोध बना हो; फिर कोई लेने की जरूरत ही नहीं है। तुम उसे जीयोगे, क्योंकि उससे विपरीत जीना असंभव हो जाएगा। जो व्यर्थ हो गया उसे कैसे जीयोगे? लेकिन कसम क्यों लोगे?
तुम रोज सुबह घर का कचरा-कूड़ा साफ करके फेंक देते हो। तुम जाकर कसम लेते हो मंदिर में कि रोज घर साफ करेंगे, कचरा-कूड़ा बाहर फेंकेंगे? कचरा- कूड़ा है, इसे तुम फेंकोगे नहीं तो करोगे क्या? इसका अगर तुम व्रत लेने जाओगे तो लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे, मामला क्या है, दिमाग खराब हुआ? कचरा- कूड़ा फेंकना ही पड़ता है, इसमें व्रत क्या है?
व्रत तो तुम तभी लेते हो, जब तुम कहते हो, सोने का त्याग करेंगे। अब समझना; अगर सोना कचरा-कूड़ा हो गया तो व्रत लेने की जरूरत नहीं; तब सुंदर व्रत का जन्म होगा। तुम सुंदर व्रतधारी हो जाओगे। व्रतधारी रहोगे, व्रत लेने वाले नहीं। व्रत धारण करोगे, मगर वह धारणा अंतर से जन्मेगी। किसी बाहर, किसी के सामने, किसी के अनुमोदन, किसी की तारीफ-प्रशंसा का सवाल नहीं है। इसके लिए कोई बाहर प्रमाणपत्र लेने की जरूरत नहीं है, तुम्हारी अंतःप्रज्ञा काफी प्रमाणपत्र है। चुपचाप तुम अपनी समझ को जीयोगे। धीरे- धीरे तुम्हारे जीवन में एक सौंदर्य बजने लगेगा। तुम्हारी बीन बजने लगेगी।
"सुंदर व्रतधारी, तादि पृथ्वी के समान नहीं क्षुब्ध होने वाला।"
पृथ्वी जैसे अक्षुब्ध बनी रहती है, थिर बनी रहती है, ऐसा थिर होता है। कोई भी चीज उसे क्षुब्ध नहीं कर पाती।
"और इंद कील के समान अकंप होता है।"
जिस कील पर पृथ्वी घूमती है--सारी पृथ्वी घूमती रहती है, लेकिन कील तो ठहरी रहती है। जैसे गाड़ी के चाक में कील होती है, सारा चाक घूमता रहता है,

गाड़ी चलती रहती है, कील ठहरी रहती है। जीवन चलता रहता है, चाक चलता रहता है, लेकिन भीतर सब ठहरा रहता है।
अब जिनको तुम त्यागी कहते हो, वे ऐसे हैं, जिन्होंने चाक का त्याग कर दिया, कील ही रह गए। कील का क्या मजा, जो चाक में न हो! कील कील ही कहां, जो चाक में न हो! यात्रा ही टूट गई। फिर अगर कील न घूमती हो तो न घूमने का सार क्या? गाड़ी चलती रहे, चाक घूमता रहे, कील न घूमे। कील घूमेगी तो गाड़ी बिखर जाएगी, गिर जाएगी, टूट जाएगी, चाक गिर जाएगा, चल न पाएगा।
सब घूमने वाली चीजें किसी न घूमने के सहारे चलती हैं। गति का आधार अगति है। इस सारे संसार के घूमने का आधार उस परमात्मा में है, जो नहीं घूमता। इस तुम्हारे सारे शरीर के घूमने का आधार उस चैतन्य में है, जो ठहरा हुआ है। यह तुम्हारे मन के सारे परिभ्रमण का आधार उस आत्मा में है, जो कभी नहीं घूमती--इंद कील है; उसकी पहचान चाहिए।
चाक को रोकने की जरूरत नहीं है, चाक को चलने दो, मजे से चलने दो, तुम कील के साथ अपना तादात्म्य कर लो। तब तुम संसार में होते हो और संसार तुम में नहीं होता। तब तुम हजार रास्तों पर चलते हो, लेकिन कोई रास्ता तुम्हें विकृत नहीं कर पाता। तब तुम कितनी ही यात्रा करो, यात्रा तुम्हारे जीवन में व्याघात नहीं बनती।
सुंदर व्रतधारी ऐसा ही व्यक्ति है, जो संसार में हो और संसार जिसमें न हो--कमलवत।
"पृथ्वी के समान नहीं क्षुब्ध होने वाला, इंद कील के समान अकंप होता है।"
तुम तब तक कंपित होते ही रहोगे, जब तक तुम्हारी कोई मांग है। जब तक तुम्हारी कोई आकांक्षा है, जब तक तुम कुछ बाजार से खरीदना चाहते हो, तब तक तुम कंपित होते ही रहोगे।
तुमने कभी देखा, उसी बाजार से तुम कई बार निकलते हो, अलग-अलग मौकों पर, अलग-अलग ढंग से निकलते हो। कभी तुम निकलते हो फुरसत से तो हर खिड़की, हर द्वार के सामने, हर दुकान के सामने रुककर एक नजर डाल लेते हो--क्या है! कहां क्या बिक रहा है! कहां क्या हो रहा है! न भी खरीदना हो तो भी खरीदने की आकांक्षा पैदा करते हुए बाजार से गुजरते हो।
कभी तुमने देखा कि तुमने उपवास किया हो तो उसी बाजार से गुजरते हो, लेकिन अब जूते की दुकानें नहीं दिखाई पड़तीं, अब सिर्फ मिठाई की दुकानें दिखाई पड़ती हैं। तुम बदल गए, सड़क वही है। अब तुम्हें वही दिखाई पड़ता है, जो तुम्हारी मांग है; जो तुम्हारी अतृप्ति है।
कभी तुमने देखा, उसी बाजार से निकलते हो, घर में आग लग गई, भागे चले जा रहे हो। कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। बाजार वही है, दुकानें लगी हैं, न अब जूते की दुकान दिखाई पड़ती है, न कपड़े की, न मिठाई की; कुछ नहीं दिखाई पड़ता। रास्ते पर कोई जय राम जी भी करे तो भी सुनाई नहीं पड़ता। कोई कुछ कहे, समझ में नहीं आता। बाजार में इतना शोरगुल मचा हुआ है, तुम उसमें से ऐसे निकल आते हो, जैसे कुछ भी नहीं छूता--घर में आग लगी है। यह कोई फुरसत का वक्त थोड़े ही है! कल अगर कोई आदमी तुमसे कहेगा कि रास्ते पर मिले थे, तो तुम पहचान न पाओगे, तुम याद न कर पाओगे। याद भी न बनी। इतनी भी लकीर न छूटी। यास की बस्ती में इक छोटी सी उम्मीदे-विसाल
अजनबी की तरह से फिरती है घबराई हुई
यह जो आकांक्षाओं का संसार है, इसमें कुछ पाने की आशा, किसी से मिलने
की आशा, कुछ भोग की आकांक्षा, एक अजनबी की तरह फिरती है घबराई हुई।
इसलिए तुम इतने कंपित हो, इतने परेशान हो। भीतर तुम कंप ही रहे हो पूरे समय। जब तक वासना है, तब तक कंपन होगा। अगर अकंप होना हो--और अकंप हुए बिना, होना होने जैसा नहीं है--तो यह जो वासना भटकाती है एक अजनबी की तरह, द्वार-द्वार पर भिखारी की तरह भटकाती है, इस वासना के स्वरूप को समझ लेना होगा। इस वासना के स्वरूप को खूब गहरी आंख से देखना होगा। इसे आंख गड़ाकर देखना, इसके आर-पार देखना, तुम वहां कुछ भी न पाओगे। तुमने अब तक देखा ही नहीं, इसलिए तुम उलझे हो; देखते ही तुम मुक्त हो जाओगे।

और जब तक तुम इससे मुक्त नहीं होते, तब तक तुम उसे न देख सकोगे, जो तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है; जो तुम हो। नजर एक ही तरफ हो सकती है--या बाहर, या भीतर। या तो घर के भीतर आओ, या घर के बाहर; तुम दोनों जगह साथ-साथ न हो सकोगे।
आईने की तरह गाफिल खोल छाती के किवाड़
देख तो कौन बारे तेरे कासाने के बीच
कौन तेरे हृदय के मंदिर में कैसा सौभाग्य लिए छिपा बैठा है।
आईने की तरह गाफिल खोल छाती के किवाड़
मगर यह फुरसत कब मिले? तुम्हारे हाथ तो कहीं और हजारों किवाड़ों को पकड़े खड़े हैं। न मालूम कितने किवाड़ों पर तुम्हारे हाथ दस्तक दे रहे हैं। फुरसत कहां?
मेरे पास लोग आते हैं, उनसे मैं कहता हूं, कुछ ध्यान करो। वे कहते हैं, समय कहां? फुरसत कहां?
ठीक ही कहते हैं। फुरसत कहां है? समय कहां है? वे कहते हैं, जब समय मिलेगा, तब करेंगे। मैं उनको कहता हूं, कभी भी न मिलेगा। क्योंकि जिंदगी जैसे-जैसे हाथ से जाने लगेगी, वैसे-वैसे तुम और भी तड़फकर और भी घबड़ाकर दौड़ने लगोगे चारों तरफ। और विक्षिप्त होकर... अभी तक कुछ मिला नहीं।
आए भी लोग, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए
मैं जा ही ढू.ंढता तेरी महफिल में रह गया
तो जैसे-जैसे ब.ुढापा करीब आएगा, तुम्हारा पागलपन बढ़ेगा। तुम और घबड़ाकर भागने लगोगे। मौत करीब आने लगेगी। मौत दस्तक देगी तुम्हारे द्वार पर, तब तुम न मालूम कितने करोड़ों द्वार पर दस्तक देते फिर रहे होओगे।
मौत इसीलिए घटती है कि तुम्हें कभी घर में नहीं पाती। जिस दिन मौत तुम्हें घर में पा लेती है, उसी दिन घटती नहीं; उसी दिन तुम अमृत को उपलब्ध हो जाते हो। मौत आ जाती है और तुम नहीं मरते--पर अपने घर में तुम्हें पाए तभी।
"सम्यक ज्ञान के द्वारा विमुक्त, उपशांत अर्हत का मन शांत होता है, उसकी वाणी शांत होती है, उसका कर्म शांत होता है।"
जैसे ही आनंद भर जाता है भीतर, सब शांत हो जाता है। मन शांत होता है, वाणी शांत होती है, कर्म शांत हो जाता है।
इसे समझना। मन शांत होता है, इसका क्या अर्थ? इसका अर्थ होता हैः मन का
जब उपयोग करना हो, तभी गतिमान होता है; जब न उपयोग करना हो, तब शून्य रहता है, शांत रहता है।
बुद्ध भी बोलेंगे तो बोलेंगे तो मन से ही; लेकिन जब नहीं बोलते, तब मन नहीं होता है। जैसे तुम जब नहीं चलते तो पैर बैठे रहते हैं, चलते नहीं। असल में उनको, जब तुम नहीं चला रहे हो, पैर कहना ठीक नहीं; क्योंकि पैर तो वही हैं, जो चलते हैं। जब चलते हैं, तभी पैर हैं। जब चल ही नहीं रहे तो पैर क्या कहना! नहीं के बराबर हैं। नहीं हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं; क्योंकि चलना हो तो चल सकते हैं। शांत हैं।
मन शांत होता है बुद्ध पुरुषों का; इसका अर्थ हुआ कि खाली बैठे हों तो चलता नहीं। तुम्हारा मन, खाली बैठे हो तब और भी चलता है और भी भागता है। तुम लाख उपाय करो रोकने के, रुकता नहीं। जितना रोकना चाहो, और दौड़ता है, और भागता है, और बेचैनी बढ़ती है। बहुत लोग हैं, जो चाहते हैं, मन शांत हो जाए।
लेकिन जब तक वासनाओं की समझ नहीं आई, मन शांत होगा ही नहीं।
मन इसलिए दौड़ रहा है, मन कहता है, क्या कर रहे हो? शांत करने की बात कर रहे हो, अभी कुछ मिला तो नहीं। अभी कुछ पाया नहीं, अभी शांत कैसे हो जाएं? मिलते ही शांत हो जाता है। उसकी झलक मिलते ही शांत हो जाता है।
तो मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम मन को शांत करने की कोशिश करो, मैं तुमसे कहता हूं, तुम उसकी झलक पाने की कोशिश करो। विधायक करो तुम्हारी प्रक्रिया को। मन से मत लड़ो, मन को चलने दो। उपेक्षा करो। ठीक है चले। तुम थोड़ी सी उसकी झलक पाने की सीधी कोशिश में लगो। किसी दिन झलक मिल जाएगी, उसी क्षण तुम पाओगे, मन एकदम सन्नाटे से भर गया। उस घड़ी में तुम चलाना चाहोगे तो न चलेगा। उसकी मौजूदगी में--सत्य कहो उसे, परमात्मा कहो, निर्वाण कहो,

आत्मा कहो--उसकी मौजूदगी में मन एकदम शांत हो जाता है। तुम मन को शांत करने की निरर्थक कोशिश में मत लगे रहना; वह शांत होगा ही नहीं। वह शांत तभी होता है, जब मालिक आ जाता है।
जैसे किसी स्कूल की क्लास में छोटे बच्चे नाच-कूद रहे हैं, शोरगुल मचा रहे हैं, शिक्षक प्रविष्ट हुआ, शांति छा जाती है, सन्नाटा हो जाता है। सब अपनी जगह बैठ गए, किताबें उठा लीं, पढ़ने-लिखने लगे, ऐसा दिखलाने लगे कि जैसे कोई शोरगुल था ही नहीं; कहीं कोई बात ही न थी।
बस, सम्राट को भीतर बुला लो! मालिक जरा सा आ जाए, सब शांत हो जाता है। "सम्यक ज्ञान के द्वारा... ।"
कौन से ज्ञान को सम्यक ज्ञान कहते हैं बुद्ध? जो ज्ञान शास्त्र से मिले, वह मिथ्या; जो ज्ञान जीवन से मिले, वह सम्यक। जो ज्ञान जीवन से मिले, वही ज्ञान। जो ज्ञान और किसी ढंग से मिल जाए, वह ज्ञान का धोखा, आभास, उधार। ठीक ज्ञान वही है, जो जीवन का निचोड़ हो।
"सम्यक ज्ञान के द्वारा विमुक्त, उपशांत अर्हत का मन शांत हो जाता है, उसकी वाणी शांत हो जाती है।"
बोलता है अर्हत--तत्व को उपलब्ध व्यक्ति--लेकिन उसके बोलने में भी न बोलने की गंध होती है। बोलता है, शब्दों का उपयोग करता है, लेकिन उसके शब्द निःशब्द से आते हैं।
दो तरह से बोला जा सकता हैः या तो तुम्हारे भीतर बहुत ज्यादा शब्द भरे हों, उन शब्दों को तुम बाहर निकालो; जैसा कि साधारणतः हम बोलते हैं। भीतर कुछ गूंज रहा है, क्या करें, उसे निकालना जरूरी है! तो लोग एक-दूसरे पर अपना कचरा फेंकते रहते हैं।
एक ऐसी भी घड़ी है बोलने की, जब तुम्हारे भीतर बोलने को कुछ भी नहीं है;
जब तुमने शून्य को जाना; और जब शून्य को तुम समझाना चाहते हो; जब तुम शून्य को ही समझाने के लिए शब्द का उपयोग करते हो; जब शब्द के सहारे और शब्द की नाव पर तुम शून्य को भरकर भेजते हो।
फर्क तुम्हें समझ में आ जाएगा। क्योंकि दोनों तरह के शब्दों का गुणधर्म बदल जाता है। अगर तुम शांत व्यक्ति के शब्द सुनोगे तो सुनते- सुनते तुम शांत होने लगोगे। अगर अशांत व्यक्ति के पास तुम कुछ भी न कहे, चुपचाप भी बैठ जाओगे, तो भी अशांत होने लगोगे; उसकी अशांति तरंगायित होने लगेगी।
"उसकी वाणी शांत होती है, उसका कर्म शांत होता है।"
करता है वह। अगर बुद्ध चालीस साल जीए बुद्धत्व को पाने के बाद तो कुछ
न कुछ किया ही--चले, उठे, बैठे, समझाया, जगाया लोगों को, झकझोरा, एक हवा पैदा की कि उस हवा में कुछ कलियां खिल जाएं, कुछ बीज फूट जाएं, अंकुरित हों-- लेकिन न करने जैसा है। उठता है और उठता नहीं। चलता है और चलता नहीं। बोलता है और बोलता नहीं।
झेन फकीर बड़े मजे की बात कहते हैं। वे कहते हैं कि यह बुद्ध कभी पैदा
ही नहीं हुआ। बुद्ध के भक्त हैं वे, बुद्ध की पूजा करते हैं मंदिर में, लेकिन कहते यह हैं कि बुद्ध कभी पैदा ही नहीं हुआ। कहते यह हैं कि यह आदमी अगर पैदा भी हुआ तो कभी बोला नहीं। अगर यह बोला भी तो इसने कभी कुछ कहा नहीं।
ठीक ही कहते हैं। क्योंकि जब बुद्ध पैदा होते हैं तो बुद्ध शुद्धोधन
के घर पैदा नहीं होते, महामाया की कोख से पैदा नहीं होते; बुद्ध तो उस दिन पैदा होते हैं, जिस दिन महामाया और शुद्धोधन के द्वारा पैदा हुआ बेटा मर जाता है; जिस दिन गौतम सिद्धार्थ मर जाता है, जिस दिन वह अहंकार, वह सीमाओं में बंधा हुआ रूप समाप्त हो जाता है। बुद्ध का जन्म तो समाधि में होता है। समाधि यानी महामृत्यु।
तो ठीक कहते हैं झेन फकीर, कि यह आदमी कभी पैदा नहीं हुआ। क्योंकि यह आदमी ऐसा है, यह घटना ऐसी है कि मौत में ही घटती है, जन्म में नहीं घटती।
इसे थोड़ा समझना।
जन्म तो हम सबका हुआ है, हममें से सौभाग्यशाली हैं वे, जो समाधि की मृत्यु को उपलब्ध हो जाएंगे। मरेंगे हम सब, सौभाग्यशाली हैं वे, जो स्वयं

मृत्यु में प्रविष्ट हो जाएंगे। मौत सबकी आएगी, लेकिन वह दुर्घटना होगी। अगर तुम मौत में अपनी स्वेच्छा से प्रविष्ट हुए, अगर तुमने अपने होने को अपने हाथ से मिटा डाला, पोंछ डाला, अगर तुमने अपने अहंकार को अपने हाथ से उतारकर रख दिया और तुमने न-कुछ होने की हिम्मत की, तो महामृत्यु घटेगी। बुद्धत्व का जन्म तो महामृत्यु में होता है, इसलिए बुद्ध का जन्म हुआ,
यह कहना गलत। बुद्ध का कभी जन्म होता ही नहीं, मृत्यु ही होती है; उसी मृत्यु में से आविर्भाव होता है। और फिर बुद्ध कुछ बोले हों, यह कहना ठीक नहीं। क्योंकि बुद्धत्व का सारा स्वभाव अबोल का है, मौन का है, शून्य का है, शांत का है।
ठीक कहते हैं झेन फकीर। फिर भी पूजा करते हैं इस आदमी की, जो नहीं हुआ। पूजा करते हैं इस आदमी की, इसके शास्त्रों का वाचन करते हैं रोज मंदिर में, जिसने कभी कुछ नहीं कहा। इसके वचनों का मूल्य ही इसीलिए है कि इसके पास कहने को कुछ भी नहीं था, सिर्फ शून्य था। शब्दों का सहारा लेकर शून्य के पक्षी उड़ाए। शब्दों की सीमा बांधकर शून्य के फूल खिलाए।
शब्दों की सीमा जरूरी पड़ती है, क्योंकि तुम शब्द ही समझ पाओगे, तुम शून्य न समझ पाओगे।
मैं तुम्हारी तरफ शून्य फेंकूं--फेंक रहा हूं--वह तुम्हारी झोली में नहीं पड़ता। शून्य को पकड़ने की झोली तुम्हारी तैयार नहीं। शून्य की झोली अर्थात ध्यान, वह तैयार नहीं। शब्द फेंकता हूं, तुम्हारी झोली में पड़ जाते हैं। शब्द की मछलियां तुम्हारे जाल में अटक जाती हैं। शून्य की मछलियां तुम्हारे जाल से बाहर सरक जाती हैं।
लेकिन शब्द की इन मछलियों में अगर तुमने गौर किया, अगर इन शब्द की मछलियों में तुमने खोजा, अगर शब्द की इन मछलियों में तुमने झांका, तो कहीं- कहीं अटके हुए शून्य को भी तुम पाओगे।
जैसे आंगन में भी आकाश है, छोटे से घड़े में भी आकाश है, ऐसे शब्द में भी शून्य है। वह शून्य ही तुम्हें मिल जाए, इतना ही शब्द का उपयोग है।
बुद्ध पुरुष, अर्हत पुरुष, सम्यक ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति करते हैं, लेकिन उनका करना कर्ता के भाव से शून्य है। वहां करने वाला कोई भी नहीं है।
बुद्ध ने कहा है, मैं चलता हूं, लेकिन चलने वाला कोई भी नहीं है। मैं बोलता हूं, लेकिन बोलने वाला कोई भी नहीं है। मैं भोजन करता हूं, लेकिन भोजन करने वाला कोई भी नहीं है।
यह जरा अड़चन की बात है, तर्क के बाहर हो जाती है; समझ में नहीं आती।
समझने की जरूरत भी नहीं है। ध्यान रखना, धर्म वहीं शुरू होता है, जहां तुम समझ के ऊपर उठने के लिए राजी हो जाते हो। जब तक समझ है, तब तक कुछ और होगा। समझ की सीमा जहां आती है, वहीं से धर्म की सीमा शुरू होती है।
हम जानते थे अक्ल से कुछ जानेंगे
जाना तो यह जाना कि न जाना कुछ भी
समझने की बहुत बात नहीं है, जागने की बात है। सोचने की बात नहीं है, होश लाने की बात है। इसलिए पर्दा नहीं है सत्य के ऊपर कि तुम्हारे सोचने में कुछ कमी है--तुम तो जरूरत से ज्यादा सोच ही रहे हो--पर्दा इसीलिए है कि तुम बहुत सोच रहे हो और आंखें विचारों से भरी हैं; और निर्विचार आंख ही देख सकती है।
सम्यक ज्ञान का अर्थ हैः ऐसा ज्ञान, जो सोचने से नहीं मिलता, विचारने
से नहीं मिलता; ऐसा ज्ञान, जो निर्विचार होने से फूट पड़ता है--झरने की तरह, जैसे कोई चट्टान हटा दी हो, दबा झरना प्रगट हो गया हो।
आह पर्दा तो कोई मान-ए-दीदार नहीं
अपनी गफलत के सिवा कोई दरो-दीवार नहीं
सत्य पर कोई पर्दा नहीं है। पर्दा है तो अपनी गफलत का है, अपनी बेहोशी
का है। वह अपनी ही आंख पर है।
सत्य तो नग्न खड़ा है तुम्हारे सामने, तुम आंखें बंद किए खड़े हो। या आंखें भी खुली हैं तो आंखों पर बड़े पर्दे हैं विचारों के, बेहोशी के।

विचार एक प्रकार की बेहोशी है, जिसमें तुम खोए रहते हो--सपना है, जागते- जागते देखा गया।
बुद्ध को समझना हो तो समझ से काम न चलेगा, समझ को हटाना पड़ेगा; फिर से नासमझ होना पड़ेगा; फिर से लौटना पड़ेगा बचपन की तरफ; फिर से बचपन जैसा निर्दोष भाव, फिर से बच्चों जैसा खाली मन, फिर से जिज्ञासा से भरी आंखें-- ज्ञान से भरा हुआ मस्तिष्क नहीं--फिर से उत्फुल्लता, फिर से एक ताजगी। अगर तुम अपने बचपन को फिर लौटा लाओ--जीसस ने कहा है, जो बच्चों की तरह होंगे, वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे--अगर तुम अपने बचपन को फिर लौटा पाओ तो ही तुम बुद्ध पुरुषों के वचन समझने में समर्थ हो सकोगे।
धम्मपद पर बहुत टीकाएं हैं, लेकिन अक्सर पंडितों की हैं, शास्त्रज्ञों की हैं। उन टीकाओं में मूल बात खो जाती है। टीकाएं कुछ खोल नहीं पातीं, जो पहले ही बंद था, उसे और बंद कर जाती हैं। टीकाओं के ऊहापोह में वह दीया, जो बुद्ध ने जलाया, उसे देखना और भी मुश्किल हो जाता है।
मैं कोई टीका नहीं कर रहा हूं। यह कोई बुद्ध के वचनों की व्याख्या नहीं है। यह जैसा मैं देखता हूं, मेरी दृष्टि को ही कह रहा हूं; बुद्ध तो बहाना हैं। जैसे खूंटी पर कोई कोट को टांग देता है, ऐसे मैं बुद्ध पर अपने को टांग रहा हूं। इससे बुद्ध का कुछ लेना-देना नहीं है।
और इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, इसीलिए ये वचन बुद्ध के बहुत करीब हैं। इनको मैंने सोच-विचारकर नहीं तुमसे कहा है, इनके सत्य को मैंने अलग से जाना है। धम्मपद को पढ़कर मैंने धम्मपद के सत्य को नहीं जाना; सत्य को मैंने जाना है, फिर धम्मपद में देखा। धम्मपद मुझे गवाह मालूम पड़ा।
सरल होओ थोड़े; समझ से काम न होगा। समझ बड़ी नासमझी है। होशियारी में चूकना मत। शास्त्रों को थोड़ा हटाओ, थोड़ी सरलता से, खाली आंखों से--तर्क जाल से नहीं--देखो; और सम्यक दृष्टि बहुत दूर नहीं है।
जिस जगह सदियों के सिजदे रहे नाकामयाब
उस जगह इक आह तकमीले-इबादत हो गई
जहां सैकड़ों वर्ष तक की प्रार्थनाएं व्यर्थ हो जाएं, कभी-कभी वहां सरल हृदय से उठी एक छोटी सी आह, प्रार्थना की पूर्णता बन जाती है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
अड़तीसवां प्रवचन

कुछ खुला आकाश

पहला प्रश्नः जब तक वासना है, कामना है, क्या तभी तक साधना है?

स्वभावतः रोग है तो औषधि है। स्वास्थ्य आया, औषधि व्यर्थ हुई। स्वास्थ्य में भी कोई औषधि लिए चला जाए तो घातक है। जो रोग को मिटाती है, वही रोग को फिर पैदा करेगी।
मार्ग की जरूरत है, मंजिल दूर है तब तक; मंजिल आ जाए फिर भी जो चलता चला जाए, तो जो चलना मंजिल के पास लाता था, वही फिर दूर ले जाएगा।
और प्रश्न महत्वपूर्ण है, क्योंकि अक्सर ऐसा ही होता है। बीमारी तो छूट जाती है, औषधि पकड़ जाती है। क्योंकि मन का तर्क कहता है, जिसने यहां तक पहुंचाया, उसे कैसे छोड़ दें? जो इतने दूर ले आया, उसे कैसे छोड़ दें? जिसके सहारे इतना कुछ पाया, कहीं उसके छोड़ने से वह खो न जाए।
तो अनेक यात्री मंजिल के पास पहुंचकर भी भटक जाते हैं। और बहुत सी नावें किनारे के पास आकर टकराती हैं और डूब जाती हैं। मझधार में बहुत कम लोग डूबते हैं, किनारे पर बहुत लोग डूबते हैं। यात्रा पूरी उतनी दुर्गम नहीं है, जितनी पहुंच जाने के बाद चलने की जो लंबी आदत है, उसको छोड़ना दुर्गम हो जाता है।
चित्त में अशांति है तो तुम ध्यान करते हो। धीरे-धीरे अशांति विदा होगी, शांति निर्मित हो जाएगी। फिर ध्यान को मत पकड़कर बैठ जाना; नहीं तो ध्यान ही अशांति पैदा करने का कारण बनेगा। फिर ध्यान भी जाना चाहिए। अंधेरे में भटकते हो, किसी कल्याण मित्र का हाथ पकड़ा, फिर रोशनी आ जाए, सुबह हो जाए, तो अब हाथ को पकड़े ही मत रह जाना। हाथ का पकड़ना भी आना चाहिए, छोड़ना भी आना चाहिए।
साधन का उपयोग करना है, साधन की गुलामी नहीं अख्तियार कर लेनी है। राह
पर चलना जरूर है, पर राह सिर्फ राह है, इसे जानते रहना है।
बहुत विधियां हैं; जो काम आ जाए, उसका उपयोग कर लो, लेकिन काम पूरा होते ही छोड़ देना। क्षणभर की देरी भी खतरनाक हो सकती है। क्योंकि जो खाली जगह छूट जाती है तुम्हारे भीतर, कहीं ऐसा न हो कि विधि, व्यवस्था, साधना उस खाली जगह में अड्डा जमा ले।
तो यह तो ऐसे हुआ कि तुम्हारे सिंहासन पर दुश्मन ने कब्जा किया था, तुमने मित्रों का साथ लिया, उन्होंने दुश्मन को तो हटा दिया, लेकिन खुद सिंहासन पर विराजमान हो गए। तुम जहां थे वहीं रहे; शायद पहले से भी बुरी हालत में हो गए। दुश्मन हो तो सिंहासन छीन लेना आसान भी, मित्रों से कैसे छीनोगे? अपने हैं, मित्र हैं, इनके द्वारा ही तो सिंहासन मिला है; इनसे कैसे छीनोगे?
इसलिए सदगुरु की परिभाषा समझो। सदगुरु की परिभाषा यह है कि जो एक क्षण भी जरूरत से ज्यादा तुम्हारे हाथ को न पकड़े रहे।
तुम तो पकड़ना चाहोगे। तुम तो बड़े उलझाव में हो। जब पकड़ने की जरूरत होती है, तब तुम पकड़ने से डरते हो। जब जरूरत है कि तुम हाथ पकड़ लो, तब तुम हजार उपाय करते हो न पकड़ने के। तुम्हारा अहंकार बाधा बनता है। तुम भागते हो, तुम बचते हो, तुम छिपाव करते हो। जब जरूरत थी पकड़ लेने की, झुक जाने की, समर्पित हो जाने की, तब तुम अकड़े खड़े रहते हो। बामुश्किल तुम झुकते हो। बड़ी कठिनाई से तुम हाथ पकड़ते हो। जब जरूरत थी, तब पकड़ने में तुम बाधा डालते हो। फिर जब घड़ी आएगी छोड़ने की, तब तुम छोड़ने में बाधा डालोगे। तब तुम छोड़ोगे नहीं, तब तुम जिद बांधकर बैठ जाओगे। तब तुम कहोगे, यह छोड़ने वाला हाथ नहीं, इसी ने पहुंचाया। ये चरण हम कभी न छोड़ेंगे।
सदगुरु वही है, जब तुम पकड़ना नहीं चाहते, पकड़ा दे; और जब तुम छोड़ना नहीं चाहते, तब छुड़ा दे।
साधना का कोई अर्थ नहीं है फिर। कांटे की तरह है साधना--एक कांटे को निकाल लिया, दूसरे को भी साथ ही फेंक दिया। तुम कोई सदा-सदा के लिए साधक मत

बन जाना। मार्ग की बात है, उपाय है; साधन है, साध्य नहीं है। साध्य जैसे ही करीब आने लगे, वैसे ही साधन से अपने हाथ छुड़ाना शुरू कर देना। वाहन पर सवार होते हो, मंजिल करीब आ जाती है, उतर जाते हो।
प्रकृति का नियम यही है एक
कि अति का होगा ही विध्वंस
एक अति है वासना, कि खो गए, भटक गए--संसार में, व्यर्थ में, बाजार में। फिर एक दूसरी अति है कि बचाने में लग गए अपने को--संसार से, व्यर्थ से, बाजार से। ये दोनों अतियां हैं। इन दोनों में कहीं भी समत्व नहीं है। जरूरी है साधना, क्योंकि एक अति पर चले गए तो दूसरी अति पर जाना जरूरी
हो गया है। लेकिन जैसे ही एक अति कट जाए, दूसरी अति भी तत्क्षण छोड़ देना; अन्यथा घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमते रहोगे; बाएं से दाएं, दाएं से बाएं जाते रहोगे। रुक जाना है कहीं बीच में।
देखा, जब घड़ी का पेंडुलम बीच में रुक जाता है, घड़ी रुक जाती है। घड़ी यानी समय। जहां तुम संतुलित हुए, अति गई, वहीं समय के बाहर हुए। जब तक तुम डोलते रहते हो एक कोने से दूसरे कोने, तब तक घड़ी की टिकटिक चलती रहती है; तब तक समय चलता रहता है; तब तक संसार चलता रहता है। तुम्हारा मन का पेंडुलम ही सारे संसार को चलाए जाता है।
तुमने कभी किसी नट को देखा रस्सी पर चलते? पूरे समय बाएं से दाएं, दाएं
से बाएं होता रहता है। जब बाएं झुकता है तो एक घड़ी आ जाती है कि अगर और थोड़ा झुका तो गिरेगा; तत्क्षण दाएं झुक जाता है, ताकि बाएं की अति से जो भूल हुई जा रही थी, वह दाएं झुकने से पूरी हो जाए। लेकिन तब फिर दाएं में ऐसी घड़ी आ जाती है कि अब जरा और झुका कि गिरा; फिर तत्क्षण बाएं झुक जाता है, ताकि जो अति हो रही थी, उसका संतुलन हो जाए। ऐसे झुकता है दाएं से बाएं, बाएं से दाएं, और इसी भांति किसी तरह अपने को रस्सी पर बनाए रखता है।
लेकिन जब नीचे उतर आया, फिर थोड़े ही दाएं-बाएं झुकता रहेगा! फिर तो बैठ जाएगा; फिर तो झुकेगा ही क्यों? फिर तो खड़ा हो जाएगा, भूमि मिल गई। अब कोई रस्सी पर थोड़े ही चल रहा है।
संसार में चलना तनी हुई रस्सी पर चलने जैसा है। प्रतिक्षण तुम्हें झुकना ही पड़ेगा। अभी प्रेम, अभी घृणा; अभी सहानुभूति, अभी क्रोध; यह दाएं- बाएं है।
मेरे पास प्रेमी आते हैं; वे पूछते हैं कि कैसे यह घटना घटे कि हम जिससे प्रेम करते हैं, उस पर क्रोध न करें? मैं कहता हूं, यह न हो सकेगा। इसके लिए तो संसार की रस्सी से उतरना पड़ेगा। यह तो संसार की रस्सी पर तुम प्रेम करोगे तो क्रोध करना ही पड़ेगा। क्योंकि प्रेम में ज्यादा झुके, गिरने का डर हो जाता है; क्रोध की तरफ मुड़े, सम्हल गए। क्रोध में भी ज्यादा झुकोगे तो डर हो जाएगा, तो फिर पत्नी के लिए फूल खरीद लाए, आइसक्रीम ले आए। फिर थोड़ा प्रेम किया; फिर खतरा पैदा हो जाता है। तो जिससे तुम प्रेम करोगे, उससे ही घृणा भी करते रहोगे। और जिससे तुम्हारे मन का लगाव है, उससे ही तुम राग भी रखोगे, उससे ही दुश्मनी भी चलती रहेगी।
पश्चिम में एक बहुत अनूठी किताब कुछ वर्षों पहले प्रकाशित हुई, उस किताब का नाम हैः दि इन्टीमेट एनीमी। वह पति-पत्नी के संबंधों के संबंध में किताब हैः दि इन्टीमेट एनीमी।
लेकिन यह तो सूझ इसको अभी-अभी आई। उर्दू में शब्द है, हिंदी में भी उपयोग होता हैः खसम। खसम का मतलब होता है, पति। और खसम का मतलब शत्रु भी होता है। मूल अरबी में तो शत्रु होता है। कैसे शत्रु से पति हो गया, बड़े आश्चर्य की बात है। कोई जोड़ नहीं दिखाई पड़ता। मूल शत्रु है, फिर पति कैसे हो गया? जरूर लोग पकड़ गए होंगे बात। सूत्र समझ में आ गया होगा, ख्याल में आ गया होगा कि जिससे प्रेम है, उससे दुश्मनी भी है।
जहां प्रेम है, वहां घृणा है। जहां लगाव है, वहां विराग भी। जहां-जहां राग है, वहां-वहां वैराग्य आता ही रहेगा।
तुमने कभी ख्याल किया, कितनी बार नहीं घर से भाग उठने का मन हो जाता है! छोड़ो पत्नी-बच्चे! मगर स्टेशन भी न पहुंच पाओगे कि लौट आओगे। इसको कोई

स्थाई बात मत समझ लेना। यह कोई स्थाई भाव नहीं है, यह तो कई बार आता है। कितनी बार आदमी मरना नहीं चाहता!
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसने जिंदगी में
कम से कम दस बार आत्मघात का विचार नहीं किया हो। यह जरूरी है। जिंदगी अति हो जाती है, मरने का भाव करके सम्हाल लेते हैं। जीवन बोझिल हो जाता है, भारी हो जाता है, मरने की कल्पना से ही राहत मिल जाती है। मरता कौन है! राहत मिल गई, फिर जिंदगी में लग जाते हैं। यह तो जिंदा रहने का ही ढंग है। तो कोई अगर मरने वगैरह की बातें करे तो बहुत चिंतित मत होना; कहना, ठीक है, मरो! मैं एक घर में रहता था कुछ दिनों तक। नया-नया मेहमान था उस परिवार में, कुछ उस परिवार का रीति-रिवाज मुझे पता न था। एक दिन मैंने रात को कोई ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे पति-पत्नी में झगड़ा सुना। मैं चुप ही रहा, मेरे बोलने का कोई कारण नहीं बीच में। लेकिन बात यहां तक बढ़ गई कि पति ने कहा कि मैं अभी जाकर मर जाऊंगा। तो थोड़ा मैं चिंतित हुआ कि अब--मेहमान भी हूं तो भी क्या हुआ! फिर भी मैंने कहा कि अभी जाने दो, तब देखूंगा। वे गए भी; जब उनको मैंने घर के बाहर भी निकलते देख लिया तो मैं भागा। मैंने उनकी पत्नी से कहा, अब कुछ करना पड़ेगा। उसने कहा, फिकर मत करो; अभी पांच-सात मिनट में वापस आते हैं। वे पांच-सात मिनट में वापस भी आ गए।
सुबह मैंने उनसे पूछा कि कहां तक गए थे? उन्होंने कहा कि पता नहीं क्या मामला है, कई दफा ऐसा हो जाता है। गुस्से में चला जाता हूं, रेल की पटरी पास ही है, बस वहां तक पहुंचा कि सब ठीक हो जाता है; फिर वापस लौट आता हूं। जीने का हिस्सा है।
ऐसे हम अपने को धोखा दे लेते हैं कि चलो, मरे जाते हैं; अब तो बात खतम हुई। मरने के ख्याल से ही जीवन का बोझ क्षणभर को नीचे उतर गया; फिर उठाकर रख लेंगे सिर पर। कहीं कोई इतने जल्दी मरा जाता है! तुमसे मैं कहता हूं, जो मर भी जाते हैं--कुछ लोग जल्दबाजी कर लेते हैं और मर जाते हैं--अगर वे तुम्हें मिल जाएं तो वे पछताते मिलेंगे। वे कहेंगे, जरा जल्दी कर दिए; क्षणभर और ठहर जाते। कुछ लोग तेजी में गुजर जाते हैं, जल्दी कर लेते हैं। क्षणभर में घट जाए तो घट जाए, जरा विलंब हो जाए तो तुम वापस लौट आओगे। यह मन का ढंग है।
कि जीवन आशा का उल्लास
कि जीवन आशा का उपहास
कि जीवन आशा में उदगार
कि जीवन आशाहीन पुकार
दिवा-निशि की सीमा पर बैठ
निकालूं भी तो क्या परिणाम
विहंसता आता है हर प्रात
बिलखती जाती है हर शाम
सुबह हंसती हुई मालूम होती है, सांझ रोती हुई मालूम होती है; द्वंद्व नहीं है लेकिन। सुबह हंसती हुई मालूम हुई, इसीलिए सांझ रोती हुई मालूम होती है। सुबह मुस्कुराती आती है, वही मुस्कुराहट सांझ आंसू बन जाती है। यह जीवन की सहज व्यवस्था है।
आशा-निराशा, उजाला-अंधेरा, मित्रता-शत्रुता--ऐसे हम नट की तरह रस्सी
पर सधे रहते हैं। वासना-साधना; भोग-योग--ऐसे हम रस्सी पर सधे रहते हैं।
जानना तो तुम उस दिन भूमि मिली, जिस दिन न भोग रह जाए, न योग रह जाए; न वासना रह जाए, न साधना रह जाए; न प्रेम रह जाए, न घृणा रह जाए; न क्रोध रह जाए, न अक्रोध रह जाए; सारे द्वंद्व खो जाएं तो तुम उतर आए।
वही है मुक्ति की भूमि। वही है मुक्ति का आकाश।
अब तुम रस्सी पर नहीं हो। अब सम्हालने की कोई जरूरत ही नहीं है। अब गिरने का कोई खतरा ही नहीं है, सम्हालेगा कोई क्यों? सम्हालते तो हम तब हैं, जब गिरने का खतरा होता है। स्वर्ग और नर्क, जब तुम दोनों से नीचे उतर आए, तब है मोक्ष की भूमि। स्वर्ग और नर्क के बीच खिंची है रस्सी; उसी रस्सी पर चल रहा है संसार।

साधना निश्चित ही समाप्त हो जाती है वासना के साथ। साधना और वासना जुड़वां बहनें हैं। सुनकर तुम्हें हैरानी होगी। कोई साधु यह बात तुमसे न कहेगा। इसलिए साधु मुझसे नाराज हैं।
साधना, वासना जुड़वां बहनें हैं, उनकी शकलें बिल्कुल एक जैसी हैं। वे साथ ही साथ पैदा हुई हैं और साथ ही साथ मर जाती हैं।
साधना की जरूरत को कोई बड़ा सौभाग्य मत समझ लेना। कोई दवाई की बोतल को सिर पर लेकर शोभायात्रा मत निकाल देना; वह केवल रोग की खबर है। तुम्हारे घर में चिकित्सक रोज-रोज आता है, इसे तुम ऐसा मत समझ लेना कि तुम बड़े महिमाशाली और सौभाग्यशाली हो।
एक अत्यंत हिंदू बुद्धि के व्यक्ति मुझे मिलने आए थे; कहने लगे, भारत भूमि बड़ी सौभाग्यशाली है। मैंने कहा, कारण? कहने लगे, देखो, हिंदुओं के चौबीस अवतार, जैनों के चौबीस तीर्थंकर, बुद्धों के चौबीस बुद्ध, सभी यहां हुए।
मैंने कहा, यह तो दुर्भाग्य मालूम होता है। इतने तीर्थंकर, इतने अवतार, इतने बुद्ध पैदा होते हैं, इतने चिकित्सक आते हैं; बीमार की हालत बड़ी बुरी है। साफ है कि बड़ा दुर्भाग्य होगा। इतने बार चिकित्सक आते हैं और चिकित्सकों की जरूरत बनी ही रहती है, इसे तुम सौभाग्य का मुकुट मत समझो। वे थोड़े चौंके। उन्हें कभी इसका विचार भी न आया होगा। वे कहने लगे कि बात में तो थोड़ा अर्थ मालूम होता है। अगर देश सच में ही धार्मिक हो तो अवतारों की क्या जरूरत है? मैंने उनसे कहा, अपनी गीता ही उलटकर देखो; कृष्ण कहते हैं, जब अंधेरा होगा और धर्म भ्रष्ट हो जाएगा और साधु पीड़ित किए जाएंगे, तब मैं आऊंगा। साफ है कि कृष्ण वहीं आएंगे, जहां अधर्म होगा। और अगर यहां आए तो अधर्म होना चाहिए। इसको तुम धार्मिक देश मत कहना। और मुल्कों में नहीं आए, जरूर हमसे बेहतर हालत में होंगे।
चिकित्सक की जरूरत रोगी को है। अवतार की जरूरत अधार्मिक को है। दीए
की जरूरत अंधेरे में है। सुबह होते ही हम दीया बुझा देते हैं। क्या जरूरत? इसीलिए तो दीवाली हम अमावस की रात में मनाते हैं। जब गहन अंधकार होता
है तो दीयों के अवतार पंक्तिबद्ध फैला देते हैं। सबसे अंधेरी रात वर्ष की जो है, उस वक्त हम सबसे ज्यादा दीए जलाते हैं। दिन में कोई दीवाली मनाएगा, उसे हम पागल कहेंगे।
अगर मैं ध्यान करूं तो मैं पागल हूं; अगर तुम ध्यान न करो तो पागल हो। मुझसे लोग आ जाते हैं पूछने कि आप ध्यान कब करते हैं? मैंने कहा, मैं कोई पागल हूं? मेरा दिमाग खराब हुआ है? वे कहते हैं कि फिर हमें क्यों समझाते हैं? तो मैं समझाता हूं, क्योंकि अगर तुम न करोगे तो तुम पागल हो। बात सीधी है। उलटी लगती है, जरा भी उलटी नहीं है। पहुंच गए, मंजिल समाप्त हुई; चलना क्या है? पा लिया, खोज बंद हुई; खोजना क्या है?
साधना का उपयोग करना, यही उस शब्द का मतलब है। साधना का अर्थ हैः साधन; साध्य नहीं। जब तुम सिद्ध हो जाओगे, साध्य मिल जाएगा, साधना भी छूट जाएगी। इसे याद रखना, मोह मत बनाना साधना से।
रामकृष्ण ने बहुत दिनों तक भक्ति की साधना की। भक्ति की साधना तो की, लेकिन मन में कहीं एक पीड़ा खलती रही। और वह पीड़ा यह थी कि अभी अद्वैत का अनुभव नहीं हुआ। आंख बंद करते हैं, महिमामयी मां की मूर्ति खड़ी हो जाती है, लेकिन एकांत, परम एकांत--जिसको महावीर ने कैवल्य कहा--उसका कोई अनुभव नहीं हुआ; दूसरा तो मौजूद रहता ही है। परमात्मा सही, लेकिन दूसरा तो दूसरा ही है। और जहां तक दो हैं, वहां तक संसार है। जहां तक द्वंद्व है--मैं हूं, तू है--वहां तक संसार है।
रामकृष्ण बड़े पीड़ित थे। फिर उन्हें एक संन्यासी मिल गया अद्वैत का साधक, सिद्ध। तोतापुरी उस संन्यासी का नाम था। रामकृष्ण ने पूछा, मैं क्या करूं? अब कैसे मैं इस द्वंद्व के पार जाऊं? तोतापुरी ने कहा, बहुत कठिन नहीं है। एक तलवार उठाकर मां के दो टुकड़े कर दो।
रामकृष्ण तो कंप गए, रोने लगे--मां के और टुकड़े! और यह आदमी कैसी बात कर रहा है धार्मिक होकर!

परम धर्म इसी भाषा में बोलता है। परम धर्म तलवार की भाषा में बोलता है।
जीसस ने कहा है, मैं तलवार लाया हूं। मैं शांति लेकर नहीं आया हूं, तलवार लेकर आया हूं। तोड़ दूंगा सब। टूटने पर ही तो शांति होगी।
तोतापुरी ने कहा, इसमें अड़चन क्या है?
रामकृष्ण ने कहा, तलवार कहां से लाऊंगा वहां?
तोतापुरी हंसने लगा। उसने कहा, जब मां को ले आए--कहां से लाए? कल्पना
का ही जाल है। बड़ी मधुर है कल्पना, बड़ी प्रीतिकर है, पर तुमने ही सोचा, माना, रिझाया, बुलाया, आह्वान किया, कल्पना को सजाया हजार-हजार रंगों में, वही कल्पना आज साकार हो गई है। तुमने ही उसमें प्राण डाले हैं। तुमने ही अपनी ज्योति उसमें डाली है। तुमने ही उसे ईंधन दिया, अब ऐसे ही एक तलवार भी बना लो और काट दो।
रामकृष्ण आंख बंद करते, कंप जाते। जैसे ही मां सामने खड़ी होती, हिम्मत
ही न होती। तलवार--और मां! परमात्मा को कोई काटता है तलवार से? आंख खोल देते घबड़ाकर कि नहीं, यह न हो सकेगा।
तो तोतापुरी ने कहा, न हो सकेगा तो बात ही छोड़ दो फिर कैवल्य की। मैं चला! मेरे पास समय खराब करने को नहीं है। करना हो तो यह आखिरी मौका है। और यह बचकानी आदत छोड़ो। यह क्या मचा रखा है? रोना, आंसू बहाना! उठाकर एक तलवार हिम्मत से दो टुकड़े तो कर।
रामकृष्ण ने कहा, मेरी कुछ सहायता करो। लगती है बात तुम ठीक कह रहे हो; लेकिन बड़े भाव से सजाया, बड़े भाव से यह मंदिर बनाया है। जीवनभर इसी में गंवाया है, यह मुझसे होता नहीं।
तोतापुरी ने कहा, तो फिर मैं तेरी सहायता करूंगा। वह एक कांच का टुकड़ा उठा लाया और उसने कहा कि जब तेरे भीतर मां की प्रतिमा बनेगी तो मैं तेरे माथे पर कांच से काट दूंगा। जब मैं काटूं और तुझे पीड़ा हो और खून की धार बहने लगे, तब तू भी एक हिम्मत करके भीतर की मां को उठाकर तलवार काट देना। बस, फिर मैं न रुकूंगा। करना हो, कर ले।
अब यह जाने लगा तो बेचारे रामकृष्ण को करना पड़ा। इस आदमी ने उठाकर उनके माथे पर कांच के टुकड़े से लकीर काट दी, खून बहने लगा। जैसे ही उसने लकीर काटी, रामकृष्ण भी हिम्मत किए और तलवार उठाकर भीतर कल्पना को खंडित कर दिया। कल्पना के खंडित होते ही कैवल्य उपलब्ध हो गया। लेकिन बड़ी अड़चन हुई, बड़े दिन लगे।
साधन से भी आदमी की आसक्ति बन जाती है। तुम अगर प्रतिमा बना लेते हो
मन में तो उसे छोड़ना मुश्किल हो जाएगा। तुमने अगर ध्यान किया, ध्यान छोड़ना मुश्किल हो जाएगा। प्रार्थना की, प्रार्थना छोड़नी मुश्किल हो जाएगी। और ध्यान रखना, छोड़ना तो पड़ेगा ही। क्योंकि ये उपचार थे, इन्हें किसी कारण से पकड़ा था। इनके पकड़ने की शर्त ही खो गई।
यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई नया मकान बनाता है तो एक ढांचा खड़ा करता है, ढांचे के सहारे मकान बना लेता है। फिर मकान बन जाता है तो ढांचे को गिरा देता है। अब तुम्हारा कहीं ढांचे से मोह हो जाए और तुम ढांचे को न गिराओ तो तुम्हारा भवन रहने योग्य न हो पाएगा। ढांचा रहने न देगा। जब भवन बन गया तो ढांचा गिरा देना। जब सीढ़ी चढ़ गए तो सीढ़ी छोड़ देनी है।
इसलिए पहले से ही अगर ध्यान रहे इस बात का कि साधना का उपयोग तो कर लेना है, लेकिन साधना के हाथ में मालकियत नहीं दे देनी है, तो शुभ होता है।

दूसरा प्रश्नः संसार को, बाजार को छोड़कर अपने को पा लो, यह आपने कहा। कृपया बताएं कि प्रेम संसार के बाजार में है या अपने भीतर? और क्या प्रेम का क्षेत्र भीतर और बाहर दोनों तरफ नहीं है?

समझना पड़े।
काम तो बिल्कुल बाहर है। कामना, बाहर की तरफ भागती हुई ऊर्जा का नाम है; जिसे भीतर की याद भी नहीं रही, जिसे याद भी नहीं रही कि भीतर जैसा भी कुछ है। कामना बाहर जाती हुई, बहिर्मुखी ऊर्जा है।

साधना, प्रार्थना, भक्ति--कोई नाम दो--भीतर जाती ऊर्जा है, जिसे याद भी
न रहा कि बाहर है, जिसे ख्याल भी न रहा कि बाहर जैसी भी कोई चीज है।
कामना बाहर, प्रार्थना भीतर; दोनों अतियां हैं। प्रेम दोनों के मध्य में है, दोनों के बीच में है। जैसे कोई अपनी देहली पर खड़ा हो--न बाहर जा रहा है, न भीतर जा रहा है, ठिठक गया हो; जैसे कोई दोनों तरफ देख रहा हो, बीच में खड़ा हो।
प्रेम मध्य बिंदु है प्रार्थना और कामना के बीच में।
काम हार गया है, प्रार्थना अभी पैदा नहीं हुई। कामना व्यर्थ दिखाई पड़ने लगी है, सार्थक का अभी उदय नहीं हुआ। यात्रा जैसे थम गई है। प्रेम एक ठिठकी अवस्था है। बाहर जाने जैसा नहीं लगता; हार गए वहां; राख ही राख पाई, मुंह का स्वाद सिर्फ बिगड़ा और कुछ भी न हुआ; और भीतर का अभी कुछ पता नहीं है। एक बात पक्की हो गई, बाहर व्यर्थ हो गया और भीतर के द्वार अभी खुले नहीं। बीच में ठिठककर खड़ी हो गई जो ऊर्जा है, वही प्रेम है।
अगर तुमने जल्दी न की प्रेम को प्रार्थना बनाने की तो फिर कामना बन जाएगा। प्रेम के क्षण जब भी आएं तो दो ही संभावनाएं हैं; ऊर्जा ज्यादा देर तक ठिठकी न रहेगी, क्योंकि ठिठका होना इस जगत की व्यवस्था नहीं है। कोई ऊर्जा ठहरी नहीं रह सकती; या तो जाएगी बाहर, या जाएगी भीतर--जाना पड़ेगा। ऊर्जा यानी गति, गत्यात्मकता।
तो एक क्षण को ठहर सकती है। उस ठहरे क्षण का उपयोग कर लो तो प्रेम भक्ति बन जाता है, या प्रार्थना बन जाता है। अगर उपयोग न करो तो प्रेम फिर कामना बन जाता है, फिर वासना बन जाता है।
इसलिए प्रेमी की बड़ी पीड़ा है। और पीड़ा यही है कि बहुत बार ठिठक आ जाती
है और फिर-फिर ऊर्जा बाहर चली जाती है। प्रेम के बहुमूल्य क्षण का उपयोग करना बहुत थोड़े लोग जानते हैं। जो प्रेम के बहुमूल्य क्षण का उपयोग कर लेते हैं, उनके भीतर प्रार्थना का उदय हो जाता है।

अब इसे ख्याल में ले लेनाः काम अर्थात बाहर; प्रार्थना अर्थात भीतर; प्रेम यानी दोनों के मध्य में। और चौथी अवस्था है, दोनों के पार। चौथी अवस्था यानी परमात्मा।
इसलिए जीसस ने कहा है कि प्रेम जैसा है परमात्मा। ऐसा नहीं कहा है कि ठीक प्रेम ही बस परमात्मा है--नहीं तो परमात्मा की तो बात भी उठाने की जरूरत न रहे--प्रेम जैसा है। एक स्वभाव, एक समानता प्रेम और परमात्मा में है। प्रेम दोनों के मध्य में है, परमात्मा दोनों के पार है। प्रेम बाहर और भीतर के बीच में है, परमात्मा बाहर और भीतर के ऊपर है।
इस जीवन के हमारे जितने अनुभव हैं, उनमें प्रेम सर्वाधिक सूचक है परमात्म दशा का। प्रेम ठिठकता है, परमात्मा ठहरा हुआ है। प्रेम क्षणभर को परमात्मा बनता है, परमात्मा सदा को प्रेम है। प्रेम दो छोरों के बीच में एक थोड़ा सा पड़ाव है, थोड़ी सी राहत, थोड़ा सा विश्राम, विराम-चिह्न। परमात्मा पूर्ण विराम है--दोनों के पार।
परमात्मा की अवस्था में न तो कुछ बाहर है फिर, न कुछ भीतर है। बाहर और भीतर दोनों परमात्मा में हैं। परमात्मा के बाहर कुछ भी नहीं है, इसीलिए परमात्मा के भीतर कुछ है, कहने का कोई अर्थ नहीं; परमात्मा ही है। बस, परमात्मा है; बाहर-भीतर का कोई अर्थ नहीं रह जाता। उसके बाहर कुछ नहीं है तो भीतर कैसे कुछ होगा? यह द्वंद्व गिर जाता है।
प्रेम में भी यह द्वंद्व क्षणभर को ठहरता है, इसलिए प्रेम में थोड़ी सी झलक परमात्मा की है। बस, इस जगत में परमात्मा की झलक देने वाली घड़ी प्रेम की घड़ी है।
इसलिए तुम चकित होओगे, अगर मैं यह कहूं कि प्रार्थना भी परमात्मा के उतने निकट नहीं है जितना प्रेम; क्योंकि प्रार्थना फिर एक अति हो गई। बाहर से छूटे तो भीतर को पकड़ लिया; बाहर से भागे तो भीतर को पकड़ लिया। जरूरी है, भीतर को पकड़ना पड़ेगा बाहर से भागने के लिए। एक अति से बचने के लिए दूसरी अति पकड़नी पड़ेगी। और अभी दोनों के बीच में तुम ठहर न सकोगे। दोनों के बीच में ठहरने का तो उपाय, दोनों के पार हो जाना है।

लेकिन जब तुम पार हो जाओगे, तब तुम पाओगे, अरे! प्रेम का जो क्षणभर के लिए विराम आया था, परमात्मा वैसा ही है--शाश्वत होकर, सनातन होकर। प्रेम में जिसकी बूंद मिली थी, परमात्मा उसी का सागर है।
वासना में भी तुम हो, प्रार्थना में भी तुम हो। वासना में दृष्टि बाहर
की तरफ जा रही है, प्रार्थना में दृष्टि भीतर की तरफ जा रही है; प्रेम के क्षण में तुम नहीं होते। पर क्षण बड़ा छोटा है। शायद तुम पकड़ भी न पाओ इतना छोटा है; आणविक है, तुम्हारी पकड़ से भी चूक जा सकता है।
तो या तो तुम वासना को प्रेम कहते रहते हो, कामना को प्रेम कहते रहते हो--जो प्रेम नहीं है--या फिर अगर बदले तो प्रार्थना को, भक्ति को प्रेम कहने लगते हो। लेकिन प्रेम दोनों के बीच का बड़ा छोटा सा विराम है।
ऐसा ही समझो, एक श्वास भीतर जाती है, फिर श्वास बाहर आती है। तुमने ख्याल किया, भीतर जाने और बाहर आने के बीच में क्षणभर को श्वास कहीं भी नहीं जाती। पर क्षण बड़ा छोटा है, ख्याल करना उस पर। श्वास भीतर गई--छोटा सा विराम है; तब न तो भीतर जा रही है, न बाहर जा रही है--फिर बाहर गई, फिर छोटा सा विराम है, न तो अब बाहर जा रही है, न भीतर जा रही है।
इस छोटे से विराम को जिसने पकड़ लिया, वही प्रेम के विराम को भी पकड़ने में सफल हो पाएगा।
विज्ञान भैरव तंत्र में इस विधि को बड़ा मूल्य दिया गया है। जब श्वास न बाहर जाती है, न भीतर, जब सब ठहर गया होता है, उसमें ही डूब जाओ; वहीं से तुम द्वार पा लोगे परमात्मा का।
प्रेम भी ऐसी ही घड़ी है। कामना बाहर जाती है, प्रार्थना भीतर जाती है; प्रेम ऐसी घड़ी है, जब तुम न बाहर जाते, न भीतर जाते। और मजा यही है कि जब तुम न बाहर जाते और न भीतर जाते, तो तुम हो ही नहीं सकते। क्योंकि तुम केवल जाने में हो सकते हो, ठहरने में नहीं हो सकते। जब तुम्हारी श्वास ठहर जाती है, तब तुम नहीं होते; तुम मिट गए होते हो। अहंकार रह ही नहीं सकता वहां। अहंकार के लिए गति चाहिए। अहंकार के लिए सक्रियता चाहिए। अहंकार के लिए कर्म चाहिए। कुछ हो तो अहंकार बच सकता है; कुछ भी न हो रहा हो तो अहंकार कैसे बचेगा? अहंकार उपद्रव है। इसलिए अहंकारी शांत नहीं बैठ सकता।
मेरे पास अहंकारी आ जाते हैं; वे कहते हैं, ध्यान करना है, शांत बैठना है, लेकिन बैठ नहीं सकते शांत। अहंकारी शांत नहीं बैठ सकता, क्योंकि उसे लगता है कि यह तो समय व्यर्थ गया; इतनी देर में तो कुछ अहंकार की पूंजी कमा लेते, कोई पद पा लेते, कहीं आगे बढ़ जाते, किसी को धोखा दे लेते, कुछ कर लेते, कुछ होता, यह तो बेकार गया।
अहंकार के लिए ध्यान से ज्यादा व्यर्थ कोई चीज मालूम नहीं होती। कुछ व्यर्थ भी कर लेते तो भी कुछ किया तो! जुआ खेल लेते, ताश खेल लेते, किसी से बकवास कर आते, कुछ किया तो! थोड़ा साम्राज्य किसी तरह फैलाया तो! लेकिन ध्यान, कुछ भी न किया, खाली बैठ गए। अहंकार के लिए ध्यान एकदम व्यर्थ बात मालूम होती है, इससे ज्यादा व्यर्थ कोई बात नहीं।
पश्चिम में उन्होंने मजाक बना रखा है कि पूरब के लोग आंखें बंद करके अपनी नाभि को देखते रहते हैं। पता नहीं, पागल क्या कर रहे हैं! कुछ करो! ध्यान है, होने की अवस्था; अहंकार है, करने की अवस्था।
दो श्वासों के बीच में जब कुछ भी नहीं होता, तब तुम भी नहीं होते। काम
और भक्ति के बीच में जब विराम पड़ता है, तब भी तुम नहीं होते; यह काल संध्याकाल है।
रात जब तुम सोने जाते हो--जागरण जा चुका, नींद आई नहीं, क्षणभर को फिर विराम आता है, जब तुम न तो कह सकते हो जागे हो, न कह सकते हो सोए हो--आधे-आधे, मध्य में खड़े, देहरी पर खड़े। बाहर जाना बंद है, बाजार नहीं है; भीतर अभी गए नहीं; बीच में खड़े, फिर संध्याकाल आया, उसी संध्याकाल में अगर डूब जाओ तो जो पाने योग्य है, वह पा लिया जाता है। जो होने योग्य है, वह आदमी हो जाता है।
जीवन में इन संध्याकालों को ही वास्तविक द्वार कहा है। इसलिए हमने प्रार्थना को भी संध्या नाम दिया है। लोग कहते हैं, संध्या कर रहे हैं। संध्या करने का अर्थ भी नहीं समझते। संध्या करने का अर्थ हैः किन्हीं दो

अतियों के बीच में, मध्य को खोज रहे हैं। किन्हीं दो गतियों के बीच में विराम को खोज रहे हैं। सूरज ढल गया, रात नहीं हुई; प्रकाश जा चुका, अंधकार उतरने-उतरने को है--बस जरा सी देर है, क्षणभर में चूक जाओगे।
प्रेम का क्षण बहुत बारीक क्षण है। तुम श्वास से शुरू करो, अगर प्रेम
को पकड़ना हो। श्वास का अभ्यास करो; जहां श्वास ठहर जाती है, वहीं अपनी आंखों को गड़ाओ। और तुम बहुत चकित होओगे, अगर तुम उस विराम को पकड़ने में सफल हो गए, श्वास ज्यादा देर तक ठहरी रहेगी। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है, कई क्षण निकल जाएंगे, श्वास ठहरी रहेगी। कई मिनट निकल सकते हैं, कई घंटे भी निकल सकते हैं, और श्वास ठहरी रहे।
अगर तुम्हारा ठीक-ठीक हाथ पड़ जाए विराम पर, अगर तुम्हारा संयोग सध जाए विराम से, तो तुम एक ऐसे पारलौकिक दशा में लीन हो जाओगे कि खबर ही न रहेगी कि श्वास लेनी है; सब ठहर जाएगा। उस ठहरी दशा को ही हम समाधि, सतोरी का क्षण कहते हैं।
जब ऐसी दशा तुम्हें स्वाभाविक हो जाए कि जब तुम्हारी मर्जी हो, आंख बंद की और उतर गए, सीढ़ियां साफ हो जाएं, द्वार खुला रह जाए--तुम सिद्ध हो गए। फिर तुम बाहर जाओ तो भी तुम बाहर नहीं जा सकते, तुम भीतर जाओ तो भी भीतर नहीं जा सकते, क्योंकि तुम खो गए। तुम ही न बचे तो बाहर-भीतर भी गया। अब तो जो बचा, वही परमात्मा है।
कूचए-जानां की मिलती थी न राह
उस प्यारे का मार्ग न मिलता था।
कूचए-जानां की मिलती थी न राह
बंद की आंखें तो रस्ता खुल गया
आंख का बंद हो जाना--अर्थ क्या है? आंख तो तुम बहुत बार बंद करते हो, रास्ता कहां मिलता है? आंख तो तुम अभी बंद कर सकते हो, रास्ता कहां मिलता है? तो जरूर इस आंख से कुछ मतलब न होगा। आंख तभी बंद होती है तुम्हारी, जब कोई कामना नहीं रहती।
प्रार्थना भी एक तरह की कामना है, वहां भी मांग जारी है। परमात्मा के मंदिरों में बैठे लोगों के प्रार्थना के बाद फैले हुए हाथ भी वासना के ही हाथ हैं। परमात्मा के सामने झुके हुए सिर भी वासना के ही झुके हुए सिर हैं--कुछ मांग जारी है। अब बाहर का धन नहीं मांगते, भीतर का धन मांगते हैं-- मांग जारी है।
जहां तक मांग जारी है, वहां तक आंख खुली है। जहां तक तुम कुछ सोच रहे हो, मिल जाए, वहां तक आंख खुली है। जहां तुमने सोचना छोड़ा कि कुछ मिलने को है, कुछ मिलने का सवाल न रहा; तुम हो गए; जैसे हो बस, उसमें डूब रहे--आंख बंद हो गई। फिर आंख खुली भी रहे तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आंख बंद हो गई।
तुमने बुद्ध पुरुषों की मूर्तियां देखीं? आंख न तो खुली है और न बंद है, अधखुली है। अधखुली प्रतीकात्मक है; उसका अर्थ हैः न बाहर, न भीतर; जरा सी खुली है, नीचे की सफेद पुतली दिखाई पड़ती है।
इसलिए योग में व्यवस्था है कि ध्यानी जब ध्यान करने बैठे तो इस तरह बैठे कि सिर्फ नाक का अग्रभाग दिखाई पड़ता रहे, बस! इसका मतलब हुआ, आंख बस आधी खुली हो, आधी बंद हो। प्रतीकात्मक है, प्रयोजन केवल इतना है कि न तुम भीतर जाओ, न तुम बाहर जाओ, बीच में संध्याकाल में ठहर जाओ।
प्रेम संध्याकाल है।
तुम कहते हो, तुमने प्रेम जाना। प्रेम बहुत कम लोग जान पाते हैं, क्योंकि जिन्होंने प्रेम को जान लिया, उन्हें फिर परमात्मा को जानने में बाधा क्या रही? जिन्होंने प्रेम को जान लिया, फिर कोई कारण समझ में नहीं आता कि वे परमात्मा को जानने से क्यों वंचित रह गए हैं? यह हो नहीं सकता। जिनके हाथ में कुछ हीरे आ गए, उनके हाथ में पूरी खदान ही आ गई। हीरे ही न आए होंगे, कंकड़-पत्थरों को समझ लिया होगा हीरे हैं, इसलिए खदान नहीं मिली है। रामानुज के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मुझे परमात्मा से मिलना है। रामानुज ने उसे गौर से देखा और कहा कि तूने कभी किसी को प्रेम किया? उस आदमी ने कहा कि इन झंझटों में मैं कभी पड़ा ही नहीं। छोड़ें ये बातें। मुझे तो प्रेम से क्या लेना-देना? परमात्मा की खोज है।

लेकिन रामानुज ने कहा, तू थोड़ा सोच, कभी किसी से किया हो प्रेम? किसी
से भी किया हो, कोई याददाश्त तुझे आती हो?
उसने कहा कि आप भी कहां की बात कर रहे हैं! मैं परमात्मा की बात करता हूं, आप दूसरा ही विषय छेड़ रहे हैं। मैं साधक पुरुष हूं, विरागी हूं, प्रेम वगैरह की झंझट में मैं कभी नहीं पड़ा।
मगर रामानुज भी अजीब; वे फिर पूछे कि फिर भी तू सोच, क्योंकि सारी बात इसी पर निर्भर है। अगर तूने प्रेम का क्षण जाना हो तो फिर परमात्मा की शाश्वतता को भी जान सकेगा। अगर प्रेम की बूंद ही नहीं चखी तूने तो सागर को तू कैसे चखेगा? सागर में तू कैसे उतरेगा? लहर को तो पहचान, फिर सागर को पहचान लेंगे।
उस आदमी की समझ में न आया। वह शायद नाराज ही होकर चला गया। जिनको तुम विरागी कहते हो, उनको समझ में कैसे आएगा? जिनको तुम महात्मा कहते हो, वे तो प्रेम के दुश्मन बनकर बैठे हैं। उनका परमात्मा प्रेम के विपरीत है।
मैं जिस परमात्मा की बात कर रहा हूं, प्रेम उसका द्वार है। तुम्हारे महात्मा जिस परमात्मा की बात कर रहे हैं, वह परमात्मा है ही नहीं, वह सिर्फ प्रेम की शत्रुता है; वह केवल संसार के विपरीत दूसरी अति है। मैं जिस परमात्मा की बात कर रहा हूं, वह अति नहीं है, वह बाहर और भीतर दोनों का अतिक्रमण है। वह परम संतुलन की अवस्था है, पूर्ण विराम है।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि आप भी परमात्मा की बात करते हैं, हमारे गुरु हैं, वे भी परमात्मा की बात करते हैं, सब एक ही है। मैं उनको कहता हूं, इतना आसान नहीं है; सब एक ही है, कहना इतना आसान नहीं है। थोड़ा गौर से समझने की कोशिश करना। शब्द तो वही है; मैं भी परमात्मा शब्द का उपयोग करता हूं, तुम्हारे गुरु भी करते होंगे, लेकिन तुम्हें देखकर मैं कह सकता हूं कि तुम्हारे गुरु का परमात्मा और ही होगा--प्रेम से भयभीत, प्रेम के विपरीत, प्रेम का दुश्मन।
तो तुम्हारे महात्माओं का परमात्मा उनकी ईजाद है, असली नहीं। असली परमात्मा तो प्रेम के खेल को खेले चला जाता है। असली परमात्मा तो प्रेम के नए-नए रूप रचे जाता है। असली परमात्मा तो कितने रंग लेता है, कितने रूप लेता है, कितने रंगों, कितने रूपों में प्रेम का रास रचता है।
संसार के विपरीत नहीं हो सकता परमात्मा। संसार के पार हो सकता है, विपरीत नहीं। जो विपरीत है, वह तो जब संसार खतम हो जाएगा, वह भी खतम हो जाएगा। जो पार है, वही अतियों के पार बचेगा।
परमात्मा साधना नहीं है, सिद्धावस्था है। परमात्मा कोई विधि नहीं है, जैसा कि पतंजलि ने माना है कि परमात्मा विधि है, कि उसके आलंबन को लेकर, उसके प्रति समर्पण करके आदमी परम अवस्था को पहुंच जाता है। पतंजलि का परमात्मा विधि है, साधना का हिस्सा है; उसका उपयोग केवल इतना है कि तुम उसके सहारे समर्पण कर दो। मगर ऐसा परमात्मा तो जब तुम सिद्ध हो जाओगे, छूट जाएगा। जब तुम सिद्ध अवस्था को उपलब्ध होओगे तो ऐसे परमात्मा की क्या जरूरत रह जाएगी? यह तो मार्ग का ही हिस्सा था, यह खो जाएगा।
परमात्मा मार्ग नहीं है, मंजिल है। परमात्मा दाएं-बाएं नहीं, परमात्मा की अगर थोड़ी-बहुत झलक तुम्हें मिल सकती है तो मार्ग के ठीक मध्य में मिल सकती है। इसलिए बुद्ध ने अपने मार्ग को मज्झिम निकाय कहा हैः मध्य में, ठीक बीच में।
मगर बीच से भी सिर्फ झलक मिलती है। लेकिन बीच से अतिक्रमण जुड़ा है। उस बीच के बिंदु को तुम खोज लो तो पार जाने की सीढ़ी मिल सकती है।
ध्यान रखना, प्रेम से लोग इसलिए वंचित रह जाते हैं कि प्रेम की शर्त
ही पूरी करनी कठिन पड़ती है। प्रेम की शर्त हैः क्षणभर को मिटना; क्षणभर को ही सही, तिरोहित हो जाना।
बेदार राहे-इश्क किसी से न तय हुई
सहरा में कैस, कोह में फरयाद रह गया
कोई प्रेमी कभी प्रेम का मार्ग पूरा नहीं कर पाया। मजनू जंगल में खो गया, फरियाद पहाड़ों में।

प्रेमी कभी पहुंच नहीं पाता, खो जाता है। पहुंचने योग्य कोई बचता ही नहीं। प्रेमी मार्ग में ही गल जाता है और खो जाता है। लेकिन इसी खो जाने में पहुंचना है। जहां तुम खो जाते हो, वहीं परमात्मा हो जाता है। जहां तुम मिटते हो, वहीं वह घनीभूत होता है। तुम सिंहासन खाली करो तो ही इसकी संभावना है कि वह तुम्हारे सिंहासन पर विराज सके।
तुम अगर बैठे रहे सिंहासन पर--अवकाश कहां? स्थान कहां? परमात्मा को बुलाते हो, तैयारी कहां है तुम्हारी? कहां बिठाओगे? कहां उसे विराजमान करोगे? अहंकार तो रोएं-रोएं में भरा है। मैं का भाव तो श्वास-श्वास में समाया है। जगह कहां बची है तुम्हारे भीतर? जगह खाली करो।
प्रेम का अनुभव उन्हीं को हो पाता है, जो अपने को डुबाने, मिटाने को राजी हैं। जो डूबते हैं, यह नदी कुछ ऐसी है कि वे ही केवल पहुंचते हैं। जो डूबे, वे बचे। जो बचे, वे डूबे। अगर किनारे पर पहुंचना हो तो मझधार में डूब जाना ही उपाय है।
ठीक हैं ये पक्तियां--
बेदार राहे-इश्क किसी से न तय हुई
यह प्रेम का रास्ता कौन कब पूरा कर पाया? इसका यह कारण नहीं है कि रास्ता लंबा है, इसका यह कारण नहीं है कि रास्ता बहुत बड़ा है, इसलिए लोग पूरा नहीं कर पाए; इसका कारण कुल इतना ही है कि यह रास्ता ऐसा है कि इसे पूरा करने वाला बीच में खो ही जाए तो ही पूरा होता है। पूरा होने का एक ही अर्थ है कि बीच में ही खो जाए। अगर पहुंच जाए दूसरे किनारे तो रास्ता खो ही गया, पूरा हुआ ही नहीं। जो पूरा नहीं कर पाते, जो स्वयं इसको पूरा करने में पूरे हो जाते हैं, वे ही केवल पहुंचते हैं।
सहरा में कैस, कोह में फरयाद रह गया
सभी प्रेमी कहीं न कहीं खो गए--कोई रेगिस्तान में, कोई पहाड़ों में, कोई प्रार्थनाओं में, कोई साधनाओं में, कोई मंदिरों में, कोई मस्जिदों में। सभी प्रेमी कहीं न कहीं खो गए। जहां खोए, वहीं घड़ी है उस परम सौभाग्य की, परम आशीष की, परम प्रसाद की।

तीसरा प्रश्नः एक उलझन है; यदि ठीक समझें तो उसे स्पष्ट करने की कृपा करें। भगवान बुद्ध और आप दोनों कहते हैं, ध्यान से उपलब्ध आनंद को बांटो, ध्यान को बांटो। और दूसरी ओर ध्यान के अर्जन को गुप्त रखने की, छिपाकर रखने की बात भी कही जाती है।

निश्चित ही दोनों बातें कही जाती हैं, क्योंकि दोनों बातें सही हैं। उनमें विरोध नहीं है; विरोध दिखता हो तो केवल आभास है।
ध्यान मिले तो बांटो, लेकिन ध्यान जब तक न मिला हो, तब तक सम्हालो और छिपाओ। होगा तब तो बांटोगे! जल्दी बांटने की मत करना।
अक्सर नहीं होता तो भी बांटने की आकांक्षा पैदा हो जाती है। उपदेश देने का बड़ा रस है। किसी को समझाने में ज्ञानी होने का मजा आ जाता है। किसी को बताने में--चाहे तुम्हें पता हो या न हो--थोड़े क्षण को आभास होता है कि तुम्हें पता है।
इसीलिए तो दुनिया में सलाह इतनी दी जाती है, लेता कोई नहीं। कितने उपदेश दिए जाते हैं, कौन लेता है? उपदेशक पीछे घूमते हैं तुम्हारे; पकड़-पकड़कर समझाते हैं। उपदेशकों से बचकर निकलना मुश्किल है; उन्होंने सब राह, रास्ते रोक रखे हैं। जहां से जाओ, वहीं वे मौजूद हैं; मुक्तहस्त ज्ञान बांटते हैं, मुफ्त देने को तैयार हैं। मुफ्त ही देने को तैयार नहीं, साथ में कुछ प्रसाद भी देने को तैयार हैं--लो भर! फिर भी कोई लेने वाला दिखाई नहीं पड़ता।
ध्यान रखना, बांटना कहीं अहंकार से न निकलता हो; करुणा से निकले तब बात और। पर करुणा तो तब होगी, जब ध्यान सघनीभूत होगा, जब ध्यान एक मेघ बन जाएगा। बुद्ध ने इसलिए उसे मेघ-समाधि कहा है। जब एक घने मेघ की तरह, सघन मेघ की तरह वर्षा से भरे हुए तुम हो जाओगे--उसके पहले तो बूंद-बूंद मेघ इकट्ठी करता है। इकट्ठा हो जाए तो ही बरस सकता है।

मां गर्भवती हो, नौ महीने तक गर्भ को सम्हाले, तो ही जन्मदात्री हो सकती है। बिना गर्भवती हुए, बिना नौ महीने सम्हाले, बच्चों को जन्म देने की कल्पना करने में मत उलझ जाना। इससे धोखा पैदा होगा। इससे कोई और धोखे में न पड़ेगा, तुम्हीं धोखे में पड़ोगे। और खतरा है कि कहीं तुम दूसरों के जीवन को कोई नुकसान न पहुंचा दो। क्योंकि यह बड़ी बारीक, बड़ी नाजुक बात है। इसे तो जब तुम ठीक से जान ही लो, तभी किसी को जनाना। जब तुम्हारे पैर इस भूमि पर मजबूत जम जाएं, जब तुम्हारी जड़ें इस भूमि में पूरी फैल जाएं, तभी तुम किसी को समझाना।
तो बुद्ध ठीक कहते हैं, बांटो। पर हो, तब बांटोगे न!
सूफी फकीर भी ठीक कहते हैं कि सम्हालो। क्योंकि सम्हालोगे तभी तो होगा न!
सम्हालना पड़ेगा बहुत दिन, वर्ष-वर्ष, जन्म-जन्म; जब तुम्हारे भीतर घना
हो जाएगा तो बरसेगा। जरूरत है पहले सम्हालने की; पहले तुम्हारे पास हो, तुम्हारा दीया जलता हो तो तुम किसी और का दीया जलाने जाना। अपना दीया जलता ही नहीं, वहां बाती बुझी पड़ी है और तुम दूसरों के दीए जलाने निकल पड़ते हो। इस भ्रांति में मत पड़ना। बड़े छिपाकर रखना, जो भीतर आ रहा है। जिस दिन होगा, उस दिन तो खबर मिलनी शुरू हो जाएगी। जब फूल खिलता है तो हवाओं में गंध उठ जाती है। जब तुम्हारे पास होगा तो तुम छिपाकर भी छिपा न पाओगे। जिनको भी तलाश है, जिनको भी प्यास है, जिनको भी जुस्तजू है, खोज है, वे दूर से खिंचे चले आएंगे। पहाड़ और समुंदर भी उनके लिए बाधा न बनेंगे। जिन्हें प्यास नहीं है, जिन्हें खोज नहीं है, वे पास बैठे भी वंचित रह जाएंगे।
तुम चिंता मत करना। पहले तो तुम अपने को भर लो--ऐसा लबालब कि तुम्हारे ऊपर से बहने लगे--फिर जिनको प्यास है, वे खोजते चले आएंगे; वे सदा ही खोज रहे हैं। और तब तुम मुक्तहस्त बांटना। बांटोगे ही! बांटना ही पड़ेगा! भुनती वसुधा तपते नभ
दुखिया है सारा अगजग
कंटक मिलते हैं प्रतिपग
जलती सिकता का यह मग
बह जा बन करुणा की तरंग
जलता है यह जीवन पतंग
बह जा बन करुणा की तरंग
बहना ही होगा। बहना हो ही जाता है। क्योंकि ध्यान का अनिवार्य परिणाम करुणा है। जैसे दीया जलता है तो रोशनी फैलती है, ऐसे ध्यान का अनिवार्य परिणाम करुणा है।
बुद्ध ने इसे प्रतीक माना हैः प्रज्ञा और समाधि और करुणा। तीन की त्रिवेणी है, बुद्ध के सारे वचनों का सार। तीनों एक साथ घटती हैं। इधर समाधि, उधर भीतर ज्ञान का दीया जलता है, और बाहर करुणा की तरंगें फैलनी शुरू हो जाती हैं।
ये तीनों एक साथ घटती हैं। यह त्रिमूर्ति है। यह बुद्ध की ट्रिनिटी है। ये बुद्ध के ब्रह्मा-विष्णु-महेश हैं। यह बुद्ध का संगम है, तीर्थराज प्रयाग है। इसमें से दो दिखाई पड़ती हैं। एक दिखाई नहीं पड़ती। सरस्वती अदृृश्य है, गंगा-यमुना दिखाई पड़ती हैं। प्रज्ञा और करुणा दिखाई पड़ेगी, समाधि दिखाई नहीं पड़ेगी, वह सरस्वती है।
तुम किसी की समाधि नहीं देख सकते। मैं सामने बैठा हूं, तुम कैसे मेरी समाधि देख सकते हो! समाधि अदृश्य है। करुणा दिखाई पड़ सकती है, क्योंकि करुणा तुम पर बरसती है, समाधि मेरे भीतर है। प्रज्ञा दिखाई पड़ सकती है, ज्ञान दिखाई पड़ सकता है, क्योंकि ज्ञान तुम पर बरसता है। प्रकाश दिखाई पड़ सकता है प्रज्ञा का, क्योंकि तुम्हारे अंधेरे में किरणें उतरेंगी, उन किरणों की पहचान से तुम समझोगे, कहीं सूरज ऊगा है।
करुणा दिखाई पड़ सकती है, क्योंकि हलके-हलके पदचाप भी नहीं पड़ेंगे और तुम्हारे भीतर कोई प्रेम का प्रवाह आने लगेगा। तुम्हारे भीतर कोई लोरी गाने लगेगा। तुम्हारे हृदय की बीन पर कोई अंगुलियां संगीत को छेड़ने लगेंगी। तुम्हारे दुख से भरे जीवन में सुख की कोई तरंग आने लगेगी।

वे तुम्हें दिखाई पड़ सकती हैं, क्योंकि ज्ञान हो या करुणा हो, दोनों तुमसे संबंधित होंगी; समाधि तुमसे बिल्कुल असंबंधित है। पर समाधि के बिना ये दोनों नहीं घटती हैं। इसलिए बुद्ध ने कहा, जहां करुणा हो और जहां प्रज्ञा हो, जानना कि समाधि भी है। क्योंकि समाधि पहले हो, तब ये दोनों होती हैं।
ध्यान को सम्हालो पहले, ताकि किसी दिन करुणा में बांट सको। ध्यान को सम्हालो पहले, ताकि किसी दिन प्रज्ञा में उसकी ज्योति जले। निश्चित ही लोग बहुत पीड़ित हैं, चारों तरफ दुख है।
तो जब मैं कहता हूं कि ध्यान को सम्हालो, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम करुणा को खो दो; तुमसे यह कह रहा हूं कि अभी करुणा का मौका तो आने दो, मेघ तो बनो। वर्षा तो हो जाएगी। असली बात मेघ का बनना है। गर्भ तो हो, जन्म तो हो जाएगा।
भुनती वसुधा तपते नभ
दुखिया है सारा अगजग
कंटक मिलते हैं प्रतिपग
जलती सिकता का यह मग
बह जा बन करुणा की तरंग

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं, जीवन में कुछ भी अकारण और व्यर्थ नहीं है,
सब का उपयोग है। जीवन में कामना और भय का उपयोग दिखाई पड़ता है। क्या बताने की कृपा करेंगे कि वैसे ही ईर्ष्या, द्वेष और घृणा का क्या उपयोग है?

अनुपयोगी अस्तित्व में कुछ भी नहीं। तुम पहचान पाओ, न पहचान पाओ, यह बात दूसरी है। अनुपयोगी हो ही नहीं सकता, उपयोगी ही हो सकता है। सारा अस्तित्व जुड़ा है। हर चीज दूसरी चीज से उलझी है, बंधी है, अलग-अलग नहीं है। और दुर्घटना तो होती ही नहीं। जो भी होता है, उसकी कोई गहन संगति है। इसलिए अगर तुम्हें कभी ऐसा लगता हो कि कोई बात ऐसी है जिसका कोई उपयोग नहीं दिखाई पड़ता, तो समझना कि तुम कहीं भूल पर हो। और थोड़ा गहरे खोजना। क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दंतहीन
विषरहित विनीत सरल है
अगर क्रोध न हो, करुणा की सब शोभा ही नष्ट हो जाती है। अगर अंधेरी रात
हो तो ही सुबह का आनंद है। जीवन में जो भी है, उसका विपरीत पृष्ठभूमि का काम करता है।
घृणा है, घृणा का क्या अर्थ होता है? शब्द की बहुत फिक्र मत करो, शब्दकोश से मुझे कुछ लेना-देना नहीं। घृणा का अर्थ क्या होता है? अस्तित्वगत भाषा में घृणा का क्या अर्थ होता है? इतना ही अर्थ होता है कि तुम दूसरे से दूर जाना चाहते हो; और कुछ अर्थ नहीं होता। तुम दूसरे के पास नहीं जाना चाहते। विकर्षण! तुम दूसरे से हटना चाहते हो, दूर हटना चाहते हो--एक अर्थ।
अगर दूसरे से दूर हटने की यह संभावना न हो तो प्रेम की संभावना समाप्त
हो जाएगी। जब तुम सारे संसार से दूर हटते हो, तब कहीं तुम एक व्यक्ति के पास पहुंच पाते हो। सोचो कि घृणा समाप्त हो जाए, उसके साथ ही प्रेम भी समाप्त हो जाएगा। तो घृणा प्रेम के लिए सीढ़ी है।
हां, अगर तुम घृणा पर ही रुक गए तो चूक हो गई। वह तुम्हारी गलती है, उससे घृणा का कोई लेना-देना नहीं। घृणा कुल इतना ही कहती है कि किसी से दूर होने का मन होता है। प्रेम इतना ही कहता है, किसी के पास होने का मन होता है, किसी को पास लेने का मन होता है--इतने पास कि सब दूरी मिट जाए, कोई फासला न रह जाए, कोई चीज बाधा न बने, कोई अंतराल न रह जाए; ऐसी कामना प्रेम है।
और किसी से दूर होने का मन होता है, ऐसा होता है कि इतना फासला हो जाए
कि कोई दूसरे चांद-तारों पर और मैं दूसरे चांद-तारों पर; फासला इतना हो जाए

कि कभी दुबारा पास आने का मौका ही न आए, सारा अस्तित्व बीच में आ जाए--यह तो पास आने का ही हिस्सा हुआ।
हां, अगर तुम इसमें ही उलझ गए और पास आना भूल गए और घृणा को ही जीवन का सारा धंधा बना लिया; और इस कला में इतने पारंगत हो गए कि यह भूल ही गए कि यह सीढ़ी थी, यह बैठने का मकान नहीं था, इस पर बैठकर नहीं रह जाना था, तो खतरा हुआ। अगर तुम्हें याद रहा तो तुम पाओगे कि शत्रुता भी मित्रता के लिए अनिवार्य सीढ़ी है। और घृणा प्रेम की अनिवार्य पृष्ठभूमि है। और जिस दिन तुम प्रेम के सुगंध को, सुवास को उपलब्ध होओगे, उस दिन तुम ऐसा अनुभव न करोगे कि घृणा का कोई उपयोग न था; उस दिन तुम घृणा के प्रति भी अनुग्रह का भाव अनुभव करोगे।
उपयोग करना सीखो, जहर भी औषधि बन जाता है। और ऐसे तो औषधि भी जहर हो सकती है। निर्भर करता है, कैसे तुम उपयोग करते हो। कितनी तुम्हारी समझ है! कितनी पैनी दृष्टि से तुम जीवन को देखते हो!
तो घृणा का एक तो अर्थ हैः दूर होने की आकांक्षा, किसी से दूर होने की आकांक्षा।
घृणा का दूसरा अर्थ हैः किसी को नष्ट करने की आकांक्षा। जिससे तुम घृणा करते हो, उसका तुम विनाश करना चाहते हो। यह भी सृजन का अनिवार्य हिस्सा है। क्योंकि जिससे तुम प्रेम करते हो, उसे तुम शाश्वतता देना चाहते हो, अमरत्व देना चाहते हो। जिसे तुम प्रेम करते हो, उसे तुम सब तरह से निर्माण देना चाहते हो; उसे तुम ऐसा बनाना चाहते हो, उस जैसा कोई दूसरा न हो।
प्रेम में तुम्हारी सृजनात्मकता जगती है और घृणा में तुम्हारा विध्वंस जगता है। दोनों जरूरी हैं, क्योंकि किसी भी महत्वपूर्ण निर्माण में, किसी भी बड़े सृजन में विध्वंस का उपयोग करना पड़ेगा। एक नया मकान बनाना हो, पुराना गिराना पड़ता है। नए के निर्माण के लिए पुराने का विध्वंस करना पड़ता है। अगर किसी को स्वास्थ्य देना हो तो बीमारी का विनाश करना पड़ता है।
अब सवाल यह है कि कैसा तुम उपयोग करोगे! तुम्हें अगर समझ हो तो तुम विध्वंस की धारणा का भी उपयोग निर्माण में कर सकते हो, सृजन में कर सकते हो। और अगर तुम पागल हो जाओ तो तुम निर्माण की क्षमता का उपयोग भी विध्वंस के लिए कर सकते हो--जैसा कि हो रहा है।
लोग एटम बम बनाते हैं, बड़ा महत्वपूर्ण सृजन है; लेकिन बनाते इसलिए हैं
कि दुनिया को नष्ट कर दें। ऐसा लग रहा है कि लोगों ने सृजन की क्षमता को विनाश की तरफ सेवा में लगा दिया है। होना उलटा चाहिए कि तुम्हारी सारी विनाश की क्षमता सृजन की दिशा में लग जाए।
अस्तित्व में तो सभी सार्थक है। तुम्हारी समझ अगर अधूरी हो, अंधी हो, भूलचूक भरी हो, तो बड़ी चूक हो जाएंगी।
ऐसा ही ईर्ष्या और द्वेष के साथ है। ईर्ष्या का क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ होता है कि किसी के पास है और मेरे पास नहीं।
एक बुद्ध तुम्हारी राह से गुजर जाता है, ईर्ष्या नहीं होती--होनी चाहिए; और तब ईर्ष्या शुभ हो जाएगी। प्राण ईर्ष्या से नहीं भर जाते--भरने चाहिए। कोई बुद्ध हो गया?
लोग आए भी, बैठे भी, उठ भी खड़े हुए, तुम जगह ही खोजते रहे? वसंत आया भी, गया भी, तुम सोचते ही रहे--कहां आशियां बने, कहां न बने? बुद्धों को देखकर ईर्ष्या पैदा नहीं होती? होनी चाहिए।
और तब ईर्ष्या भी शुभ हो गई, सार्थक हो गई। तब तुम्हारे जीवन में एक भभक आ जाएगी। तब तुम्हारा सारा जीवन एक नए ही आंदोलन से आपूरित हो जाएगा। तुम्हारी सारी उदासी टूट जाएगी, तुम्हारी सारी शिथिलता टूट जाएगी--कोई झकझोर गया। एक तूफान आया और गुजर गया। जो तुम हो सकते थे, कोई हो गया; तुम क्यों न हो पाए?
लेकिन तुम्हारी ईर्ष्या गलत रास्तों से चलती है। कोई कार में से गुजर गया और तुम्हें ईर्ष्या पकड़ गई कि ऐसी कार तुम्हारे पास भी होनी चाहिए। हो भी जाएगी तो बहुत कुछ न होगा।

ईर्ष्या ही करनी हो तो बुद्धों से करना।
किसी के वस्त्र देख लिए, ईर्ष्या हो गई। किसी का मकान देख लिया, ईर्ष्या हो गई। बना भी लोगे मकान तो कुछ न होगा। जिसका देखकर तुम्हें ईर्ष्या हुई है, जरा उसकी तरफ तो देखो, उसे क्या हो गया है? कुछ भी नहीं हुआ। हो सकता है, तुमसे भी ज्यादा दीन-हीन अवस्था हो।
ईर्ष्या ही करनी हो तो उससे करो, जिसकी सारी ईर्ष्याएं खो गयीं।
यह हो सकता है कि तुम जिसका मकान देखकर ईर्ष्या कर रहे हो, वह तुम्हारा स्वास्थ्य देखकर ईर्ष्या कर रहा हो। सम्राट भी ईर्ष्या से भर जाते हैं।
मैंने सुना है, एक सम्राट का हाथी निकलता था। और एक जवान आदमी ने--एक फकीर था और एक मजार पर लेटा रहता था--उसकी पूंछ पकड़ ली और हाथी को रोक लिया। सोचो उस गरीब सम्राट की हैसियत! उसके प्राण कंप गए, सारा साम्राज्य मिट्टी हो गया। अचानक उस फकीर ने सम्राट को नपुंसक कर दिया। बड़ा दुखी हुआ। घर तो लौट आया, लेकिन बड़ा उदास हुआ। एक नंगा फकीर!
उसने किसी बुजुर्ग को पूछा कि क्या करें? कुछ करना पड़ेगा। यह तो निकलना बंद हो जाएगा। मैं गांव में निकलूंगा तो शर्म मालूम पड़ेगी। मैं हाथी पर हूं भला, मगर इसका क्या मतलब रहा? कोई आदमी पूंछ पकड़ ले हाथी की, हाथी न सरक सके, हम ऊपर अटके रह गए; महावत था, कुछ न कर पाया। उस बुजुर्ग ने कहा, घबड़ाओ मत। तुम ऐसा करो, खबर भेजो उस फकीर को कि तुझे एक रुपया रोज मिलेगा, सिर्फ मजार पर रोज शाम को छह बजे दीया जला दिया कर।
फकीर ने सोचा, यह तो अच्छा ही है; अभी मांगकर खाना पड़ता था, यह झंझट ही मिटी मांगकर खाने की, एक रुपया मिल जाएगा।
उन दिनों एक रुपया बड़ी बात थी, जागीर थी। एक रुपया तो एक महीने के लिए काफी था। उसने कहा कि यह तो बड़ा सौभाग्य हो गया। और कुल काम इतना है कि छह बजे दीया जला देना है। उसी मजार पर तो पड़े ही रहते हैं, तो उसमें झंझट भी क्या? उठकर जला देंगे।
महीनेभर बाद, उस बुजुर्ग ने कहा, तुम फिर निकलना हाथी पर। महीनेभर मत निकलो। महीनेभर बाद निकला सम्राट। उस फकीर ने फिर पूंछ पकड़ी, लेकिन घिसट गया। सम्राट हैरान हुआ। उस बुजुर्ग से ईर्ष्या हुई उसे अब, कि यह आदमी बड़ा अदभुत जानकार है; न देखा इस आदमी को, न गया, बस बैठे-बैठे इतनी बात बता दी और कारगर हो गई! पूछा कि कैसे यह हुआ?
उसने कहा, सीधी सी बात है। बेफिक्री उसकी मस्ती है, उसकी ताकत है; जरा
सी फिक्र पैदा कर दी, मारा गया। अब फिक्र लगी रहती है उसको, दिन में दो-चार दफे देख लेता है घड़ियाल की तरफ घंटाघर की--छह तो नहीं बज गए! क्योंकि चूक जाए, कहीं भूल जाए। कभी समय की फिक्र न की थी, बेसमय जीया था। तो जरा सी फिक्र डाल दी, चौबीस घंटे खटका बना रहता है। रात में सोता है तो भी खटका बना रहता है कि छह बजे जला देना है, एक रुपया मिलना है। और रुपए मिलने लगे तो गिनती करने लगा, जोड़ने लगा कि एक रुपए में तो महीने का काम हो जाएगा, बाकी तो उनतीस रुपए बच जाएंगे। साल में कितने होंगे, दस साल में कितने होंगे! महल बना लूंगा। पहले शांति से सोया रहता था, सपने भी न आते थे, अब बड़े सपने आने लगे। मार दिया जरा सी तरकीब से।
सम्राट भी ईर्ष्यालु हो जाता है। ईर्ष्या ही करनी हो तो उनकी करना, जिनकी सारी ईर्ष्या खो गई। मगर ईर्ष्या में कुछ बुरा नहीं है। गलत की ईर्ष्या मत करना, क्योंकि गलत की ईर्ष्या करोगे तो गलत ही हो जाओगे। शुभ की ईर्ष्या करना, मंगल की ईर्ष्या करना, तो जिसकी ईर्ष्या करोगे, उसी तरफ यात्रा शुरू हो जाती है। ईर्ष्या तो दिशासूचक है--कहां जाना चाहते हो, क्या होना चाहते हो!
ईर्ष्या में कुछ भी बुरा नहीं है। द्वेष में भी कुछ बुरा नहीं है। किसी चीज में कुछ बुरा नहीं है। बस, ठीक दिशा में सारी चीजों को संयोजित करने की बात है। कांटे भी फूल हो जाते हैं, बस जरा सी समझ चाहिए। फूल भी कांटे हो जाते हैं, बस जरा सी नासमझी काफी है।

आखिरी प्रश्नः आप विचार और विचारशक्ति में जैसा भेद करते हैं, क्या वैसा ही भेद इच्छा और इच्छाशक्ति में भी तो नहीं है?

निश्चित है। जब तक विचार हैं, तब तक तुम्हारे पास विचार की शक्ति नहीं। विचारों की भीड़ है, विचार की शक्ति नहीं। क्योंकि विचार की शक्ति तो तभी पैदा होती है, जब विचारों की भीड़ विदा हो जाती है। तब तुम्हारे भीतर शुद्ध ऊर्जा होती है विचार की। विचारों से ढंकी नहीं होती, उघड़ी होती है; जलती हुई आग होती है विचारशक्ति की; राख विचारों की ऊपर नहीं होती, अंगारा दमकता है।
ठीक वैसा ही इच्छाओं के और इच्छाशक्ति के संबंध में भी है। जितनी ज्यादा इच्छाएं, उतनी कम इच्छाशक्ति। जितनी कम इच्छाएं, उतनी ज्यादा इच्छाशक्ति। अगर तुमने सारी इच्छाएं छोड़ दीं तो तुम जो इच्छा करोगे, वह इच्छा करते ही पूरी हो जाएगी। इच्छाशक्ति इतनी बड़ी हो जाएगी। जब तुम इच्छा न करोगे, तब तुम्हारे पास इतनी विराट ऊर्जा होगी कि करते ही पूरी हो जाएगी।
अब यह जीवन का राज हैः जो करना चाहते हैं इच्छा पूरी, उनके पास इच्छाशक्ति नहीं है, जो नहीं करना चाहते, उनके पास है।
मैंने सुना है, एक अमीर आदमी के पास एक गरीब आदमी मिलने गया। वह अमीर आदमी ने अपने पास एक सोने का पीकदान रखा हुआ था। लाखों रुपए का होगा; उस पर हीरे जड़े थे। और वह उसमें बार-बार पान की पीक थूक रहा था। वह गरीब को बड़ा दुख हुआ, उसे बड़ा क्रोध भी आया। जिंदगीभर परेशान हो गया वह लक्ष्मी की तलाश करते-करते। आखिर उससे न रहा गया, उसने एक लात मारी पीकदान में और कहा, ससुरी! यहां थुकवाने को बैठी है। हम जिंदगीभर पीछे पड़े रहे, प्रार्थना की, पूजा की, सपने में भी दर्शन न दिए।
वह अमीर आदमी हंसने लग गया। उसने कहा, ऐसी ही दशा पहले हमारी भी थी। जब
तक हम भी पीछे लगे फिरे, कुछ भी हाथ न आया। जब से हम मुड़ गए और जब से हम पीछे फिरना छोड़ दिए, चीजें अपने आप चली आती हैं।
तुम्हारी सब इच्छाएं जब तुम छोड़ दोगे, अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे पास विराट ऊर्जा है। तब तुम इच्छा न करना चाहोगे और इच्छाशक्ति होगी।
जब तुम विचार न करना चाहोगे, तब विचारशक्ति होगी।
जब तुम जीना न चाहोगे, तब तुम्हारे पास अमर जीवन होगा।
जब तुम मिटने को राजी होओगे, तुम्हें मिटाने वाली कोई शक्ति नहीं।
जब तुम सबसे पीछे खड़े हो जाओगे, तुम सबसे आगे हो जाओगे।
जीसस ने कहा है, जो यहां सबसे पीछे हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम हो जाते हैं। और लाओत्सू ने कहा है, मुझे कोई हरा न सकेगा, क्योंकि मुझे जीत की कोई आकांक्षा नहीं है।
ऐसी विजय अंतिम हो जाती है, परम हो जाती है। जीवन का यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। जिसने इसे जाना, उसने बहुत कुछ जाना। और जो इसे चूकता रहा, वह जीवन के आसपास चक्कर मारता रहेगा भिखमंगे की तरह, वह कभी इस महल में प्रवेश न पा सकेगा।
बालभर अवकाश होना चाहिए
कुछ खुला आकाश होना चाहिए
बीज की फिर शक्ति रुकती है कहां
भाव की अभिव्यक्ति रुकती है कहां
जरा सी जगह चाहिए तुम्हारे भीतर--अवकाश! फिर बीज तुम्हारे भीतर पड़ा है, टूटने लगता है; विराट उससे जन्मने लगता है। लेकिन तुम्हारे विचारों की पर्तें उस बीज को नहीं टूटने देतीं। तुम्हारी इच्छाओं की पर्तें उस बीज को नहीं टूटने देतीं। जगह ही नहीं है कि बीज अंकुरित हो सके। तुम इतने भरे हो!
बस, थोड़ा खाली करो अपने को। खाली करने की कला ध्यान है। विचार से, वासना से खाली करने की कला ध्यान है।

जैसे ही तुम खाली होते हो, तुम्हारा बीज टूटता है और तुम्हें भरने लगता है। तब भराव भीतर से आता है। तब भराव अपना होता है, आत्मा का होता है।
उस भराव को फिर तुमसे कोई छीन न सकेगा; वह तुम्हारा है।
अभी जिससे तुमने भरा है, वह सब उधार है और पराया है।
बालभर अवकाश होना चाहिए
कुछ खुला आकाश होना चाहिए
बीज की फिर शक्ति रुकती है कहां
भाव की अभिव्यक्ति रुकती है कहां
आज इतना ही।
नीचे झुक जाने का नामः आत्ममेध।
ऐसा मुहूर्तभर को हो जाए, बस एक बार हो जाए, तो तुम फिर लौट न सकोगे।
क्योंकि जिसने उस झुकने का आनंद जान लिया, वह फिर उठेगा नहीं।
नहीं कि शरीर न उठेगा; शरीर तो उठेगा, चलेगा, काम करेगा, लेकिन भीतर कुछ झुका ही रहेगा--झुका ही रहेगा; फिर भीतर कोई कभी न उठेगा।
पूजा का एक क्षण, एक मुहूर्त शाश्वत हो जाता है।
एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
उन्चालीसवां प्रवचन

अश्रद्धा नहीं, आत्मश्रद्धा

अससद्धो अकतांं च संधिच्छेदो च यो नरो।
हतावकसो वंतासो स वे उत्तम पोरिसो।। 88।।

गामे व यदि वारोंं निन्ने वा यदि वा थले।
वत्थारहंतो विहरंति तं भूमि रामणेय्यकं।। 89।।

रमणीयानि अरांंनि यत्थ न रमते जनो।
वीतरागा रमिस्संति न ते कामगवेसिनो।। 90।।

धम्मपदा के एक अत्यंत अनूठे सूत्र में आज प्रवेश होता है। सूत्र इतना अनूठा है कि बुद्ध के अतिरिक्त वैसा वक्तव्य कभी किसी दूसरे व्यक्ति ने न दिया है, न देगा।
बुद्ध की सारी विशिष्टता इस सूत्र में समाहित है--उनकी क्रांति, उनके देखने का अनूठा ढंग, उनकी बिल्कुल नई पहुंच।
बुद्ध के पूर्व, बुद्ध के बाद भी, सभी ने श्रद्धा के गीत गाए हैं। ये सूत्र श्रद्धा के विरोध में हैं। कठिनाई भी होगी थोड़ी समझने में, लेकिन अगर समझ पाए तो श्रद्धा का सार समझ में आ जाएगा। ये सूत्र श्रद्धा के विरोध में हैं, क्योंकि श्रद्धा के नाम पर बहुत कुछ चलता है, जो श्रद्धा नहीं है। ये सूत्र श्रद्धा के विरोध में हैं, क्योंकि बुद्ध श्रद्धा के बड़े गहरे पक्ष में हैं। उन्हें बड़ी चोट लगी होगी; श्रद्धा के नाम से चलता हुआ जो देखा होगा, उन्हें बड़ी पीड़ा हुई होगी।
वे श्रद्धा के विरोध में बोले। लेकिन जो भी समझेंगे, वे पाएंगे कि यह विरोध इसीलिए है कि श्रद्धा के वे बड़े हिमायती और पक्षपाती हैं। इसलिए जरा नाजुक है।
अक्सर ऐसा होता है कि धर्म के विरोध में वही लोग बोलते हैं, जो धर्म के बड़े गहरे पक्षपाती होते हैं; और देखते हैं कि मंदिर-मस्जिद का धर्म मुर्दा है; और देखते हैं कि पंडित-पुरोहित का धर्म झूठा है। जब धर्म के नाम से चलते इतने झूठ देखते हैं, झूठ की प्रतिमाओं की इतनी पूजा देखते हैं, तो उनके भीतर आग जल जाती है; तो वे धर्म के विरोध में बोलते हैं। लेकिन अगर तुमने उनके शब्द ही समझे और उनकी आत्मा न समझ पाए तो चूक गए।
अक्सर ऐसा होगा, अक्सर ऐसा हुआ है कि परम धार्मिक व्यक्ति, तुम जिसे धर्म कहते हो, उसके पक्ष में हो ही नहीं सकता। तुम जिसे धर्म कहते हो, वह धर्म ही नहीं है।
तो बुद्ध जब श्रद्धा के विपरीत में बोलें तो समझना कि तुम जिसे श्रद्धा कहते हो, उसके विपरीत बोल रहे हैं। और बुद्ध जिसे श्रद्धा कहते हैं, वह तो तुम्हें अश्रद्धा जैसी मालूम पड़ेगी। क्योंकि तुमने जिसे श्रद्धा समझा है, वह अश्रद्धा है। तुमने जिसे सीधा समझा है, वह उलटा है। इसलिए बुद्ध जब सीधी बात कहेंगे, तब तुम्हें उलटी मालूम पड़ेगी।
इसलिए बुद्ध के इन वचनों को अपने विचारों की भीड़ से दूर रखकर समझने की कोशिश करना। इन्हीं वचनों के कारण पूरा भारत बुद्ध से वंचित हुआ है। बुद्ध भारत में जन्मे और भारत के न रह गए। ऐसा अनूठा अवसर इस देश ने गंवाया है कि उसे भर पाने का कोई उपाय नहीं है। सारे एशिया पर बुद्ध का सूरज उगा, सिर्फ भारत में, जहां वे पैदा हुए थे, वहां अस्त हो गया।
भारत क्यों वंचित हुआ बुद्ध को समझने से? भारत के पास बड़ी बंधी हुई धारणाएं हैं धर्म की, श्रद्धा की। बुद्ध ने सब धारणाएं छिन्न-भिन्न कर दीं। काश, हम उन्हें समझ लेते तो भारत की यह लंबी रात कभी की टूट गई होती! अभी भी नहीं टूटी है, अभी भी बुद्ध घर वापस नहीं लौट पाते हैं। अभी भी भारत के द्वार-दरवाजे बंद हैं। बुद्ध शब्द ही घबड़ाता है, भयभीत करता है। दो हजार साल, ढाई हजार साल भारत के पंडितों ने बुद्ध के खंडन में लगाए।

जैसे बुद्ध ही अधर्म के प्रतीक हो गए। इससे बड़ा कभी कोई व्यक्ति पैदा नहीं हुआ। इससे ऊंची भगवत्ता की उड़ान किसी और ने नहीं ली। अगर किसी को भगवान कहें तो वह यही व्यक्ति है। और किसी ने अगर धर्म की गहनतम अनुभूतियों को पाया तो वह यही व्यक्ति है।
फिर भी क्या हुआ कि भारत जैसा देश न समझ पाया? भारत, जो अपने को धार्मिक कहता है; भारत, जिसकी बड़ी पुरातन परंपरा है! बेबीलोन था कभी, खो गया; मिश्र था कभी, खो गया; यूनान था कभी, खो गया; सभ्यताएं आयीं और गयीं, भारत बना रहा है। हजारों सभ्यताएं बनीं और मिटीं, धूल होकर खो गयीं; भारत का भवन खड़ा रहा है; बड़ा प्राचीन है।
फिर भी इतना प्राचीन देश बुद्ध को न समझ पाया? ऐसा मन में सवाल उठता है। लेकिन सच यह है कि इस प्राचीनता के कारण ही न समझ पाया। बुद्ध इतने नवीन हैं, इतने नित-नूतन हैं कि बुद्ध को समझने के लिए नई आंख चाहिए, जवान आंख; कुंआरा मन चाहिए।
भारत के पास बड़ा खंडहर जैसा मन है; इसमें इतनी धूल जम चुकी है कि जब भी कोई नई सूरज की किरण आती है तो सूरज की किरण भी धूल-धवांस में दब जाती है। जब भी कोई नया फूल खिलता है, खंडहर इतना पुराना है कि कोई भी ईंट गिरकर फूल को दबा देती है और मार डालती है। यहां फूल खिलना ही कठिन हो गया है। घास-पात ही खिलता है, झाड़-झंखाड़ ही उगते हैं, गुलाब और कमल खो गए हैं; जूही और बेलों की जगह नहीं रही है।
इसलिए बहुत समझकर सुनना।
"जो श्रद्धा से रहित है, जो अकृत को जानने वाला है, जो संधि को छेदन करने वाला है, जो हतावकाश है और जिसने तृष्णा को वमन कर दिया है, वही उत्तम पुरुष है।"
"जो श्रद्धा से रहित है।"
श्रद्धा का शास्त्र हम समझें। श्रद्धा का शास्त्र जैसा तुम जानते हो, जैसा तुम मानते हो, पहले उसे समझें। उसे समझे बिना यह सूत्र न समझा जा सकेगा।
श्रद्धा का अर्थ हैः तुम्हें अपने पर श्रद्धा नहीं तो तुम किसी और का सहारा खोजते हो; तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं तो तुम किसी और का भरोसा खोजते हो।
थोड़ा सोचो लेकिन, जिसे अपने पर श्रद्धा नहीं है, उसे किसी और पर श्रद्धा हो कैसे सकेगी? जिसे अपने पर श्रद्धा नहीं है, उसे अपनी श्रद्धा पर भी कैसे श्रद्धा हो सकेगी? जिसे अपने पर भरोसा नहीं है, उसे अपने भरोसे पर कैसे भरोसा आएगा? धोखा होगा।
दूसरे के भरोसे में तुम केवल आत्म-अश्रद्धा को छिपा लोगे। दूसरे के पीछे चलकर तुम चलने की जो कठिनाई थी, उससे बच जाओगे। दूसरे का अनुकरण करके वह जो खोज की चुनौती थी, उसे चूक जाओगे।
अभियान है जोखिम से भरा; तुम जोखिम नहीं उठाना चाहते। तुम भोजन भी पचा-पचाया चाहते हो। कोई चबा दे, कोई तुम्हारे मुंह में चबाया उगल दे, ताकि तुम्हें मुंह भी न चलाना पड़े।
जूठा भोजन करने से तुम्हें मितली आएगी, लेकिन जूठी श्रद्धा से तुम्हें मितली नहीं आती? कोई दूसरा दे देता है और तुम मान लेते हो? इससे सिर्फ एक ही बात पता चलती है कि मानने का तुम्हारे मन में कोई मूल्य ही नहीं। तुम दूसरे के उतारे कपड़े पहनने को राजी नहीं होते, क्योंकि कपड़ों का तुम्हारे मन में कोई मूल्य है; लेकिन उन दूसरों के उतारे शास्त्र पहनने को राजी हो जाते हो। इससे एक ही बात पता चलती है कि तुम्हारे मन में कोई मूल्य ही नहीं है। तुम इस बात को इतना व्यर्थ समझते हो कि अपना हुआ कि पराया, हुआ कि न हुआ, सब बराबर है।
सत्य की गरिमा तुम्हारे मन में नहीं है; अन्यथा तुम उधार कैसे स्वीकार करते? सत्य और उधार! सत्य और किसी और का!
एक पंडित एक चमार की दुकान पर जूते सुधरवाने गया था। जूते की हालत बड़ी बुरी थी। तो उस चमार ने कहा, दो-चार दिन लगेंगे। पंडित ने कहा, यह तो बड़ा मुश्किल होगा। दो-चार दिन मुझे बिना जूते के चलना पड़ेगा। जल्दी नहीं हो

सकती? दो-चार घंटे में नहीं हो सकता? तो उस चमार ने कहा, ऐसा करो, यह एक जोड़ी सुधरी पड़ी है; यह तुम दो-चार दिन पहन लो। फिर तुम्हारी ठीक हो जाए, ले जाना; यह वापस कर जाना। पंडित ने वह जोड़ी देखी, वह किसी और की जोड़ी थी, जो उसने सुधारकर रखी थी। उसने कहा, सोच-समझकर बात कर, मैं और किसी दूसरे के जूते उधार पहनूंगा? किसी के पहने हुए जूते? तूने मुझे समझा क्या है? वह चमार हंसने लगा; उसने कहा कि मैंने तो सोचा, आप पंडित हैं; इतने उधार जूते पहने हुए हैं, एक और हो जाएगा तो क्या हर्ज है?
जिसने आत्मा तक के वस्त्र उधार ले लिए, वह पैरों में जूते डालने में दूसरों के परेशान हो रहा है! लेकिन पैरों का हमारे मन में मूल्य है, आत्मा का कोई मूल्य नहीं है।
बुद्ध कहते हैं, "जो श्रद्धा से रहित है।"
तुम किसे श्रद्धा कहते हो? तुम किसे विश्वास कहते हो? तुम अकेले घबड़ाए हुए हो, तुम अकेले कंप रहे हो, तुम किसी का सहारा पकड़ लेते हो। लेकिन कौन कब किसका सहारा हुआ है? इस संसार में स्वयं ही खोजना पड़ता है। वस्तुतः सत्य से भी ज्यादा मूल्यवान खोज है। जो खोजता है ठीक से, जिसकी खोज सम्यक है, उसको सत्य तो मिल ही जाता है; वह तो परिणाम है।
लेकिन तुम खोज से बचना चाहते हो। तुम्हारी हालत उस छोटे बच्चे जैसी है, जो गणित करता है और किताब उलटकर पीछे लिखे उत्तर देख लेता है--इसको तुम श्रद्धा कहते हो--विधि नहीं करना चाहता, उधार उत्तर ले लेता है। लेकिन उधार उत्तर आ जाने से भी गणित हल नहीं होता। विधि तो जाननी ही पड़ेगी; यह उधार उत्तर व्यर्थ है। क्योंकि गणित का उपयोग यही था कि जब जीवन में प्रश्न तुम्हारे सामने खड़े हों तो तुम्हारे हाथ में विधि हो, ताकि तुम उत्तर खोज सको। अब यह उत्तर तुमने मुफ्त पा लिया। विधि से तुम चूक गए। गणित का अर्थ ही न रहा।
अब जीवन में जब भी कोई सवाल उठेगा--और जीवन में कोई किताब थोड़े ही है, जिसको उलटकर तुम पीछे लिखे उत्तर देख लोगे। स्कूल की किताबों में पीछे उत्तर लिखे होते हैं, जिंदगी की किताब में तो कहीं पीछे कोई उत्तर नहीं। उत्तर खोजने होते हैं; यहां उत्तर निर्मित करने होते हैं, अपने खून से सींचने होते हैं। यहां प्राणों को चुकाते हो तो उत्तर मिलते हैं।
एक बार अगर श्रद्धा की झूठ तुम्हें पकड़ गई, तुमने कहा, हम क्या करेंगे जानकर? बुद्ध पुरुषों ने जान लिया, कृष्ण और क्राइस्ट ने जान लिया, हम तो सिर्फ मान लेते हैं।
तुम्हारी श्रद्धा जानना नहीं है, मानना है। और सत्य माना नहीं जा सकता, केवल जाना ही जा सकता है। सत्य इतना सस्ता नहीं कि तुम मांग लो और मिल जाए।
खोजना पड़ेगा। दुर्गम पथ है, लंबी यात्रा है, निश्चित कुछ भी नहीं है। मिलेगा भी, यह भी कोई आश्वासन नहीं दे सकता। ज्यादा से ज्यादा कोई इतना ही कह सकता है कि मैं भी चला, मैं भी भटका, पहुंच गया; आशा करता हूं, तुम भी चलोगे, भटकोगे, गिरोगे, उठोगे, पहुंच जाओगे। आशा हो सकती है, आश्वासन नहीं हो सकता। आशीर्वाद कोई दे सकता है, आश्वासन कोई भी नहीं दे सकता। शुभकामना कोई कर सकता है कि प्रभु करे, तुम पहुंच जाओ; लेकिन पहुंचने के लिए कोई गारंटी नहीं दे सकता।
सत्य कोई बाजार में बिकने वाली वस्तु नहीं है। और सत्य का कोई नियत घर नहीं है। जहां मैंने उसे पाया, वहां तुम उसे न पाओगे। क्योंकि तुम तुम हो, मैं मैं हूं। तुम्हारी राह थोड़ी अलग होगी, तुम कहीं और से चलोगे, क्योंकि तुम कहीं और खड़े हो। मैं जहां से चला था वहां से मैं चला था; तुम वहां से कभी भी न चलोगे। तुम्हारा चलना तो वहीं से शुरू होगा, जहां तुम खड़े हो; जहां तुमने अपने को पाया है। तुम्हारी राह मेरी राह कैसे होगी? मेरी राह तुम्हारी राह कैसे होगी?
हां, तुम मुझसे कुछ सीख सकते हो; मानने से कुछ सार न होगा। तुम मेरे अनुभवों से कुछ सार ले सकते हो, जो तुम्हें राह में चलने में सहयोगी हो जाएगा, लेकिन राह नहीं ले सकते।

इसलिए बुद्ध ने कहा है, बुद्ध पुरुष केवल इशारा करते हैं। उनकी अंगुलियों को पकड़कर, मानकर बैठ मत जाना। उनके इशारे मंजिल नहीं हैं; चलना तुम्हें होगा, यात्रा तुम्हें करनी होगी, भटकना तुम्हें होगा।
सत्य को पाने में, सत्य के मार्ग पर मिली हुई कठिनाइयां अनिवार्य हिस्सा हैं। क्योंकि सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है, जो बाहर रखी है; उसकी खोज में ही तुम्हारे भीतर जो निर्मित होता है, वही सत्य है। उसकी खोज में, सतत चेष्टा में, बार-बार भटककर फिर-फिर तुम लौट आते हो, फिर-फिर खोजते हो, गिरते हो, उठते हो; हजार बार हाथ से सूत्र छूट जाता है, फिर तलाशते हो।
इस सारी खोज में तुम्हारे भीतर कोई संगठित होने लगता है प्राण। इस सारी खोज में तुम्हारे भीतर टूटे हुए, बिखरे हुए खंड करीब आने लगते हैं। एक रासायनिक प्रक्रिया घटती है, एक कीमिया से तुम गुजर जाते हो। तुम बिखरे टुकड़े नहीं रह जाते, तुम संगठित हो जाते हो। तुम्हारे भीतर आत्मा का जन्म होता है। वही आत्मा सत्य है।
सत्य की खोज में ही सत्य निर्मित होता है। सत्य की खोज सत्य के जन्म
की प्रक्रिया है।
सत्य कहीं तैयार होता तो हम दूसरों से उधार ले लेते, रास्ते बना लेते, नक्शे तैयार हो जाते, दिशा-सूचक निशान लगा देते, मील के पत्थर गाड़ देते, सब चीजें सरल हो जातीं। भीड़ चुपचाप चली जाती। कुछ खोजना न पड़ता।
लेकिन सत्य बाहर नहीं है। खोजते हो तुम, तुम्हारे भीतर निर्मित होता है। जैसे गर्भ में बच्चा निर्मित होता है, ऐसे तुम्हारे भीतर सत्य का जन्म होता है। प्रसव की पीड़ा से गुजरना ही होगा। गर्भ को, गर्भ के बोझ को ढोना ही होगा।
तो जब बुद्ध कहते हैं, जो श्रद्धा से रहित है, तो वे यह कह रहे हैंः जो मान्यताओं से मुक्त है, जिसने विश्वास नहीं किया, जो खोजने को तत्पर है, जो खोजेगा तो ही मानेगा, जो खोज के पहले नहीं मानेगा।
इसका क्या अर्थ हुआ? क्या इसका यह अर्थ हुआ कि जो अश्रद्धा से भरा है? नहीं, फिर तुम चूक जाओगे। वही भूल भारत के पंडितों ने की; उन्होंने समझा, बुद्ध अश्रद्धा सिखाते हैं। बुद्ध केवल इतना कह रहे थे कि श्रद्धा छोड़ो। बुद्ध अश्रद्धा पकड़ने को नहीं कह रहे थे; क्योंकि फिर अश्रद्धा ही श्रद्धा हो जाती है। तुम जिसे पकड़ लेते हो, वही श्रद्धा हो जाती है। नास्तिक की भी श्रद्धा होती है। आस्तिक उसको अश्रद्धा कहता है, नास्तिक के लिए तो वह श्रद्धा ही होती है।
किसी कम्युनिस्ट से पूछो! उसके लिए तो कार्ल मार्क्स की कैपिटल वैसे
ही है, जैसे हिंदुओं के लिए वेद है, मुसलमानों के लिए कुरान है। और हिंदुओं का वेद तो हजारों साल की चोटें खा-खाकर थोड़ा नब भी गया है, विनम्र भी हो गया है; कैपिटल अभी बड़ा नया वेद है, अभी बड़ी अकड़ से भरा है, अभी समय की चोटें बहुत नहीं खाई हैं, अभी सौ साल ही हुए हैं उस किताब को लिखे हुए।
तो जैसे बच्चे में अकड़ होती है, सीमाओं का बोध नहीं होता, सब कुछ को पा लेने का ख्याल होता है, कुछ भी असंभव नहीं है ऐसी धारणा होती है--ऐसी ही अवस्था है। न तो हिंदू वेद को पढ़ते हैं, न कम्युनिस्ट कैपिटल को पढ़ते हैं। मुझे अब तक कोई कम्युनिस्ट नहीं मिला, जिसने पूरी कैपिटल पढ़ी हो; न कोई हिंदू मिला है, जिसने पूरा वेद पढ़ा हो।
पढ़ने की जरूरत ही क्या है? मानना जब हो तो पढ़ने की जरूरत क्या है? मान लिया, बात खतम हो गई। असल में मान लेने के पीछे यही तो छिपा है कि पढ़ने की भी झंझट कौन करे? खोजने की भी झंझट कौन करे? ठीक है, ठीक ही होगा; झंझट मिटी।
नास्तिक की भी श्रद्धा होती है; वह कहता है, ईश्वर नहीं है। यह उसकी श्रद्धा है। आस्तिक इसे अश्रद्धा कहता है, क्योंकि आस्तिक की श्रद्धा है कि ईश्वर है। अगर तुम नास्तिक से पूछो तो वह कहेगा कि आस्तिक जिसको श्रद्धा कहता है, वह अश्रद्धा है। वह नास्तिक के ईश्वर में अश्रद्धा है। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है, यही उसका ईश्वर है।
कभी तुमने गौर किया, नास्तिक भी मरने-मारने पर उतारू हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है। ईश्वर है ही नहीं; तो अगर कोई आस्तिक ईश्वर के लिए मरने-

मारने को उतारू होता हो तो समझ में आता है कि चलो, कम से कम इसका ईश्वर है तो! नास्तिक भी मरने-मारने को उतारू हो जाता है--उसके लिए, जो है ही नहीं; विवाद करता है, जीवन गंवाता है। आस्तिकों से भी ज्यादा नास्तिक विवाद में समय गंवाते हैं।
कोई पूछे कि जो है ही नहीं, उसके लिए तुम परेशान क्यों हुए जा रहे हो? नहीं, जो नहीं है, इतने पर ही बात पूरी नहीं हो जाती; इसे सिद्ध करना पड़ेगा। इसके लिए प्रमाण जुटाने पड़ेंगे कि नहीं है। और जो कहते हैं कि है, उनको गलत सिद्ध करना पड़ेगा, क्योंकि यह श्रद्धा का मामला है। अगर दूसरा कहे चला जाए कि है, तो हमारी श्रद्धा को डगमगाहट पैदा होती है, संदेह पैदा होता है कि कहीं हो ही न! इसलिए सारा इंतजाम करना पड़ता है नास्तिक को भी, कि नहीं है। उसको नहीं के मंदिर बनाने पड़ते हैं। उसे इनकार के शास्त्र निर्मित करने पड़ते हैं।
बुद्ध अश्रद्धा नहीं सिखा रहे हैं, बुद्ध कह रहे हैं, श्रद्धा न हो। बुद्ध यह कह रहे हैं कि तुम्हारा चित्त मान्यता से घिरा न हो--न इस तरफ, न उस तरफ। जब जाना ही नहीं है तो हम निर्णय कैसे करें? पता नहीं, है; पता नहीं, न हो। हमें पता नहीं है। तो हम अपने इस अज्ञान को किसी ज्ञान से न ढांकें।
आस्तिक का भी दावा वही है, जो नास्तिक का है। आस्तिक कहता है, ईश्वर है, यह हमें पता है। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है, यह हमें पता है; मगर दोनों को पता है।
बुद्ध कहते हैं, सच में तुम्हें पता है? थोड़ा सोचो, थोड़ा मनन करो, तुम्हें पता है? तो पैर के नीचे से जमीन खिसकती मालूम होगी।
पता तो नहीं है; सुन रखा है, कहा है किसी ने, सुना है किसी से, समझ लिया है, मान भी लिया है। माना क्यों है?
बुद्ध कहते हैं, तुम्हारी सारी श्रद्धा के पीछे भय है। तुम्हारी श्रद्धा भय का ही विस्तार है।
बिना ईश्वर को माने बड़ी कठिनाई है। हजार उलझनें खड़ी हो जाती हैं, जो
हल नहीं होतीं। फिर किसने संसार बनाया? फिर किसने यह सब सृष्टि रची? प्रश्न ही प्रश्नों की कतारें खड़ी हो जाती हैं, उत्तर नहीं मिलते। और बिना उत्तर के बेचैनी होने लगती है। ऐसा भी नहीं है कि श्रद्धा से उत्तर मिल जाते हैं, लेकिन उत्तर का आभास मिल जाता है। उतने से ही आदमी राहत मान लेता है। न सही सत्य, सत्य का आभास ही सही। थोड़ा भरोसा आ जाता है, थोड़ी सांत्वना हो जाती है।
नास्तिक की भी तकलीफ यही है। उसकी तकलीफ यही है कि ईश्वर को मानने से हजार प्रश्न खड़े होते हैं।
दुनिया में दो तरह के लोग मैंने देखे। एक हैं, जिनको ईश्वर न हो तो प्रश्न खड़े होते हैं; और एक हैं कि जिनको ईश्वर हो तो प्रश्न खड़े होते हैं; मगर दोनों की तकलीफ यह है कि ईश्वर के होने, न होने से उन्हें प्रश्न खड़े होते हैं।
और कोई न कोई उत्तर चाहिए। बिना उत्तर के सिर्फ प्रश्न में जीना बड़ा कष्ट है, बड़ा दूभर है। सिर्फ प्रश्न में जीना, समस्या में घिरे सब तरफ से, हाथ में कुछ भी सूत्र नहीं, बड़ी हिम्मत की बात है। सिर्फ दुस्साहसी प्रश्नों के साथ जी सकते हैं। और इसलिए सिर्फ दुस्साहसी ही सौभाग्यशाली हैं; कभी उनको उत्तर मिलते हैं। अगर तुमने उत्तर मिलने के पहले उत्तर मान लिए तो उत्तरों के आने की राह रोक दी, अवरोध खड़े कर दिए।
इसलिए बुद्ध कहते हैं, "जो श्रद्धा से रहित है।"
श्रद्धा से रहित का अर्थ हैः प्रश्नों को तो जानता है, उत्तरों को कैसे मान ले?
सभी उत्तर एक जैसे हैं। कोई कहता है, ईश्वर है; कोई कहता है, ईश्वर नहीं है; मैं कैसे मान लूं? तो मैं चुपचाप बिना माने खड़ा रहता हूं। मैं कोई चुनाव नहीं करता, मैं कोई निर्णय नहीं लेता। मैं कहता हूं, खोजूंगा। जब तक मैं न खोज लूंगा, तब तक मैं कैसे कहूं, कौन तुममें ठीक है। हो सकता है,

दोनों गलत हों। हो सकता है, दोनों ठीक हों। हो सकता है, कोई एक ठीक हो, कोई दूसरा गलत हो। सभी कुछ संभव है।
खोजी कहता हैः स्यात ऐसा हो, स्यात वैसा हो; मुझे अभी पता नहीं, इसलिए मैं किस पक्षपात में खड़ा हो जाऊं? खोजी न हिंदू बनता है, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। खोजी कहता है, मैं सिर्फ खोजी हूं; खोज की क्या जात! खोज की कोई जात संभव नहीं है। खोज का क्या वर्ण! खोज का क्या नाम, क्या विशेषण! खोज का कौन सा मंदिर है? कौन सी मस्जिद अपनी है? खोज के लिए सारा संसार खुला है। खोजना है; जिस दिन खोज लेंगे उस दिन घोषणा करेंगे। उसके पहले घोषणा न करेंगे।
खोजी के लिए धैर्य चाहिए, श्रद्धा नहीं।
खोजी के लिए अभय चाहिए, भय नहीं।
खोजी के लिए दुस्साहस चाहिए और एक गहन आत्मनिष्ठा चाहिए कि खोजूंगा, शायद मिल जाए। अपने पर भरोसा चाहिए।
तो जब बुद्ध कहते हैं, जो श्रद्धा से रहित है, वे यह कह रहे हैं कि वही श्रद्धा से रहित हो सकता है, जिसे स्वयं के होने में श्रद्धा है।
श्रद्धा तुम दूसरे पर करो तो यह आत्म-अविश्वास है, श्रद्धा तुम अपने
पर करो तो भीतर के दीए के जलने की संभावना है।
अब तुम फिर से सोचो, बुद्ध का क्या मतलब है! बुद्ध तुम्हें वस्तुतः श्रद्धा से भरना चाहते हैं, इसलिए सारी झूठी श्रद्धा को खींच लेना चाहते हैं। वास्तविक श्रद्धा तो खोज की श्रद्धा है--अन्वेषण की, आविष्कार की; पक्षपात की नहीं, धारणाओं की नहीं, विचारों की नहीं, अधैर्य की नहीं। अनंत धैर्य चाहिए।
और बुद्ध के वचन का यह भी अर्थ है कि जिसने अपने पर श्रद्धा की, वह अगर किसी पर कभी श्रद्धा करेगा तो उसका कोई मूल्य है।
मेरे पास लोग आते हैं; एक मित्र आए, उन्होंने कहा कि मेरे किए तो कुछ नहीं होता, मैं सभी आप पर छोड़ता हूं।
मैंने कहा, तुम छोड़ पाओगे? तुम्हारे किए कुछ भी नहीं होता, छोड़ पाओगे?
यह तुमसे हो सकेगा? वे थोड़े चौंके, थोड़े परेशान हुए। मैंने कहा कि तुमसे जब कुछ भी नहीं होता तुम्हारे किए, तो तुम इतना बड़ा काम करने चले आए? तुम थोड़ा सोचो; छोटे-मोटे काम तुम से नहीं हुए, यह तो आखिरी काम है--सब छोड़ देना। तुम मुझ पर छोड़ रहे हो, तुम्हें अपने पर भरोसा है?
उन्होंने कहा, नहीं है, इसलिए तो आपके पास आया हूं।
तुम्हें अपने पर भरोसा नहीं है, तुम्हें मुझ पर भरोसा कैसे होगा? क्योंकि तुम्हीं तो मुझे खोजकर आओगे। तुम अपनी ही आंखों से तो खोजोगे। तुम्हें अपनी आंख पर भरोसा नहीं है। तुम्हारी आंख ने तुम्हें बहुत बार धोखे दिए हैं, तुम्हारी आंख इस बार भी धोखा दे रही हो तो क्या करोगे? तो भीतर शक तो बना ही रहेगा।
तुम्हारी सभी श्रद्धाओं के भीतर संदेह छिपा है। तुम लाख उपाय करो, ढांको, सजाओ; तुम्हारी श्रद्धा संदेह की सजावट है,शृंगार है।
मैंने उनसे कहा, तुम कुछ दिन सोचकर आओ। बहुत गौर से समझना, क्योंकि जब तुम कुछ भी करने में समर्थ नहीं, तो यह तो आखिरी करना है। यह तो केवल वही समर्थ हो पाता है, जो बहुत कुछ करने में समर्थ हुआ है। जिसे भरोसा आ गया है कि मैं कुछ कर सकता हूं, वही यह कर पाता है। समर्पण संकल्प की आखिरी ऊंचाई है। सिर्फ संकल्पवान ही समर्थ है समर्पण करने में।
और फिर तुम कहते हो कि मुझे तो अपने पर बिल्कुल भरोसा नहीं। तो मैं तो सदा नंबर दो ही रहूंगा न! नंबर एक तो तुम्हीं रहोगे। तुम्हारे द्वारा ही तुम मुझे देखोगे। मैं तो दोयम ही रहूंगा, प्रथम तो नहीं हो सकता, प्रथम तो तुम्हीं रहोगे। यह तुमने ही मुझे खोजा, यह तुम्हीं मेरे पास आए, यह तुमने ही निर्णय लिया कि सब छोड़ दें। यह तुम्हारा ही निर्णय है, इस पर तुम्हें भरोसा है? अगर इस पर तुम्हें भरोसा है तो आत्मश्रद्धा होनी ही चाहिए भीतर। अगर इस पर तुम्हें भरोसा नहीं है तो तुम मुझ पर कैसे श्रद्धा कर सकोगे? बुद्ध ने कहा है, जो श्रद्धा से रहित है, इसका अर्थ हैः जो पर-श्रद्धा
से रहित है, आत्मश्रद्धा से जो भरा है।

और ऐसा व्यक्ति अगर कभी श्रद्धा करेगा, उसकी श्रद्धा का कोई मूल्य है, अर्थ है; उसकी श्रद्धा में कोई बल है।
तुम अगर आत्मश्रद्धा से हीन हो, फिर तुम किसी पर श्रद्धा कर लेते हो, तुम्हारी श्रद्धा मूलतः ही कमजोर है; उसमें जड़ें ही नहीं हैं, कागजी है।
इन कागज की नावों से कोई यात्रा होने वाली नहीं। डूबोगे, बुरी तरह डूबोगे। और मजा यह रहेगा कि तुम समझोगे कि दूसरे ने डुबाया।
मैंने उन सज्जन से यही कहा कि तुम केवल इतनी कोशिश कर रहे हो कि अब तुम जिम्मा अपने ऊपर न रखकर मेरे ऊपर डालना चाहते हो। तुम तो डूबोगे, अब तुमने एक तरकीब निकाली कि इस आदमी के कंधों पर रख दो जिम्मा--कि सब तुम पर छोड़ा, अब अगर डूबे तो याद रखना, तुम्हीं जिम्मेवार हो। तुम डूब ही रहे हो, नाव डूबी-डूबी हो रही है, सब तरफ से पानी भरा जा रहा है, घबड़ाहट में तुम श्रद्धा कर रहे हो। साबित नाव लेकर आओ।
वे कहने लगे, नाव साबित होती तो आता ही क्यों?
तब उलझन है। साबित नाव हो तो आने में कुछ अर्थ है, टूटी-फूटी नाव हो तो आने में कुछ अर्थ नहीं है।
इसलिए बुद्ध ने पहली बात कही, "जो श्रद्धा से रहित है।"
यह श्रद्धा का बड़ा अनूठा सूत्र है। जो पर-श्रद्धा से मुक्त है, वही धीरे-धीरे आत्मश्रद्धा खोजेगा। अगर तुमने पर-श्रद्धा को ही अपना आसरा बना लिया तो तुम धीरे-धीरे भूल ही जाओगे कि आत्मश्रद्धा की जरूरत है; यह तो परिपूरक हो जाएगा। यह तो ऐसा हुआ, जैसे झूठा सिक्का हाथ में आ गया और तुमने असली समझकर मुट्ठी बंद रखी।
यह भरोसा काम में आने वाला नहीं है। यह भरोसा तो महंगा पड़ा जा रहा है।
यह तो न हो तो अच्छा। डगमगाकर चलना, अपने ही पैर से चलना। ज्यादा देर डगमगाकर चलोगे न; गिरोगे, फिर उठोगे, धीरे-धीरे डगमगाहट कम होने लगेगी। धीरे-धीरे थिर होने की कला सीखने लगोगे। अगर तुमने अपने पैरों से नजर ही हटा ली और दूसरों के पैरों पर नजर रख ली तो दूसरे के पैर कितने ही थिर होकर चल रहे हों, वे तुम्हारे पैर नहीं हैं। और जो तुम्हारे पैर नहीं हैं, वे मंजिल तक न ले जाएंगे; अपने ही पैर ले जाते हैं।
हां, दूसरे से इशारे सीखे जा सकते हैं। बुद्ध पुरुषों से सीखो, लेकिन बुद्ध पुरुषों के कंधों पर बोझ मत बन जाओ। तुम जिसे श्रद्धा कहते हो, तुम समझते हो, तुम बड़ी कृपा कर रहे हो। तुम सिर्फ दायित्व फेंक रहे हो। तुम कह रहे हो, लो सम्हालो! अब अगर कुछ हुआ तो जिम्मेवारी तुम्हारी! अगर ठीक हुआ तो तुम्हारा अहंकार भरेगा कि देखो, हमने ठीक आदमी में श्रद्धा की। हमने श्रद्धा की ठीक आदमी में। और अगर डूबे, तो तुम कहोगे, इस आदमी ने डुबाया। इस आदमी ने धोखा दिया। ऐसे अहंकार खेल खेलता है।
इसलिए बुद्ध ने इसके लिए कोई जगह न छोड़ी। उन्होंने कहा, मेरे पास आओ
तो आत्मश्रद्धा से भरकर आना; लड़खड़ाते पैर लेकर मेरे पास मत आना। क्योंकि लंबी यात्रा है, ऐसा न हो कहीं कि तुम मुझे अपनी बैसाखी समझो। मैं किसी की बैसाखी नहीं हूं। हां, मेरे चलने को देखो, मेरे चलने की कला को समझो; कैसे पैर बिना डगमगाए पड़ते हैं, यह देखो; और समझो और कला सीखो। लेकिन पैर अपने ही; यात्रा उन्हीं से होनी है--अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद ही बनना होगा। रोशनी जलाने की कला किसी से भी सीख लो, लेकिन रोशनी तो अपनी ही जलानी होगी। आसरा मत ऊपर का देख
सहारा मत नीचे का मांग
यही क्या कम तुझको वरदान
कि तेरे अंतस्तल में राग
राग से बांधे चल आकाश
राग से बांधे चल पाताल
धंसा चल अंधकार को भेद
राग से साधे अपनी चाल
भीतर है तुम्हारा संगीत। न तो आकाश का सहारा मांगो, न तो ऊपर का, न नीचे का। सहारा ही मत मांगो। सहारा मांगना अपमानजनक है। सहारे की बात ही तुम्हारे डुबाने का कारण बनी है। बहुत सहारे मांगे, कहां पहुंचे?

धंसा चल अंधकार को भेद
राग से साधे अपनी चाल
भीतर के संगीत को पकड़ने की जरूरत है। जो तुम्हें चाहिए, तुम्हें मिला हुआ है; जरा पहचान बनानी है। जो चाहिए, हो सकता है अस्तव्यस्त हो; थोड़ी व्यवस्था जमानी है। जो चाहिए, हो सकता है अराजक हो और तुम्हारी समझ में ही न आता हो कि यहां क्या करें; थोड़ी समझ वहीं बढ़ानी है।
वीणा तुम्हारे भीतर है; तार अलग पड़े होंगे, वीणा अलग पड़ी होगी, खंड-खंड में होगी; खंडों को जोड़ना है। यह भी हो सकता है--बहुत बार ऐसा मैं देखता हूं, बहुत लोगों के भीतर--वीणा खंड-खंड में भी नहीं है, वीणा बिल्कुल तैयार है, उनकी अंगुलियों की प्रतीक्षा कर रही है, लेकिन उनकी अंगुलियां बाहर खोज रही हैं, बाहर टटोल रही हैं। और जितना जीवन में अंधकार बढ़ता जाता है, जितना जीवन में व्यर्थ का शोरगुल बढ़ता जाता है, उतनी बेचैनी से वे बाहर दौड़कर खोज में लग जाते हैं कि कहीं कोई संगीत, कहीं कोई सुराग, कहीं कुछ मिल जाए सहारा। और भीतर वीणा सड़ रही है तुम्हारी अंगुलियों की प्रतीक्षा में।
बुद्ध ने बड़ी अनुकंपा की कि तुम्हारे हाथ तुम्हारी तरफ मोड़ दिए। बुद्ध ने कहा, ले जाओ भीतर हाथ अपने, मुझे मत टटोलो। मेरी वीणा मैंने भीतर पाई है, तुम भी अपनी वीणा इसी तरह अपने भीतर पाओगे। इतना इशारा मुझसे समझो। तुम मेरे संगीत को बजता देखते हो? यह गुनगुनाहट तुम्हें सुनाई पड़ती है, जो मेरे भीतर हो रही है? यह मैंने अपने भीतर की वीणा पर अंगुलियों को चलाकर पाई है। तुम भी ऐसा ही करो।
बुद्ध पुरुषों के पीछे मत चलो। बुद्ध पुरुषों ने जो किया है, वह तुम
भी करो।
अब यह बड़े मजे की बात है। अगर ठीक से समझो तो यही बुद्ध पुरुषों के पीछे चलना है। उनके पीछे न चलना, अपने भीतर जाना--यही बुद्ध पुरुषों के पीछे चलना है, क्योंकि ऐसे ही वे अपने भीतर गए। अगर तुम बुद्ध पुरुषों के पीछे चल पड़े--बुद्ध पुरुष किसी के पीछे नहीं चले--भूल हो गई।
बुद्ध ने किसी वेद पर श्रद्धा न रखी, किसी उपनिषद पर आसरा न रखा। बुद्ध ने अपना उपनिषद भीतर खोजा। अब अगर तुम बुद्ध के वचनों पर श्रद्धा रखकर बैठ जाते हो, धम्मपद तुम्हारा वेद हो जाए--बहुतों का हो गया है--तो उलटी हो गई बात।
बोधिधर्म जब चीन पहुंचा तो चीन के सम्राट वू ने कहा कि मैंने बड़े शास्त्र छपवाकर बांटे हैं। उसने कहा, होली लगवा दो। सब शास्त्रों को होली में डाल दो। बोधिधर्म का एक बड़ा प्रसिद्ध चित्र है, जिसमें वह धम्मपद को फाड़कर आग में डाल रहा है। और बोधिधर्म से ज्यादा बुद्ध के निकट कौन? उतने करीब से कभी किसी ने बुद्ध को नहीं अनुगमन किया। और बुद्ध के वचनों को आग में डाल रहा है! क्योंकि बुद्ध ने ही सारे शास्त्रों को आग में डाल दिया था।
अब यह उलटी बात लगती है, लेकिन जरा भी उलटी नहीं है। तुम कहोगे, यह बोधिधर्म तो दुश्मन मालूम पड़ता है बुद्ध का। तो तुम चूक गए; तो तुम धर्म की पहेली को समझने से चूक गए। यह बोधिधर्म ही उनका अनुयायी है; यही उनको समझा, इसी ने पहचाना है। जब यह आग में डालता होगा धम्मपद को, तब बुद्ध ऊपर से फूल बरसाते होंगे।
मैं भी धम्मपद को आग में ही डाल रहा हूं--जरा और ढंग से; आग जरा सूक्ष्म है। क्योंकि बोधिधर्म ने जिस आग में डाला है, उसमें से तो बचाया जा सकता है। पानी छिड़क दो, आग बुझ जाएगी। जली-बुझी किताब लेकर भाग खड़े हो जाओ, उसी की पूजा चलती रहेगी। मैं कुछ और भी सूक्ष्म आग में डाल रहा हूं, जिसमें से धम्मपद धम्मपद होकर निकल ही न सकेगा। और तुम उसे बचा भी न सकोगे। क्योंकि तुम समझोगे कि व्याख्या हो रही है, मैं जला रहा हूं।
शास्त्र को जलाने की यही तरकीब मैंने सोची। आग में तो जलाए गए, लेकिन जले नहीं; लोगों ने बचा लिए। पूरे न बचे, अधूरे बचा लिए। जो अधूरे जल गए थे आग में, उनको प्रक्षिप्त करके जोड़ दिया, और भी उपद्रव हो गया।

कुछ ऐसी आग से गुजारना है कि शास्त्र जल भी जाए, तुम बचा भी न पाओ। और
जो भी शास्त्र में बचाने योग्य था, वह बच भी जाए--वह सदा बच जाता है, कोई आग उसे जला नहीं सकती।
धम्मपद आग में जलाया जा सकता है, धर्म तो नहीं जलाया जा सकता। धम्मपद जलाया जा सकता है, धर्म को कैसे जलाओगे? जो नहीं जलता, वही धर्म है। जो सब जलने के पार बच जाता है, वही धर्म है।
इसलिए जो शास्त्रों को बचाने में लगा है, उसे धर्म का पता ही नहीं है।
जो बचाना पड़ता है, जिसे बचाना पड़ता है, वह तो धर्म है ही नहीं।
"जो श्रद्धा से रहित है।"
बुद्ध ने किसी मंदिर, किसी शिवालय में सिर न झुकाया, इसलिए नहीं कि सिर झुकाने की तैयारी न थी; ये मंदिर, ये शिवालय सिर झुकाने के योग्य ही न थे। और यहां जो लोग सिर झुका रहे थे पंक्तिबद्ध, वे जरा भी सिर न झुका रहे थे, वे सिर्फ एक झूठा खेल कर रहे थे, एक अभिनय चल रहा था। झुकते थे और जरा भी नहीं झुकते थे।
दैरो-हरम में सर झुके, सर के लिए यह नंग है
झुकता है अपना सर जहां, वह दरो-आस्तां है और
इन पंक्तियों को जिसने भी लिखा होगा, बुद्ध की धारणा को समझकर ही लिखा होगा। बुद्ध ने कहा है कि मंदिर और मस्जिद में सिर झुके, यह अपमान है तुम्हारे भीतर के परमात्मा का। तुम चैतन्य को मिट्टी-पत्थर के सामने झुका रहे हो? तुम सम्राट को अपने ही बनाए खिलौनों के सामने झुका रहे हो?
बुद्ध ने कहा था, मेरी मूर्तियां मत बनाना, क्योंकि तुम बनाओगे तो तुम झुकने भी लगोगे। तुम झुकोगे तो भूल होगी, क्योंकि तुम्हारे भीतर असली मंदिर है, असली परमात्मा है, असली प्रतिमा है।
दैरो-हरम में सर झुके, सर के लिए यह नंग है
यह अपमान है, तुम्हारी गरिमा के योग्य नहीं।
झुकता है अपना सर जहां, वह दरो-आस्तां है और
वह दरवाजा और है, जहां सर झुकना चाहिए। वह दरवाजा तुम्हारे ही भीतर है, वह गुरुद्वारा तुम्हारे ही भीतर है, जहां सर झुकना चाहिए। और जहां झुकना गरिमापूर्ण है।
बुद्ध ने श्रद्धा ही सिखाई, लेकिन सम्यक श्रद्धा सिखाई। और सम्यक श्रद्धा का अनिवार्य हिस्सा है कि सारी अंधश्रद्धा चली जाए, पर-श्रद्धा चली जाए।
आत्मवान बनो! अपने तो बनो! कम से कम अपने तो बनो, फिर तुम किसी और के भी
बन सकते हो। जो अपने ही नहीं हैं, वे दूसरों के बनने निकल पड़ते हैं। पहले कदम से ही राह भटक जाती है।
"जो श्रद्धा से रहित है, जो अकृत को जानने वाला है"
बड़ी बहुमूल्य सूक्ति है, "जो अकृत को जानने वाला है।"
अकृत बुद्ध कहते हैं निर्वाण कोः जो किया न जा सके; जो होता हो।
इस जगत में सब चीजें की जा सकती हैं, सिर्फ एक परमात्मा नहीं किया जा सकता। वह तुम्हारे करने के बाहर है; वह तुम्हारा कृत्य नहीं है, अकृत है; उसे तुम कर न सकोगे। इस जगत में सब किया जा सकता है, समाधि नहीं की जा सकती। इस जगत में सब किया जा सकता है और करने से सब पाया जा सकता है, निर्वाण नहीं पाया जा सकता।
बुद्ध ने निर्वाण तब पाया, जब वे कुछ भी न कर रहे थे। जिन्होंने भी पाया, तभी पाया, जब वे कुछ भी न कर रहे थे।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम आलसी होकर बैठ जाना; क्योंकि तुम्हारी व्याख्याएं बड़ी मजेदार हैं। तुम अपनी तरकीब निकाल लेते हो। सुनते ही तुम्हारे मन में यही ख्याल उठता है कि बस, फिर तो ठीक, फिर तो हम कुछ कर ही नहीं रहे!
तो फिर तुम सोचने लगते हो कि फिर मैं तुम्हें क्यों इतने उपद्रवों में, ध्यान में और इस-उस में उलझाता हूं? जब कुछ न करने से मिलता है तो तुम पहले ही भले-चंगे थे, कुछ भी नहीं कर रहे थे, अब तुम्हें और मैंने उलझा दिया--ध्यान करो, प्रार्थना करो।

बुद्ध को न करने से मिला, लेकिन न-करने की दशा बहुत करने से आती है; जब तुम कर-करके थक जाते हो, तब आती है। जब कर-करके ऐसी घड़ी आ जाती है कि करना तुमसे गिर जाता है, तुम सम्हाल नहीं पाते उसे, तब आती है।
कृत्य की आखिरी ऊंचाई पर अकृत की शुरुआत होती है।
जब तक तुम्हें लगता है, तुम कुछ कर सकते हो, तब तक अकृत शुरू नहीं होता। कर ही डालो, जो तुम कर सकते हो; तभी तुम उस जगह आओगे, उस परिधि पर, जहां तुम्हें दिखाई पड़ेगा, अरे! अब आगे मुझसे कुछ भी नहीं हो सकता।
इस भेद को समझना। एक आदमी तो कह सकता है, मुझसे कुछ भी नहीं होता, सिर्फ आत्म-अश्रद्धा के कारण। और एक आदमी कह सकता है, अब मुझसे कुछ भी नहीं होता, क्योंकि वह उस पड़ाव पर आ गया है, जिसके आगे अकृत शुरू होता है। आलस्य से नहीं मिलता निर्वाण, अकृत से मिलता है।
अकृत का अर्थ हैः कृत के बाद, कृत के पार। आलस्य का अर्थ हैः कृत के पहले; और अकृत का अर्थ हैः कृत के बाद।
कर चुके सब। करने की आखिरी चरम अवस्था आ गई। ध्यान किया, योग किया, जप किया, तप किया, सब किया। उससे बहुत कुछ मिलता है, सिर्फ निर्वाण नहीं मिलता। शांति मिलेगी, आनंद मिलेगा, बड़े सुख की तरंगें फैल जाएंगी, बड़े गहन संगीत बजेंगे, नाच आ जाएगा जिंदगी में, उत्सव होगा, अंधेरी रात कट जाएगी, सुबह होगी--बहुत कुछ मिलेगा, निर्वाण नहीं मिलेगा।
निर्वाण का क्या अर्थ है फिर? निर्वाण का अर्थ ही होता हैः जहां तुम मिट जाओ। सुख मिलेगा, तुम रहोगे। शांति मिलेगी, तुम रहोगे। उत्सव होगा, तुम रहोगे। अभी थोड़ी सी कमी बाकी है--तुम हो। उतना ही कांटा अभी गड़ा है। वह कांटा भी जब निकल जाता है, तो निर्वाण।
निर्वाण का अर्थ हैः जब तुम बुझ जाते हो। निर्वाण शब्द का अर्थ है, बुझ जाना; जब तुम बिल्कुल नहीं बचते; तुम्हारा न होना हो जाता है।
समझो, कृत से तो तुम बढ़ोगे--मैं हूं, और मजबूत होता जाऊंगा। धन कमाओगे
तो मैं हूं; योग करोगे तो मैं हूं, क्योंकि मैं योगी हूं, इतना योग किया; तप करोगे तो मैं हूं, यह मैं तो बड़ा होता जाएगा। कृत से तो मैं बड़ा होगा। कृत से तुम आत्मवान बनोगे।
अब तुम्हें बुद्ध की भाषा समझनी बहुत सरल हो सकती है, अगर मेरी बात तुम्हारे ख्याल में आ जाए। कृत से तुम आत्मवान बनोगे--मैं हूं। और एक ऐसी घड़ी आएगी, जहां तुम पाओगे, जो किया जा सकता था, किया जा चुका; लेकिन अभी कुछ और एक कदम बाकी है, जो किया नहीं जा सकता। तुम तड़फोगे, भागोगे, दौड़ोगे, लेकिन वह कदम किया नहीं जा सकता। तुम विक्षिप्त होने लगोगे।
तुमने कभी सपने में ऐसा देखा? जागना चाहते हो, जाग नहीं सकते। हाथ हिलाना चाहते हो, हिला नहीं सकते। आंख खोलना चाहते हो, खोल नहीं सकते। कितने घबड़ा नहीं जाते हो! कितने बेचैन नहीं हो जाते हो! आंख भी खुल जाती है तो छाती धड़कती रहती है, पसीना माथे पर बहता रहता है। दुखस्वप्न देखा, तुम कहते हो।
तुम कल्पना करो थोड़ी इस दुखस्वप्न से। जिन्होंने योग की पराकाष्ठा साधी, उनके जीवन में एक ऐसी घड़ी जागते-जागते आती है--यह तो तुम्हारे सोते में घटता है कभी, उनके जागते में घटता है--एक ऐसी घड़ी आती है, कि बस एक कदम और, परमात्मा वह रहा! और वह कदम नहीं उठता। हाथ हिलाना चाहते हैं, हाथ नहीं हिलता। छलांग लगाना चाहते हैं, छलांग नहीं लगती। सांस लेना चाहते हैं, सांस नहीं ले सकते। और जागते में, परिपूर्ण जागरूकता में, बड़े होश में यह घटता है।
झेन फकीर कहते हैं--निर्वाण के लिए उनका शब्द है--द लास्ट नाइटमेयर; आखिरी दुखस्वप्न। जागते-जागते! तड़फते हो, चीखते-चिल्लाते हो, कोई सहारा नहीं, सब शून्य में खो जाता है--और बस एक कदम! मंजिल के सामने खड़े हो, द्वार खुला है, एक कदम और सब हल हो जाए; मगर यह नहीं उठता, नहीं उठता, नहीं उठता-- अकृत आ गया, निर्वाण आ गया।
क्या करते हो--जब दुखस्वप्न में ऐसा होता है कि तुम जाग नहीं पाते, आंख खोलना चाहते हो, आंख नहीं खुलती; हाथ हिलाना चाहते हो, हाथ नहीं हिलता--

क्या करते हो? कुछ भी नहीं करते। थोड़ी देर तड़फकर शांत रह जाते हो। जैसे ही शांत होते हो, आंख भी खुल जाती है, हाथ भी चल जाता है।
बस, ऐसी ही घड़ी अंतिम पराकाष्ठा पर घटती है। पहले बड़ी चेष्टा चलती है, बड़ी चेष्टा चलती है, फिर थककर आदमी गिर जाता है। अपने किए होता ही नहीं तो करोगे भी क्या? अपना किया पूरा का पूरा टूट जाता है, गिर जाता है। और जैसे ही तुम गिरते हो, तुम अचानक पाते हो, मंजिल पर आ गए। जो करने से नहीं हुआ, वह न करने से होता है।
भक्त इसको प्रसाद कहते हैं, क्योंकि उनके पास परमात्मा है, उनके पास परमात्मा की धारणा है। वे इसको प्रसाद कहते हैं। वे कहते हैं, अपने किए नहीं होता, वह देता है। बुद्ध इसको प्रसाद नहीं कह सकते, उनके पास भक्त की भाषा नहीं है। वे कहते हैंः अकृत।
अब तुम समझ लेना, यह सिर्फ भाषा का भेद है। बुद्ध कहते हैं, अकृत; क्योंकि परमात्मा तो है नहीं, जो दे दे। तुम कर नहीं सकते, कोई देने वाला है नहीं, अब होता जरूर है; तब एक ही उपाय रहा कि बिना किए होता है, अपने आप होता है।
भक्त के पास भाषा है। भाषा द्वंद्व चाहती है, द्वैत चाहती है। भक्त के पास द्वैत है--मैं और भगवान। उसको सुविधा है। वह कहता है, मेरे किए नहीं होता, कोई हर्जा नहीं है, तू दे दे; तेरे देने से हो जाता है।
बुद्ध अद्वैत की भाषा बोलना चाहते हैं, इसलिए अकृत शब्द का उपयोग किया है। अकृत का अर्थ हैः मेरे किए होता नहीं, देने वाला कोई है नहीं; किसी से मांगूं, ऐसा कोई है नहीं; किसी को पुकारूं, ऐसा कोई है नहीं--सूना, विराट, शून्य आकाश है--तो चीखता हूं, चिल्लाता हूं, दौड़ता हूं, भागता हूं, सब करता हूं। करते-करते, करते-करते एक चरम अवस्था आ जाती है, जिसके पार करने का उपाय नहीं रह जाता, गिर जाता हूं। उसी गिरने में निर्वाण घटता है। इसलिए बुद्ध ने निर्वाण को अनात्मा कहा। करने तक आत्मा, अत्ता; फिर जब करना ही गिर गया, उसी के साथ मैं भी गिर गया--अनत्ता।
बुद्ध के इस अनत्ता शब्द को समझने में बड़ी कठिनाई हुई। क्योंकि लोगों
ने कहा, यह तो हद हो गई, ईश्वर भी नहीं और आत्मा भी नहीं? तो फिर अब नास्तिकता में और क्या कमी रही? यह तो परम नास्तिकता हो गई।
जैनों को तो हिंदुओं ने बरदाश्त भी कर लिया। कम से कम परमात्मा को नहीं मानते, चलो कोई हर्जा नहीं, आत्मा को तो मानते हैं। पचास प्रतिशत आस्तिक हैं, चला लो। तो जैन चल गए--बहुत ज्यादा नहीं चले, लेकिन हिंदुओं ने बरदाश्त किया; फेंकने योग्य न मालूम पड़े--कि चलो एक कोने में बने रहेंगे। लेकिन बुद्ध को तो बरदाश्त करना ही असंभव हो गया। क्योंकि इसने तो सारी बात ही छोड़ दी; सौ प्रतिशत नास्तिक मालूम हुआ। पहले परमात्मा छीन लिया और आखिरी में अकृत कहकर आत्मा भी छीन ली; फिर अनत्ता बची, निर्वाण हुआ--जैसे दीया बुझ गया। यह आदमी तो महा नास्तिक है। इसलिए हिंदू बौद्धों से इतने नाराज रहे; क्षमा नहीं कर पाए बुद्ध को।
अंबेडकर ने इसका ही बदला लिया। जब हिंदुओं से उसका विरोध बढ़ता गया, बढ़ता गया, तो एक ही उपाय बचा। पहले वह सोचता था कि ईसाई हो जाए, मगर ईसाइयों से हिंदुओं का कोई खास विरोध नहीं है। यह कोई बात जंची नहीं उसे। कई बार सोचा, मुसलमान हो जाए, यह बात भी जंची नहीं, क्योंकि मुसलमानों से झगड़ा- झांसा हो, विरोध कुछ खास नहीं है। अंततः उसने तय किया कि बौद्ध होना चाहिए, क्योंकि इससे कभी हिंदुओं का कोई मेल का सवाल ही नहीं उठता। इससे बड़ा कोई विरोध ही नहीं हो सकता। सिर्फ बदला लेने के लिए अंबेडकर बौद्ध हुआ और हरिजनों के एक समूह को बौद्ध कर लिया।
यह राजनीति थी। बुद्ध धर्म लौटा भी तो न लौटने जैसा लौटा; गलत आदमी के हाथों लौटा। वैसे ही बुद्ध धर्म को भारी नुकसान हुआ; और अंबेडकर उसे वापस लाया तो और नुकसान हो गया। अब उसके लौटने के सब द्वार ही बंद हो गए।
लेकिन बुद्ध ने बड़ी परम सत्य की बात कही है। क्योंकि जब अकृत हो जाएगा
तो मैं कैसे बचेगा? मैं तो कृत का जोड़ है। जो-जो हमने किया है, उसका ही जोड़ मैं है।

तुमसे कोई पूछे, तुम कौन हो? तो तुम कहते हो, मैं इंजीनियर हूं, डाक्टर हूं, चित्रकार हूं, कवि हूं। इसका मतलब, तुम यह-यह करते रहे हो। अगर तुमसे कोई कहे कि तुम यह करने की बात छोड़ो, तुम सीधा बता दो कि तुम कौन हो? क्या तुमने किया, यह हम पूछ ही नहीं रहे। तुम कविता करते हो? हमें कुछ मतलब नहीं, कविता करो कि न करो। डाक्टरी करते हो? कोई मतलब नहीं हमें। तुम तो सीधा बता दो कि तुम कौन हो?
तो वह आदमी भी थोड़ा चकित होगा। वह कहेगा, फिर तो बताने का कोई उपाय न रहा। क्योंकि मैं कृत्य का जोड़ है। कोई कहता है, मैं चोर हूं, यह भी कृत्य का जोड़ है। कोई कहता है, मैं साधु हूं, यह भी कृत्य का जोड़ है। वह कहता है, इतने उपवास किए, त्याग किए, साधु हूं।
बुद्ध कहते हैं, जहां तक मैं है वहां तक संसार है, जहां अनत्ता का प्रारंभ होता है, अकृत का, और मैं नहीं, वहीं निर्वाण है।
"जो श्रद्धा से रहित है, जो अकृत को जानने वाला है, जो संधि को छेदन करने वाला है।"
बहुत बार तुमसे मैंने कहा है संध्या के लिए; संधि बुद्ध उसे कहते हैं।
दो विचारों के बीच, दो होने के बीच न-होने की संधि। दो अहंकारों के बीच खाली जगह, संधि।
"जो संधि को छेदन करने वाला है, जो हतावकाश है।"
जिसको अब संसार में आने की कोई जरूरत नहीं रह गई। जो अब वापस नहीं लौटेगा। लौटने का कोई कारण नहीं रहा। जिसने संधि पा ली, द्वार पा लिया। जिसने अकृत को जान लिया, जो मिट ही गया, उसे वापस कैसे लाओगे? जब तक हो, तब तक वापस आना है। जब तक मैं है, तब तक पुनर्जन्म है।
बुद्ध ने कहा है, जब तक तुम हो, तब तक बंधन है, क्योंकि तुम ही बंधन हो। औरों ने कहा है कि बंधन संसार है; संसार छोड़ो, संन्यास स्वीकार करो। औरों ने कहा है, वासना बंधन है; वासना छोड़ो, निर्वासना हो जाओ। औरों ने कहा है, संसार के विपरीत मोक्ष है। बुद्ध ने कहा, संसार के विपरीत मोक्ष नहीं है, मैं के विपरीत मोक्ष है। और बुद्ध ने बड़ी गहरी बात कही कि मैं ही संसार है। मैं को छोड़ो; बाकी कुछ छोड़े काम न चलेगा। धन छोड़ोगे, त्याग पकड़ लोगे। संसार छोड़ोगे, मोक्ष पकड़ लोगे, क्योंकि तुम्हारे मैं की पकड़ मौजूद है, वह कुछ भी पकड़ लेगी। मैं को छोड़ो, पकड़ को तोड़ो।
मैं की मुक्ति नहीं है मोक्ष, मैं से मुक्ति मोक्ष है।
"और जिसने तृष्णा को वमन कर दिया है, वही उत्तम पुरुष है।"
स्वर्ग तो कुछ भी नहीं है
छोड़कर छाया जगत की
स्वर्ग-सपने देखती दुनिया
सदा सोती रही है
मोक्ष तुम्हारा स्वप्न नहीं है। तुम लाख चेष्टा करके भी मोक्ष की कोई धारणा नहीं बना सकते। मोक्ष तुम्हारी कोई कामना नहीं है। तुम लाख विचार करके भी मोक्ष को समझ नहीं सकते। मोक्ष तुम्हारा कोई लोभ का विस्तार नहीं है।
इसलिए बुद्ध स्वर्ग और नर्क की बात नहीं करते, सिर्फ निर्वाण की बात करते हैं। उन्होंने मोक्ष के लिए भी नया शब्द उपयोग किया हैः निर्वाण। मोक्ष शब्द का भी उपयोग नहीं किया, क्योंकि मोक्ष से ऐसा लगता है कि तुम तो बचोगे; मुक्त हो जाओगे। मोक्ष शब्द में उन्हें खतरा दिखाई पड़ा।
जैसे एक आदमी जेलखाने में बंद है, फिर मुक्त हो गया तो जेलखाने से बाहर हो गया। आदमी तो रहेगा! वही का वही रहेगा, जो जेलखाने के भीतर था। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि जेलखाने से तुम बाहर हुए कि तुम न हुए; तुम बचोगे ही नहीं। तुम्हारा होना ही जेलखाना है। यह जेलखाना कुछ ऐसा नहीं है कि तुमसे बाहर है और तुम इसके बाहर हो सकते हो; यह जेलखाना कुछ ऐसा है कि तुम जहां रहोगे, वहीं रहेगा। यह तुम्हारे चारों तरफ चिपटा है; यह तुम्हारे होने का ढंग है।
इसलिए बुद्ध को एक नया शब्द खोजना पड़ा--निर्वाण। निर्वाण का अर्थ हैः संसार तुम हो; और जहां तुम नहीं हो, वहीं मोक्ष है।

सबके हृदय में शूल है
सबके पगों में धूल है
रुकना यहां पर भूल है
पथ पर कहीं विश्राम के लिए
सोना यहां अच्छा नहीं
संसार है, संसार है
सभी दुख से भरे हैं। दुख से भरे होने के कारण स्वभावतः सुख की आकांक्षा पैदा होती है। सभी नर्क में जी रहे हैं। नर्क में जीने के कारण स्वभावतः स्वर्ग की कल्पना पैदा होती है। स्वर्ग की कल्पना तुम्हारे नर्क का ही विस्तार है। सुख की कल्पना तुम्हारे दुख का ही फैलाव है। दोनों से मुक्त होना होगा; नहीं तो नींद जारी रहती है। जिसे तुम सुख कहते हो, वह ज्यादा से ज्यादा विश्राम है।
सोना यहां अच्छा नहीं
संसार है, संसार है
जिसे तुम सुख कहते हो, वह नींद है। जिसे तुम दुख कहते हो, वह जैसे किसी
ने नींद उचटा दी। अच्छा नहीं लगता नींद का उचट जाना; तुम फिर सो जाना चाहते हो। दुख जगाता है, सुख सुलाता है।
इसलिए जिन्होंने जीवन के सत्यों की गहरी खोज की है, वे कहते हैं, दुख सौभाग्य है, सुख दुर्भाग्य है। क्योंकि अगर तुम दुख के जागने में जाग जाओ तो तुम सत्य की खोज की यात्रा पर निकल जाते हो। लेकिन अगर तुम फिर सुख खोजने लगो, तो ऐसा ही समझो कि किसी ने जगा दिया, कुछ शोरगुल हो गया, बाजार की आवाज आ गई, सड़क से कोई कार निकल गई, नींद टूट गई, तुमने फिर करवट ले ली, फिर कंबल के भीतर छिपकर फिर तुम सो गए; फिर तुमने सुख में अपने को डुबा लिया।
सुख एक तरह का विस्मरण है, एक तरह की निद्रा है। दुख इस निद्रा में पड़ी हुई खलल। सब ठीक चल रहा था, दुकान अच्छी चल रही थी, दीवाली की दशा थी, अचानक दिवाला आ गया--बस, खलल पड़ गई। स्वास्थ्य ठीक चल रहा था, सब मजे से जा रहा था, अचानक बीमारी आ गई--खलल पड़ गई। सब ठीक चलता था, जैसा चलना चाहिए चलता था, पत्नी मर गई, पति मर गया--खलल आ गई। इस खलल का जो ठीक से उपयोग कर ले, दुख का जो ठीक से उपयोग कर ले तो दुख ही तप हो जाता है।
दुख के दो आयाम हैंः या तो तुम दुख के कारण फिर सोने की कोशिश करने लगते हो--और भी जोर से--शामक दवाएं खोज लेते हो, फिर से नींद में डूबने की चेष्टा करते हो; यह साधारण आदमी की चेष्टा है।
एक दूसरा आयाम भी है कि तुम दुख के जागरण को सौभाग्य मानते हो कि चलो, जगे तो! अब सोएंगे नहीं, अब जागते ही रहेंगे; अब इस जागने का उपयोग कर लेंगे। जो दुख में जागने का उपयोग कर लेता है, उसका दुख तप हो जाता है। दुख के दो आयाम हैंः सुख और तप, सोना और जागना; विस्मृति और स्मृति; होश और बेहोशी। दुख का कैसा तुम उपयोग करते हो, इस पर तुम्हारे सारे जीवन का रूपांतरण निर्भर है।
वही उत्तम पुरुष है, जिसने दुख से जागने का काम ले लिया। वही उत्तम पुरुष है, जिसने जाग-जागकर, सारा श्रम किया जागने का और ऐसी घड़ी छू ली, जहां अकृत का प्रवेश हो जाता है।
"गांव हो या वन, नीची भूमि हो या ऊंची, जहां कहीं अर्हत विहार करते हैं, वही भूमि रमणीय है।"
फूलों में सौंदर्य नहीं है; सूर्योदय में, सूर्यास्त में सौंदर्य नहीं है; सौंदर्य देखने वाले की आंख में है।
तुमने भी इसे देखा होगा। कभी तुम खुश होते हो, प्रसन्न होते हो, गुनगुनाते होते हो, तब फूल ज्यादा सुंदर मालूम पड़ते हैं। कभी तुम उदास होते हो, पीड़ित, परेशान होते हो, फूल बड़े कुम्हलाए, जरा-जीर्ण मालूम पड़ते हैं। कभी तुम प्रफुल्लित होते हो, चांद नाचता मालूम पड़ता है बदलियों में; और कभी तुम खिन्न मन होते हो, हताश मन होते हो, चांद भी ढला-ढला, उदास-उदास, थका-थका, घसिटता-घसिटता मालूम होता है। तुम्हारी दृष्टि में सब कुछ है। उसकी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि जब कोई अर्हत पुरुष... ।

अर्हत बुद्ध का शब्द है। अर्हत का अर्थ होता है कि जिसने अपने सारे शत्रुओं से विजय पा ली। अरि यानी शत्रु, हत यानी हरा दिया, जिसने सारे शत्रु हरा दिए, जो विजयी हुआ। जिसको जैनों ने जिन कहा है, उसको बुद्ध ने अर्हत कहा है। जिनः जो जीत गया।
"गांव हो या वन, नीची भूमि हो या ऊंची, जहां कहीं अर्हत विहार करते हैं, वही भूमि रमणीय है।"
अर्हत का होना रमणीय है। अर्हत के होने में सौंदर्य है। अर्हत के होने में अपूर्व मंगलदायी उत्सव है। जहां अर्हत चलता है, वहीं उसका उत्सव फैल जाता है।
तुम अर्हत को मरुस्थल में नहीं बिठा सकते; उसके मरुस्थल में भी फूल उग आते हैं। तुम अर्हत को अकेला नहीं कर सकते; उसके अकेले में परम नाद का आविर्भाव हो जाता है। तुम अर्हत को मार नहीं सकते; उसकी मृत्यु में भी निर्वाण ही फलित होता है।
"गांव हो या वन, नीची भूमि हो या ऊंची, जहां कहीं अर्हत विहार करते हैं, वही भूमि रमणीय है।"
चाह गई, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह
जिनको कछु न चाहिए सो ही शहनशाह
कबीर ने कहा है।
चाह गई, चिंता मिटी...
चिंता चाह की छाया है।
... मनवा बेपरवाह
जिनको कछु न चाहिए सो ही शहनशाह
वे सम्राट हैं; वे चक्रवर्ती सम्राट हैं।
बुद्ध पैदा हुए, ज्योतिषियों ने कहा, या तो यह लड़का सम्राट होगा चक्रवर्ती, या अर्हत तत्व को उपलब्ध बुद्ध पुरुष होगा। पिता बहुत चिंतित हुए। लेकिन आठ ज्योतिषी उन्होंने बुलाए थे सारे साम्राज्य से, सबसे बड़े ज्योतिषी बुलाए थे, उनमें एक कोदन्ना नाम का युवक ज्योतिषी भी था। सात ने तो यह विकल्प दिया कि या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा और या बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाएगा, संन्यासी होगा, परम संन्यासी होगा; लेकिन कोदन्ना ने कहा कि यह चक्रवर्ती सम्राट ही होगा।
पिता बहुत प्रसन्न हुए; उन्होंने कोदन्ना को भेंटों से भर दिया। लेकिन कोदन्ना ने कहा, ठहरो, शायद तुम समझे नहीं। यह बुद्ध पुरुष होगा, यही मेरा मतलब है। क्योंकि सिर्फ बुद्ध पुरुष ही चक्रवर्ती सम्राट होते हैं, और तो कोई नहीं। इसमें विकल्प है ही नहीं।
तब तो पिता बड़े दुखी हुए। क्योंकि यह कोदन्ना सबसे महत्वपूर्ण ज्योतिषी था; युवा था, लेकिन इसकी आंख बड़ी पैनी थी। और सच में ही इसकी आंख पैनी रही होगी। क्या गजब की बात उसने कही, कि होगा तो यह बुद्ध पुरुष ही, यही मेरा मतलब है, तुम समझे नहीं। झोली मेरी भरने के पहले थोड़ा ठहरो। इन्होंने तो विकल्प भी दिया है, मैं तुम्हें विकल्प भी नहीं देता; यह होगा तो बुद्ध पुरुष ही। लेकिन वही एकमात्र ढंग है चक्रवर्ती होने का, और तो कोई ढंग ही नहीं।
चाह गई, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह
जिनको कछु न चाहिए सो ही शहनशाह
स्वामी राम अपने को बादशाह कहते थे; था उनके पास कुछ भी नहीं। जब वे अमरीका गए और वहां भी उन्होंने अपनी यह बात जारी रखी, तो यहां भारत में तो चलती है, वहां लोगों को बड़ी हैरानी हुई--बादशाह! अमरीकी प्रेसीडेंट भी उनसे मिलने आया था। तो उसने भी कहा कि जरा और तो सब ठीक है, आपके पास कुछ दिखाई नहीं पड़ता, आप बादशाह कैसे? उन्होंने कहा, इसीलिए! इसीलिए कि मेरे पास कुछ भी नहीं है।
चाह गई, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह
जिनको कछु न चाहिए सो ही शहनशाह

मैं सम्राट हूं, क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं। जिनके पास कुछ है, उनके पास सीमा है; उनके साम्राज्य की परिधि है। जिनके पास कुछ भी नहीं है, उनके पास शून्य का साम्राज्य है, असीम साम्राज्य है, वे चक्रवर्ती हैं। "गांव हो या वन, नीची भूमि हो या ऊंची, जहां कहीं अर्हत विहार करते हैं, वही भूमि रमणीय है।"
"ऐसे रमणीय वन हैं, जहां सामान्यजन नहीं रमते। वीतराग पुरुष ही वहां रमते हैं, जिन्हें काम-भोगों की तलाश नहीं रहती।"
पर्त दर पर्त सौंदर्य छाया है चारों तरफ। तुम जो देखते हो, वह तुम्हारी सीमा की खबर है; उससे अस्तित्व का कुछ संबंध नहीं। तुम्हें जो दिखाई पड़ता है, वह तुम्हारी दृष्टि की खबर है। यहां पर्त दर पर्त, फूल के भीतर फूल, किरणों के भीतर किरणें छिपी हैं। यहां रूप के भीतर रूप, और रूपों के अंततः अरूप छिपा है। यहां सौंदर्य ही सौंदर्य की वर्षा हो रही है। अगर तुम वंचित रह जाते हो तो कहीं भूल तुम्हारी है।
यहां बूंद के पीछे बूंद, और सारी बूंदों की पंक्तियों के, अनंत पंक्तियों के पीछे सागर छिपा है। कितना तुम पाते हो, यह तुम पर निर्भर है-- कि कितना तुम पी सकते हो! तुम्हारा पात्र कितना है! मेघ तो बरसते हैं, असीम को बरसा जाते हैं, तुम्हारे पात्र में लेकिन उतना ही पड़ता है, जितना तुम्हारा पात्र सम्हाल पाता है।
जिसे तुमने पत्थर-कंकड़ों का जगत समझा है, वहीं परमात्मा भी छिपा है।
और जहां-जहां तुम्हें सीमा दिखाई पड़ती है, वहीं असीम का नर्तन चल रहा है।
जहां तुम्हें स्वर सुनाई पड़ते हैं, वहीं उस शून्य का नाद भी गूंज रहा है।
तुम जैसे-जैसे सूक्ष्म होने लगोगे, वैसे ही सूक्ष्मतर सौंदर्य की पर्तें उघड़ने लगती हैं। तुम जितने स्थूल होते चले जाते हो, उतना ही जीवन कुरूप होता चला जाता है।
"रमणीय ऐसे वन हैं, जहां सामान्यजन नहीं रमते।"
रम ही नहीं सकते। वे वहां से गुजर भी जाते हैं तो भी उन्हें दिखाई नहीं पड़ता। कभी-कभी वे वहां पहुंच भी जाते हैं तो भी उन्हें पता नहीं चलता कि कहां पहुंच गए! बुद्ध पुरुषों के पास पहुंचकर भी कुछ लोग खाली हाथ ही लौट जाते हैं।
इस संसार में बहुत कुछ घट रहा है। तुम ऐसा मत मानकर बैठ जाना कि जो तुमने जाना है, बस इति आ गई।
इति तो आती ही नहीं। शास्त्रों की इति आती है। जीवन के शास्त्र की कोई इति नहीं। न कोई आदि है, न कोई अंत है, सदा मध्य है यहां।
और जितना खोजोगे, उतना पाते चले जाओगे। सीमा कभी आती ही नहीं। खोजते- खोजते खोजने वाला ही मिट जाता है। सौंदर्य इतना घना होने लगता है कि तुम बचते ही नहीं। भरते-भरते पात्र पिघल जाता है, भरते-भरते पात्र मिट जाता है, लेकिन भरना नहीं मिटता।
कोहसारों का यह गाता हुआ शाबाद सकूत
यह हवाओं में लरजता हुआ रंगीन खुमार
यह सनोवर के दरख्तों की बुलंदी का वकार
बज रहा है मेरे महबूब मेरे दिल का तार
कोहसारों का यह गाता हुआ शाबाद सकूत
पहाड़ों के सौंदर्य की गीत गाती शांति!
यह हवाओं में लरजता हुआ रंगीन खुमार
हवाओं में कंपती, डोलती खुमारी! मस्ती!
यह सनोवर के दरख्तों की बुलंदी का वकार
ये ऊंचाइयां सनोवर के दरख्तों की, ये आकाश को छूने की आकांक्षाएं!
बज रहा है मेरे महबूब मेरे दिल का तार
जैसे-जैसे तुम्हें पहाड़ों का संगीत सुनाई पड़ता है, वृक्षों की अभीप्सा का अनुभव होता है, जैसे-जैसे तुम्हें हवाओं में डोलती मस्ती का थोड़ा सा स्वाद आता है, वैसे-वैसे तुम्हारे भीतर उस प्यारे का तार भी बजने लगता है। उस इकतारे पर किसी की अंगुलियां पड़ने लगती हैं।

इसकी शुरुआत तो है, इसका अंत कोई भी नहीं।
"रमणीय हैं ऐसे वन, जहां सामान्यजन नहीं रमते।"
नहीं कि सामान्यजनों को वहां पहुंचना असंभव है; वे पहुंचकर भी नहीं पहुंच सकते, उनकी आंख ही चूक जाती है। उनके पास देखने का ढंग नहीं, सलीका नहीं। उनके पास देखने की शैली नहीं, उनके पास ध्यान नहीं।
सौंदर्य को जानना हो तो ध्यान चाहिए।
सत्य को जानना हो तो ध्यान चाहिए।
शिवत्व को जानना हो तो ध्यान चाहिए।
ध्यान के बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं है। ध्यान यानी पात्रता; ध्यान यानी अपने भीतर अवकाश, जगह।
"वीतराग पुरुष ही वहां रमते हैं।"
क्यों? वीतराग पुरुष क्यों?
"जिन्हें काम-भोगों की तलाश नहीं।"
क्योंकि जब तक तुम्हारे मन में काम-भोग की तलाश है, तब तक तुम्हें स्थूल का दर्शन होगा।
ऐसा समझो कि एक लकड़हारा जाता है जंगल में, सनोवर के आकाश को छूते वृक्ष, उसे केवल लकड़ियां दिखाई पड़ती हैं, जिनका ईंधन बनाया जा सकता है। या एक मूर्तिकार जाता है, उसे उस वृक्ष में मूर्तियां छिपी हुई दिखाई पड़ती हैं, जिनको उघाड़ा जा सकता है। या एक चित्रकार जाता है, या एक कवि जाता है, तो अलग-अलग अनुभव होते हैं--वृक्ष वही है।
और जब कोई अर्हत पहुंच जाता है उस वृक्ष के नीचे, तो जो उसे दिखाई पड़ता है, सिर्फ उसे ही दिखाई पड़ सकता है। यह मैं बिल्कुल शब्दशः--यह कोई प्रतीक का उपयोग नहीं कर रहा हूं--शब्दशः ऐसा सच है। जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, वह तुम्हारी देखने की सीमा की खबर है। जो अर्हत पुरुषों को दिखाई पड़ता है, उसकी कोई सीमा नहीं। उन्हें एक छोटा सा गुलाब का फूल भी परमात्मा का पर्याप्त प्रमाण हो जाता है। तुम्हारी दृष्टि पर... ।
एक सुंदर स्त्री तुम्हें दिखाई पड़ती है, सुंदर पुरुष दिखाई पड़ता है, तत्क्षण वासना जगती है। एक अर्हत पुरुष को भी सुंदर स्त्री दिखाई पड़े तो वासना नहीं जगती, प्रार्थना जगती है। एक धन्यवाद का भाव आता है, एक अनुग्रह का भाव आता है। अगर अर्हत पुरुष भक्त हो तो परमात्मा को धन्यवाद देता है कि तूने सौंदर्य बनाया। अगर अर्हत पुरुष भक्त न हो तो धन्यवाद देता नहीं, कोई प्रार्थना नहीं उठती, कोई शब्द नहीं बनते, लेकिन एक अहोभाव, एक धन्यता का भाव--धन्यवाद नहीं, क्योंकि धन्यवाद देने को कोई भी नहीं है-- लेकिन एक धन्यता का भाव कि धन्य हूं, अहोभागी हूं। होना ही इतना बड़ा अहोभाग है, और चारों तरफ सौंदर्य से भरे होना, चारों तरफ सौंदर्य से घिरे होना!
तुम पर निर्भर करता है। तुम कहां हो, यह तुम्हारा चुनाव है। तुम जहां हो, वहीं सब कुछ बदल सकता है, सिर्फ तुम्हारा चुनाव बदले।
"ऐसे रमणीय वन हैं, जहां सामान्यजन नहीं रमते; वीतराग पुरुष ही वहां रमते हैं... ।"
लेकिन उस रमणीयता को खोज तुम तभी पाओगे, जब मन से वासना गिर जाए। क्योंकि वासना तो बड़ी स्थूल है; वह तो बड़ी ओछी बात पर उलझी रहती है; उसकी नजर ही ओछी रहती है; उस नजर से वह पार जा ही नहीं सकती।
अगर वासना से भरकर तुमने किसी की देह को देखा तो चमड़ी का ऊपर का आकार
ही तुम्हारी पकड़ में आएगा। अगर तुमने निर्वासना से भरकर किसी को देखा तो हड्डी-मांस-मज्जा के भीतर छिपा हुआ जो चैतन्य है, उसकी तुम्हें झलक मिलेगी।
अब तुम थोड़ा सोचो, अगर तुम्हारा मन निर्वासना से भर जाए तो चारों तरफ कितने चिराग, कितने चिन्मय दीप, चारों तरफ कितनी मशालें जल रही हैं चैतन्य की! दीवाली प्रतिक्षण हो रही है। उत्सव चल ही रहा है। यह महोत्सव कभी समाप्त नहीं होता। क्षणभर को विराम नहीं पड़ता।
एक फूल झरता है तो हजार खिल जाते हैं।
एक द्वार बंद होता है तो हजार खुल जाते हैं।

यह महोत्सव चलता ही चला जाता है। अर्हत पुरुष इस महोत्सव में जीता है।
निश्चित ही ऐसे रमणीय वन हैं, जहां सामान्यजन नहीं रमते; केवल वीतराग पुरुष ही रमते हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 4
चालीसवां प्रवचन

चरैवेति चरैवेति

पहला प्रश्नः आप कैसे समझेंगे कि मैं प्रेम में हूं और मैं कैसे समझूं कि आपने मेरा प्रेम स्वीकारा?

प्रेम हो तो छिपाए भी नहीं छिपता; और प्रेम न हो तो कितना ही बताओ, बताया नहीं जा सकता।
प्रेम के होने में ही उसकी अभिव्यक्ति है। जैसे सूरज निकलता है, तब सूरज के होने का और क्या प्रमाण चाहिए? सूरज का होना ही काफी प्रमाण है। प्रेम की रोशनी सूरज से भी ज्यादा है; तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि सूरज को देखने के लिए तो तुम्हारे पास आंख है, प्रेम को देखने के लिए तुम्हारे पास आंख नहीं।
प्रेम हो तो छिपाए नहीं छिपता। प्रेम का होना इस जगत में सबसे सघनीभूत घटना है; उससे ज्यादा सूक्ष्म कुछ भी नहीं है, उससे ज्यादा विराट भी कुछ नहीं है।
प्रेम यानी परमात्मा की झलक।
इसीलिए तो जिससे तुम्हें प्रेम हो जाए, उसमें परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। अगर तुम्हें अपने प्रेमी में परमात्मा न दिखाई पड़े तो प्रेम हुआ ही नहीं, कुछ और हुआ होगा; तुमने कुछ और समझ लिया। जहां भी प्रेम हो, वहां परमात्मा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। प्रेम की आंख हो तो परमात्मा पैदा हो जाता है।
और जीवन जुड़ा है। हर चीज एक-दूसरे से जुड़ी है। घास का पौधा भी चांद-तारों से जुड़ा है। घास का पौधा भी कंपता है तो चांद-तारे कंप जाते हैं। सब कुछ संयुक्त है।
उपनिषदों ने कहा है, यह सृष्टि ऐसे है, यह विश्व ऐसे है, जैसे मकड़ी का जाल। एक कोने से मकड़ी के जाल को जरा सा हिलाओ, पूरा जाल हिल जाता है, दूर-दूर तक के कोने हिल जाते हैं।
यह कायनात का आहंग है कि सहरे-हयात
चटक कली की सितारों को गुदगुदाती है
चटक कली की सितारों को गुदगुदाती है--छोटी सी कली! पर दूर के बड़े-बड़े सितारे भी छोटी कली के खिलने से खिल जाते हैं।
तुम अगर मेरे प्रेम में हो तो तुम इसकी फिक्र छोड़ दो कि मुझे पता चलेगा कि नहीं; चल ही जाएगा। मेरे पास प्रेम को देखने की आंख है। तुम्हें बताने की जरूरत भी न पड़ेगी। तुम्हें यह न कहना पड़ेगा कि तुम्हें प्रेम है। तुम्हारी उलझन भी मैं समझता हूं, क्योंकि तुम्हारे पास अभी प्रेम की आंख नहीं, तो तुम डरते हो, कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे भीतर प्रेम हो और मुझे पता भी न चले।
तुम्हारे भय को मैं समझता हूं। तुम्हारे भय से मेरी सहानुभूति है, लेकिन इसकी तुम चिंता ही छोड़ दो। तुम्हें प्रेम है तो मुझे पता चल ही जाएगा। तुम सिर्फ प्रेम में डूबने की फिक्र करो। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि प्रेम हो और पता न चले।
लेकिन साधारणतः हमें प्रेम को जतलाना पड़ता है, बतलाना पड़ता है। प्रेमी एक-दूसरे से कहते नहीं थकते कि मुझे तुमसे प्रेम है; मुझे तुमसे प्रेम है। यह सिर्फ इस बात की खबर है कि उन्हें डर है कि कहीं ऐसा तो न होगा कि हम यहां जलते ही रहें और दूसरी तरफ पता ही न चले! इधर हम मरते ही रहें और दूसरी तरफ खबर भी न हो!
पर ऐसा कभी हुआ ही नहीं। ऐसा कभी होता ही नहीं। प्रेम इतनी बड़ी घटना है, छिपाए नहीं छिपती। तुम्हारा रोआं-रोआं कहने लगता है, तुम्हारे होने का ढंग कहने लगता है। तुम उठते और ढंग से हो, तुम बोलते और ढंग से हो, तुम्हारी आंखें बदल जाती हैं, तुम्हारे चेहरे की आभा बदल जाती है। प्रेम इतने विराट

का उतर आना है तुममें कि तुम्हारी सारी सीमाएं डांवाडोल हो जाती हैं। तुम एक मस्ती से भरकर चलते हो, जैसे शराबी चलता है।
और जिसने प्रेम की शराब पी ली, फिर उसे शराब की जरूरत नहीं रह जाती। शराब की जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि कहीं प्रेम की शराब से चूकना हो गया है। दुनिया में शराब बढ़ती चली जाती है, क्योंकि प्रेम घटता चला जाता है। मस्ती तो चाहिए ही; एक बेखुदी तो चाहिए ही; अन्यथा आदमी जीए कैसे, किस सहारे जीए? कुछ भीतर लबालब, कुछ भरापन तो चाहिए ही; अन्यथा आदमी जीए किसलिए? किस कारण जीए? एक मस्ती तो चाहिए ही; अन्यथा चलना बोझ हो जाता है, उठना बोझ हो जाता है। किसलिए उठो? क्या प्रयोजन है?
जीवन एक सौभाग्य नहीं मालूम होता प्रेम के बिना, जीवन एक दुर्भाग्य
बन जाता है। तब लोग जीवन को घसीटते हैं। तब जीवन तुम्हारे साथ लंगड़ाता है। तब जीवन का आशीर्वाद तुम्हें उपलब्ध नहीं होता, उलटे ऐसा लगता है कि किस दुष्ट परमात्मा ने यह मजाक की!
फियोदोर दोस्तोवस्की का प्रसिद्ध उपन्यास हैः ब्रदर्स कर्माझोव। अनूठा! अपने तरह का अकेला! विश्व-साहित्य में फिर वैसी दूसरी कोई कृति नहीं। उसमें एक नास्तिक पात्र है, जो जीवन से ऐसा उदास, इतना बुझा-बुझा हो गया है कि वह एक दिन परमात्मा की तरफ, आकाश की तरफ आंख उठाकर कहता है कि मुझे तुझमें भरोसा तो नहीं; मैं जानता तो नहीं कि तू है, लेकिन अगर कहीं तू हो और मुझे मिल जाए तो मैं यह जीवन तुझे वापस लौटाना चाहता हूं। यह जो तूने मुझे जीवन में प्रवेश का अधिकार दिया, यह तू वापस ले ले। न होना भला इस होने से।
प्रेम के बिना होने से न होना भला हो जाता है। और अगर प्रेम हो तो न होना भी एक गहन होने को अपने भीतर समा लेता है। होने की तो बात ही छोड़ो, न होना भी सुखद हो जाता है। होना तो परिपूर्ण आनंद हो जाता है, न होना भी सौभाग्यपूर्ण हो जाता है।
प्रेम जीवन की ज्योति है। प्रेम के बिना घर ऐसे है, जैसे दीया बुझ गया
हो और अंधेरा घर! प्रेम के बिना जीवन ऐसे है, जैसे वीणा के तार टूट गए हों, संगीत से खाली और शून्य वीणा! प्रेम के बिना जीवन ऐसा है, जैसे वृक्ष तो हो और फूल न आए हों और फूलों ने आने से इनकार कर दिया हो--बांझ वृक्ष! प्रेम जीवन को भरता है। प्रेम के बिना जीवन की प्याली खाली है; प्रेम हो तो भर जाती है।
और जब तक प्रेम न हो, तब तक तुम्हें लगता ही रहेगा--खाली... खाली... खाली... ! एक उदासी, एक संताप, एक चिंता, व्यर्थ की भागदौड़! कहीं कोई सार नहीं, कहीं कोई अर्थ नहीं, कहीं कोई लय नहीं। जैसे किसी ने मजाक किया हो; जैसे परमात्मा शुभ न हो, शैतान हो; जैसे उसने मजाक किया हो, तुम्हें सताने के लिए पैदा किया हो; कि तुम किलबिलाओ, कि तुम परेशान होओ, कि तुम पीड़ित होओ और वह दुष्ट आततायी ऊपर से बैठकर इस खेल को देखे!
प्रेम जैसे ही तुम्हें छूता है--जैसे सुबह की ठंडी हवा आ जाए, पुलक-पुलक ताजा हो जाए; जैसे रात चांद उग आए, सब तरफ चांदी फैल जाए।
सुबह की आज जो रंगत है वह पहले तो न थी
क्या खबर आज खरामां सरे-गुलजार है कौन
आज मेरे बगीचे से कौन गुजर गया?
सुबह की आज जो रंगत है वह पहले तो न थी
सुबह तो बहुत हुईं, लेकिन सुबह पहली बार होती है, जब प्रेम होता है।
सुबह की आज जो रंगत है वह पहले तो न थी
क्या खबर आज खरामां सरे-गुलजार है कौन
कौन आज सुबह-सुबह मेरे बगीचे से गुजर गया? कौन मेरे हृदय से गुजर गया है? सब अधखिली कलियां चटक गयीं, फूल बन गयीं। मुर्झाए पौधे जीवंत हो गए, हरे हो गए। मरुस्थल जगमगा उठा, दीपमालिका सज गई।
शाम गुलनार हुई जाती है, देखो तो सही
यह जो निकला है लिए मशअले-रुखसार है कौन
यह कौन मेरे हृदय में मशाल लेकर निकल गया?
शाम गुलनार हुई जाती है, देखो तो सही

यह जो निकला है लिए मशअले-रुखसार है कौन
प्रेम आता है, एक झंझावात की तरह जगा जाता है।
प्रेम आता है, नींद तोड़ जाता है।
प्रेम आता है, प्रकाश से भर जाता है।
प्रेम आता है, तत्क्षण लगता है, अब जीवन में गति आई, गंतव्य आया; कहीं पहुंचने जैसी कोई बात हुई। नाव को दिशा मिलती है।
मैं तो समझ लूंगा, अगर तुम्हें यह समझ में आ गया हो--
सुबह की आज जो रंगत है वह पहले तो न थी
अगर तुम्हें यह समझ में आ गया हो कि आज दिल का हाल कुछ और! किसी ने छुआ
है और वीणा जाग उठी है। किसी ने छुआ है और वीणा गुनगुनाने लगी है। किसी ने छुआ है और मौन बोल उठा है।
तुम्हें भर पता हो! तुम मेरी फिक्र छोड़ो। तुम्हें पता चले इसके पहले मुझे पता चल जाएगा। तुम्हें पता चलेगा उसके पहले मुझे पता चल जाएगा। क्योंकि तुम भी अपने हृदय के उतने करीब नहीं हो, जितना मैं तुम्हारे हृदय के करीब हूं। तुम्हें पता चलने में थोड़ी देर लग जाएगी, तुम अपने से थोड़े ज्यादा दूर हो। मैं तुमसे ज्यादा करीब हूं, क्योंकि मैं अपने करीब हूं। जो अपने करीब है, वह सबके करीब है, क्योंकि अपने करीब होना सबके करीब
हो जाना है। उस भीतर के जगत में अपना और पराया कोई है? उस भीतर के जगत में मैं और तू कोई है? जिस दिन मैं अपने करीब हुआ, उसी दिन मैं तुम्हारे करीब हो गया हूं।
हो सकता है, प्रेम तुम्हारे भीतर जगे, तुम्हें थोड़ी देर से पता चले। तुम पहले तो चौंकोगे; पहले तो तुम भरोसा न कर सकोगे; पहले तो तुम संदेह से भरोगे कि यह क्या हुआ है? जरूर कोई कल्पना होगी, कोई मन का खेल--फिर कोई खेल, फिर कोई स्वप्न ने पकड़ा मालूम हुआ।
पहले तो तुम लाख उपाय करोगे इसे झुठलाने के, कि यह नहीं है; क्योंकि यह खतरा है, यह जोखिम है। यहां चलना खतरे से खाली नहीं है। पहले तो तुम सम्हालोगे। तुम्हारे पैर तो कभी न लड़खड़ाए थे। तुम तो सदा सम्हलकर चले थे। तुम तो बड़े होशियार थे और आज यह कैसी दीवानगी छाई जाती है? और आज यह क्या हुआ जाता है? पैर लड़खड़ाने लगे। तुमने तो कभी पी न थी, आज यह तुम्हें क्या हुआ है?
तुम पहले तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाओगे। तुम्हारा सारा अतीत डगमगा जाएगा। ऐसे तो तुम कभी भी न थे। यह कुछ नया हुआ है! तुम इंकार करोगे, क्योंकि मन जो अतीत है, उससे ही बंधा रहना चाहता है। मन नए से भयभीत है। इसीलिए तो मन परमात्मा को कभी भी नहीं खोज पाता, क्योंकि परमात्मा नित-नूतन है।
मन तो बंधी लकीर का फकीर है; बंधे-बंधाए रास्तों पर सुविधापूर्ण दौड़ता रहता है। ट्रामगाड़ी है, बंधी पटरियों पर दौड़ती रहती है; ऐसा मन है। जब पहली दफा तुम पाओगे कि पटरियां नीचे से हट गयीं; बिना पटरियों के तुम अनजान में उतरे जाते हो--घबड़ा जाओगे, ठिठककर खड़े हो जाओगे; पुराने सूत्र को पकड़ने की चेष्टा करोगे, नए से बचना चाहोगे।
लेकिन प्रेम आ जाए तो तुम बच न सकोगे; देर-अबेर तुम्हें स्वीकार करना
ही पड़ेगा। क्योंकि प्रेम का आनंद ऐसा है। अपरिचित है माना, क्योंकि आनंद ही तुम्हें अपरिचित है; अनजान है माना, क्योंकि जो तुमने जाना है, वह जानने योग्य भी कहां था? उतरते हो किसी ऐसे लोक में, जिसका हाथ में कोई नक्शा नहीं है।
डर स्वाभाविक है, लेकिन डर भी तभी तक है जब तक प्रेम की घटना नहीं घटी है। एक बार घटे तो धीरे-धीरे डर छूट जाता है। कौन प्रेम को छोड़ेगा भय के लिए? थोड़ी देर जद्दोजहद होगी, थोड़ी देर तुम लड़ोगे, थोड़ी देर तुम बचोगे, थोड़ी देर तुम उपाय करोगे, लेकिन प्रेम सब व्यर्थ कर जाता है। प्रेम तुमसे बड़ा है; तुम्हारे उपाय कारगर नहीं हो सकते।
तुम से पहले मुझे पता चल जाता है। अस्तित्व की भाषा है; और जिसने अपने
को जाना, उसने अस्तित्व की भाषा जानी।

इतने लोग मेरे पास आते हैं, जब कोई प्रेम से आता है तो उसके आने का ढंग
ही और। जब कोई प्रेम से आता है, तभी आता है; बाकी आते मालूम पड़ते हैं, जाते मालूम पड़ते हैं। बाकी आते हैं, जाने के लिए; प्रेम से भरकर जो आता है, वह आ गया; फिर कोई जाना नहीं है। प्रेम में कोई लौटने का उपाय नहीं है।
तो अगर तुम्हें लगता हो, अगर तुम्हें खबर मिली हो, संदेशा पहुंच गया हो, तुम्हारे हृदय की खबर तुम्हारे मस्तिष्क तक आ गई हो, जहां तुम विराजमान हो; सिर में जहां तुम बैठे हो, वहां तक अगर हृदय के तार झंकार पहुंच गए हों तो तुम मेरी फिक्र मत करो। तुमने न जाना था, उसके पहले ही मैंने स्वीकार कर लिया है। मैं उसकी प्रतीक्षा ही कर रहा हूं। तुम्हारे भीतर प्रेम का जन्म हो, यही तो मेरी सारी सतत चेष्टा है। क्योंकि प्रेम से ही परमात्मा का सूत्र हाथ में आएगा।
घबड़ाना मत और इस चिंता में मत पड़ना कि मैं स्वीकार करूंगा या नहीं! प्रेम को कब कौन अस्वीकार कर पाया है? प्रेम को अगर कभी अस्वीकार किया गया है तो प्रेम के कारण नहीं, प्रेम में छिपी वासना के कारण। प्रेम को अगर कभी अस्वीकार किया गया है तो प्रेम के कारण नहीं, किसी और चीज के कारण, जिसने प्रेम का ढोंग बना रखा था।
एक युवक मेरे पास आया और उसने कहा, मैं एक युवती के प्रेम में हूं, क्या वह मुझे स्वीकार करेगी? मैंने कहा, मुझे उस युवती का कोई पता नहीं, लेकिन प्रेम का मुझे पता है; अगर प्रेम है तो प्रेम अस्वीकार होता ही नहीं। तू फिर से सोच, प्रेम है? वह थोड़ा डगमगाया; उसने कहा, कह नहीं सकता। तो फिर मैंने कहा, जब तेरे ही पैर डगमगा रहे हैं, अभी तुझे ही साफ नहीं है। तू फिर सोचकर आ। तू सात दिन इस पर ध्यान कर। युवती की तो तू फिक्र छोड़ दे, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। जीवन के नियम के विपरीत तो कोई कभी गया नहीं है। तुझे अगर प्रेम है तो तू फिर से सोचकर आ। सात दिन बाद वह आया और उसने कहा कि क्षमा करें, प्रेम मुझे नहीं है; सिर्फ वासना थी। प्रेम का मैंने नाम दिया था।
वासना तो स्वीकार हो जाती है--यह आश्चर्य है, चमत्कार है। जब प्रेम अस्वीकार होगा, तो चमत्कार होगा। वैसा चमत्कार कभी हुआ नहीं।
और मेरे प्रेम में जो पड़ते हैं... मेरे प्रेम में पड़कर तुम पा क्या सकते हो? सिर्फ खो सकते हो। मेरे प्रेम में पड़कर तुम्हें मिलेगा क्या? मिटोगे। मेरे प्रेम में पड़कर तुम विसर्जित होओगे, विलीन होओगे।
तो मुझसे तो प्रेम बन ही नहीं सकता, अगर तुम्हारी कोई भी मांग हो, कोई
भी कामना हो। मुझसे प्रेम का अर्थ तो प्रार्थना ही है।
अगर खबर मिल गई हो, हिम्मत से बढ़े चलो; शायद दो-चार कदम दूर ही मंजिल है। प्रेम से मंजिल बहुत फासले पर है ही नहीं; बस, दो-चार कदम की बात है। याद की रहगुजर जिस पर इसी सूरत से
मुद्दतें बीत गई हैं तुम्हें चलते चलते
खत्म हो जाए जो दो-चार कदम और चलो
मोड़ पड़ता है जहां दश्ते-फरामोशी का
एक ऐसा जंगल आता है, जहां सब खो जाता है।
मोड़ पड़ता है जहां दश्ते-फरामोशी का
जिससे आगे न कोई मैं हूं न कोई तुम हो
खत्म हो जाए जो दो-चार कदम और चलो
याद की रहगुजर जिस पर इसी सूरत से
मुद्दतें बीत गई हैं तुम्हें चलते चलते
कितने समय से चल रहे हो! इसी रास्ते पर कितने जन्म बीते! अगर सिर्फ एक बात की तैयारी हो--खो जाने की तैयारी हो--तो दो-चार कदम और!
खत्म हो जाए जो दो-चार कदम और चलो
मोड़ पड़ता है जहां दश्ते-फरामोशी का
जिससे आगे न कोई मैं हूं न कोई तुम हो
प्रेम की खबर मिली यानी मौत की खबर मिली। प्रेम की खबर मिली यानी मौत
ने पुकारा। और यह ऐसी मौत है, जिसमें मरकर कोई फिर पैदा नहीं होता।

उस मौत की बात नहीं कर रहा हूं, जिसमें तुम मरकर कई बार पैदा हुए। उस मौत से तो कुछ खास फर्क पड़ता नहीं। चोले बदल जाते हैं, देह बदल जाती है, जरा-जीर्ण वस्त्रों की जगह नए वस्त्र मिल जाते हैं। उस मौत से तो कुछ मिटता नहीं। उस मौत से तुम नहीं मिटते; तुम तो बने ही रहते हो, तुम तो बचे ही रहते हो। जिसे तुमने अब तक मौत की तरह जाना--शरीर छिन जाते हैं, मन नहीं छिनता। मन तो यात्रा पर चलता ही रहता है।
याद की रहगुजर जिस पर इसी सूरत से
मुद्दतें बीत गई हैं तुम्हें चलते-चलते
मैं तुम्हें एक ऐसी मौत का निमंत्रण दे रहा हूं, जो आखिरी है, जो आत्यंतिक है, अल्टीमेट है, चरम है, जहां शरीर का सवाल नहीं, जहां मन के मिटने का सवाल है; जहां तुम्हारे मिटने का सवाल है।
इधर मैं मिटा बैठा हूं; मुझसे प्रेम करने का मतलब है, तुम्हारे मन में मिटने की आकांक्षा आ गई। मुझसे प्रेम का मतलब है कि पतंगा शमा की तरफ चला। मुझसे प्रेम का मतलब है, अब तुम अपने पंख जलाने चले; अब तुम अपने को मिटाने चले।
इससे ही तो बहुत थोड़े से लोग मेरे पास आ पाएंगे। सदा ऐसा ही हुआ है; मिटने को बहुत थोड़े लोग तैयार हैं। मगर सौभाग्यशाली हैं वे जो मिटने को तैयार हैं, क्योंकि मिटकर ही जीवन का परम सत्य पाया जाता है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि तुम अभी अहंकार से भरे हो। यह अहंकार है क्या? और यह कैसे पता चले कि क्या-क्या अहंकार है और क्या-क्या अहंकार नहीं है?

जो पता चलाना चाह रहा है, वही अहंकार है। अहंकार तरकीब खोज रहा है अब।
वह कहता है ठीक, चलो माना; चलो कौन विवाद करे? स्वीकार! अब यह तो पता कर लो, क्या-क्या अहंकार है और क्या-क्या अहंकार नहीं है?
सभी कुछ अहंकार है। तुम्हारे पास जो भी है, सभी कुछ अहंकार है। इसको मैं बेशर्त कहता हूं। क्योंकि शर्त बांधी कि अहंकार उसी शर्त में बच जाएगा; तुम जो बचाओगे, उसी में छिप जाएगा।
तुम अगर कहोगे, प्रार्थना तो अहंकार नहीं? प्रेम तो अहंकार नहीं? तो फिर अहंकार उसी आड़ में बच जाएगा। ये अहंकार की तरकीबें हैं! आड़ खोजना। वह कहता है, प्रार्थना तो अहंकार नहीं! तो चलो, प्रार्थना के पीछे ही छिप जाएं; अब से प्रार्थना ही करेंगे। और तब तुम कहने लगोगे कि मैं परमात्मा का पूजक! परमात्मा का पुजारी! मेरी पूजा देखो, मेरे जैसा पुजारी और कोई भी नहीं। मेरा प्रेम देखो, मेरे जैसा प्रेमी तुम कहीं पाओगे? अहंकार वहीं खड़ा हो जाएगा।
अगर मैंने तुमसे कहा, विनम्रता अहंकार नहीं है, तो विनम्रता के पीछे खड़ा हो जाएगा। अहंकार कहेगा, मुझसे विनम्र कभी कोई हुआ है!
अहंकार ने ऐसी बहुत सी शरण-स्थलें खोज रखी हैं। किसी ने कहा दान, किसी
ने कहा पूजा, किसी ने कहा नमाज, किसी ने कहा त्याग, किसी ने कहा उपवास, किसी ने कहा संन्यास--बस, अहंकार वहीं छिप जाएगा। अहंकार को अड़चन थोड़े ही है किसी चीज में छिप जाने से!
कोई धन की ही थोड़े ही जरूरत है, निर्धन का भी अहंकार होता है। अमीर ही थोड़े ही अकड़कर चलते हैं, गरीब भी अकड़कर चलते हैं। अमीर अकड़कर चलता है धन के कारण, गरीब अकड़कर चलते हैं निर्धनता के कारण। वे कहते हैं, हम गरीब भले! क्या रखा है चांदी के ठीकरों में? गरीबी बड़ी नियामत है।
शहर का आदमी अकड़कर चलता है, क्योंकि शहर का है; गांव का आदमी अकड़कर चलता है, क्योंकि गांव का है। जिनके पास बहुत बुद्धि है, वे अकड़कर चलते हैं कि हम बड़े बुद्धिमान हैं; जिनके पास बुद्धि नहीं, वे कहते हैं, क्या रखा है बुद्धि में? हम तो सीधे-सादे आदमी हैं।
अकड़ के लिए कोई भी बहाना काफी है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं बेशर्त, तुम्हारे पास जो भी है, सभी अहंकार है। जिस दिन तुम्हारे पास जो भी है, सभी

अहंकार की समझ तुम्हें आ जाएगी, अहंकार को बचने की जगह न रही; फिर अहंकार कहीं छिप न सकेगा।
समझदारी भी शरण बन जाती है, नासमझी भी शरण बन जाती है। भोग तो शरण बनता
ही है, त्याग भी शरण बन जाता है।
त्यागियों का अहंकार देखते हो, कैसा दीप्त! कैसा चमकता हुआ! भोगी का अहंकार थोड़ा बोथला होता है, त्यागी के अहंकार में धार होती है। अभी-अभी उसकी तलवार पर धार रखकर आई है। भोगी तो थोड़ा डरता भी है, क्योंकि कहता है, भोगी हूं, कैसे कहूं? सारी दुनिया को पता है। त्यागी डरता भी नहीं; वह कहता है, त्यागी हूं। त्यागी बताना चाहता है--सारी दुनिया को पता चल जाए। भोगी तो थोड़ा छिपाता भी है। पापी तो डरता है, छिपाता है, किसी को पता न चल जाए; त्यागी बतलाता है, प्रदर्शनवादी हो जाता है। तुमने पापियों की शोभा- यात्राएं देखीं? महात्माओं की निकलती हैं, रथ निकलते हैं।
बड़ी कठिनाई है। मगर कठिनाई को जड़ से पकड़ लो तो बड़ी नहीं है, जरा सी है। हां, जड़ से ही न पकड़ो तो फिर कठिनाई है।
तुम एक कमरे को साफ कर लोगे, अहंकार दूसरे कमरे में छिप जाएगा। भवन बड़ा है, इसमें बहुत कमरे हैं। फिर तो यह लुका-छिपी चलती रहेगी जन्मों- जन्मों। ऐसा ही तो चलता रहा है। एक तरफ से बचे, दूसरी तरफ से पकड़े गए। दूसरी तरफ से बचे तो तीसरी तरफ से पकड़े गए।
यह लुका-छिपी का खेल बंद करो। मैं तुमसे कहता हूं, सभी अहंकार है, क्योंकि तुम अहंकार हो। तुम्हारा सब अहंकार है--सब!
थोड़ा ज्यादा लगेगा; लगेगा मैं अतिशयोक्ति कर रहा हूं; जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। अगर अहंकार से छूटना हो तो यही गहरी समझ चाहिए। और अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ जाए, एक आह निकल जाएगी। अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ जाए तो कुछ बचेगा तुम्हारे भीतर, जिसका तुम्हें अभी पता ही नहीं; जो अभी सब भांति छिपा है तुम्हारे अहंकार में, अहंकार के हटते ही प्रगट होगा।
अस्तित्व तो होगा, तुम न होओगे। शुद्ध अस्तित्व होगा, तुम्हारी सीमा
न होगी। आंगन की दीवालें गिर जाएंगी और आंगन आकाश हो जाएगा।
आंगन पूछता है, दीवाल का कौन सा हिस्सा है, जो मेरी सीमा बनाता है? जो हिस्सा सीमा बनाता हो, उसको गिरा दें। लेकिन आंगन की दीवाल पूरी की पूरी सीमा बनाती है; ऐसा कुछ नहीं है कि एक-आध हिस्सा सीमा बनाता है। अगर एक-आध हिस्सा सीमा बनाता है तो तुम वहां दरवाजा लगा देना; लेकिन इससे आंगन आंगन ही रहेगा। दरवाजे वाला आंगन हो जाएगा, आकाश नहीं हो जाएगा आंगन।
सारी दीवालों को विदा करना होगा--बेशर्त!
समझ चाहिए। तुम मुझसे मत पूछो कि क्या अहंकार नहीं है? क्योंकि मैंने कुछ भी कहा, अगर मैं कहूं, आत्मा... ।
इसलिए तो बेचारे बुद्ध को आत्मा तक को इनकार कर देना पड़ा; क्योंकि उन्होंने देखा कि बहुत से लोग आत्मा के पीछे छिपे बैठे हैं। वे कहते हैं, हम आत्मा हैं; अहं ब्रह्मास्मि। आत्मा ही नहीं, मैं ब्रह्म हूं। अब क्या करोगे?
उपनिषद के ऋषि ने जब कहा था, मैं ब्रह्म हूं, तो जोर ब्रह्म पर था। पीछे चलने वाले लोग जब दोहराते हैं, अहं ब्रह्मास्मि, तो जोर अहं पर होता है, मैं पर होता है। मैं ब्रह्म हूं, इसमें मैं असली चीज है, ब्रह्म हो या न हो। ब्रह्म तो भ्रम भी हो सकता है, लेकिन मैं हूं और ब्रह्म भी मेरा है। उपनिषद के ऋषि ने कहा था, चूंकि मैं नहीं हूं, इसलिए ब्रह्म। जोर ब्रह्म पर था; मैं, मेरा क्या होना न होना! भाषा की बात थी।
बुद्ध ने कहा, आत्मा भी नहीं, ब्रह्म भी नहीं।
तुम्हारे हाथ में कुछ भी पकड़ने को न छोड़ा। इससे ज्यादा कठोर शिक्षक कभी पैदा नहीं हुआ, क्योंकि इससे बड़ा करुणा का स्रोत ही कभी पैदा नहीं हुआ। इसने तुम्हें शरण न छोड़ी, सब छीन लिया; कहा, सब धर दो, सब रख दो-- तुम्हारा शरीर भी नहीं, तुम्हारा मन भी नहीं, तुम्हारे विचार भी नहीं, तुम्हारी आत्मा, तुम्हारे परमात्मा, तुम्हारे शास्त्र, वेद, कुछ भी नहीं-- तुम सब रख दो। तुम जो भी रख सकते हो, वह रख ही दो अलग; तब वही बच जाएगा, जो

तुम रख ही नहीं सकते अलग, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है। उस शुद्ध स्वभाव का नाम निर्वाण है; अकृत। वह करने से नहीं मिलता, करने से तो अहंकार ही भरता है।
मुझे कई ऐसे संन्यासी मिलने आ जाते हैं, जिनकी श्वास-श्वास अहंकार से भरी है। अकड़कर चलते हैं--अहं ब्रह्मास्मि की गूंज! लेकिन उनकी नाक देखो, उनकी आंख देखो, उनके नथुने देखो, सब के भीतर अहंकार बड़ी जोर से श्वास लेता मालूम पड़ता है। दो संन्यासियों को एक मंच पर बिठाना मुश्किल है। कौन ऊपर बैठे? कौन नीचे बैठे? जो नीचे बैठ जाए, वह नीचा हो जाएगा। जिनकी बुद्धि अभी यहां अटकी हो... इनकी पूजा चलती है।
एक बड़े संन्यासी, जिनके बहुत शिष्य हैं, उन्होंने मुझे निमंत्रण दिया
तो मैं गया। वे अपने मंच पर बैठे थे। उनके पास ही एक छोटा मंच था, उस पर एक दूसरे संन्यासी बैठे थे। जब मेरी उनसे बात होने लगी तो उन्होंने कहा कि देखें, आप देखते हैं यहां कौन बैठा हुआ है? मैं देख तो रहा हूं, कोई बैठे हुए हैं, लेकिन कौन हैं, मैं जानता नहीं। कहने लगे कि ये इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे, मगर बड़े विनम्र आदमी हैं। इनकी विनम्रता देखते हैं? सदा मुझसे नीचे बैठते हैं।
वे बड़ी मंच पर बैठे हैं, वे उनसे जरा मझौल मंच पर बैठे हैं, और बाकी लोग
सब जमीन पर बैठे हैं। मैंने कहा कि ये आपसे तो नीचे बैठे हैं, मगर हम लोगों से ऊपर बैठे हैं। इनको एक गड्ढा खोदकर बिठाओ; यह न चलेगा।
और मैंने कहा, यह तो मैं मान लिया कि ये विनम्र हैं, आपके संबंध में क्या? ये तो नीचे बैठे हैं, आप ऊपर चढ़े बैठे हैं। अगर इसी वजह से ये विनम्र हैं कि नीचे बैठे हैं, तो आपके संबंध में क्या!
मैंने कहा, फिर बताने की क्या जरूरत कि चीफ जस्टिस थे? अब संन्यासी हो गए। जो मर ही गया, उसकी बात क्या करनी! लेकिन आप मुझसे यह कह रहे हैं कि मेरे अनुयायियों में चीफ जस्टिस भी हैं हाईकोर्ट के। और चीफ जस्टिस भी हाईकोर्ट के मुझसे नीचे बैठते हैं। मैंने कहा, इनको मैं देख रहा हूं गौर से; ये कानूनी आदमी हैं, इनकी नजर से कानून दिखाई पड़ रहा है। ये रास्ता देख रहे हैं कि कब आप खिसकें, ये ऊपर बैठें। इसलिए ये बीच में बैठे हैं; इनको पार करके दूसरा न जा पाएगा।
वे दोनों बड़े नाराज हो गए। उन्होंने कहा, आप शिष्टाचार की सीमा तोड़ रहे हैं। मैंने कहा, मैंने तो समझा संन्यासियों से बात हो रही है, क्या शिष्टाचार? सत्याचार! शिष्टाचार तो संसारी रखते हैं, संन्यासी से बात हो रही हो तो सत्याचार; इसमें क्या शिष्टाचार! नाराज क्यों होते हैं? उन्होंने बुलाया तो था मुझे बोलने, अब वे बड़े घबड़ाए। शाम को उनकी बड़ी सभा थी, कोई बीस हजार लोग मौजूद थे। अब वे बड़ी बेचैनी में पड़ गए, बड़ी राजनीति शुरू हो गई कि इस आदमी को बोलने देना कि नहीं! क्योंकि पता नहीं यह आदमी क्या कहे! इतना सत्याचार उन्हें जमा नहीं।
ठीक शाम को खबर आई कि मैं बोल न सकूंगा। मैंने कहा कि चलो तो मैं सुनने
ही आ जाता हूं। अब इसको वे मना न कर सके। सुनने के लिए तो क्या मनाही है? चलो, अब इतनी दूर आ गया हूं तो सुन ही लूंगा।
जब मैं वहां मंच पर बैठ गया तो लोग चिल्लाने लगे कि सुनना है। मैंने कहा, अब इनकी मैं सुनूं, क्या करूं? वे सभापति थे; उन्होंने कहा, मैं सभापति हूं। तो मैंने कहा कि अब पूरी सभा कह रही है। मैंने कहा, हाथ उठवा लें। तो पूरी सभा ने हाथ उठा दिए। मैंने कहा, अब मैं सभापति की मानूं कि सभा की? आप पति रहे नहीं; यह तो तलाक हो गया! अब तो मैं बोलूंगा।
तो जिन्होंने मुझे निमंत्रण देकर बुलाया था, उनकी परेशानी तुम समझ सकते हो। अहंकार बड़े रास्ते खोजता है। वे उठकर चले गए। उन्होंने खड़े होकर कह दिया, सभा विसर्जित--हालांकि सभा विसर्जित न हुई, वे उठकर चले गए। अहंकार विनम्रता में छिप जाएगा। अज्ञान ज्ञान की शरण में छिप जाता है। तुम जरा अपने अंधेरे को तो देखो! तुम्हारा अंधेरा बड़ा कुशल है। हो सकता है, प्रकाश के सहारे छिपा बैठा हो। अंधेरा बड़ा चालाक है।
हिंदी के एक बड़े कवि थे--महाकवि दिनकर--सदा मुझे मिलने आते थे। पटना मैं जाता--उनके गांव--तब तो वे निश्चित आते ही; कहीं भी उन्हें पता चल जाता,

आसपास होते तो मुझे मिलने आते। मूर्धन्य कवि थे, बड़ी प्रतिभा थी, मुझसे लगाव था।
एक बार मुझे मिलने आए, संयोग की बात, मुझसे उन्होंने कहा कि डायबिटीज
की बीमारी उन्हें हो गई है। तो मैंने कहा कि यह तो बड़ा मुश्किल हुआ, क्योंकि उनको मिष्ठानों से बड़ा लगाव था, जैसा सभी बिहारियों को... हमारे मैत्रेय जी बैठे हैं। अब बड़ी मुश्किल हो गई, डायबिटीज हो गई और मिठाई! तो मुझसे बोले कि बड़ा मुश्किल में पड़ गया हूं। यह तो जीना दूभर हो गया, मिठाई बिना चलता नहीं। तो मैंने उनकी एक कविता उनको सुनाई। उसकी दो पंक्तियां हैं--
रुग्ण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषध के सिवा उपचार क्या
शमित होगा वह नहीं मिष्ठान्न से
यह उनकी कविता है। मैंने कहा, महाराज! यह आपने काहे को लिखी होगी? यह तुम्हारी डायबिटीज से निकली है।
रुग्ण होना चाहता कोई नहीं
रोग लेकिन आ गया जब पास हो
तिक्त औषध के सिवा उपचार क्या
शमित होगा वह नहीं मिष्ठान्न से
अब कोई इसको पढ़ेगा तो समझेगा, जिसने लिखा है, जानकर लिखा है। यह जिसने लिखा है, जानकर नहीं लिखा; वे खुद ही जीवनभर पीड़ित रहे। अभी-अभी तो वे चल बसे, शरीर छोड़ दिया; लेकिन बड़ा दुख उनको डायबिटीज का नहीं था, बड़ा दुख मिष्ठान्न छूट जाने का था। वे जब भी आते, मुझसे पूछते, ऐसी कोई तरकीब नहीं? कोई ऐसी विधि मुझे बताएं--आप तो इतनी विधियां खोजते हैं--कि मिष्ठान्न भी खाता रहूं और डायबिटीज सताए न। सदियां बीत जाएंगी, यह कविता तो रहेगी, किसी को याद भी न रहेगा कि दिनकर को डायबिटीज थी। लोग इसको बड़ा मूल्यवान वचन समझेंगे--मूल्यवान वचन है।
तुम क्या कहते हो, इससे पक्का पता नहीं चलता कि तुम क्या हो। तुम कहो, अहं ब्रह्मास्मि और वहां केवल अहं विराजमान हो सिंहासन पर। तुम समझदारी की बातें करो और केवल नासमझी को छिपाने का उपाय हो। तुम विनम्र बन जाओ और वह केवल अहंकार को आभूषण देने की व्यवस्था हो।
तो मैं तुमसे कहता हूं--बेशर्त! जो कुछ तुम्हारे पास है--पूरा जोड़, रत्तीभर नहीं छोड़ता, पूरा-पूरा अहंकार है। इसलिए चिंता में मत पड़ो कि क्या छोड़ना है? सभी छोड़ना है, सभी के पार जाना है; फिर जो शेष रह जाएगा... ।
और जरूर शेष रह जाएगा, क्योंकि तुम्हारे पास कुछ ऐसा भी है, जो तुमसे ज्यादा है। तुम्हारा जोड़ अहंकार है, लेकिन तुम्हारे भीतर कुछ ऐसा भी है, जो तुम्हारे जोड़ से ज्यादा है, तुमसे पार है। तुम्हारे भीतर तुमसे विराटतर कुछ है। तुम्हारे भीतर तुमसे गहरा कुछ है। तुम्हारे भीतर तुमसे ऊंचा कुछ है। तुम्हारे भीतर ऐसा कुछ है, जो तुम्हारे मैं से अछूता है, कुंआरा है।
पर उसको कोई नाम न दें तो अच्छा। अगर नाम दें, अहंकार उसी नाम की आड़ में छिप जाएगा। कहो आत्मा, वह उसी के पीछे बैठ जाएगा। वह कहेगा कि चलो, मैं आत्मा हूं, खतम हुई बात।
इसलिए बुद्ध ने कहा, कुछ भी नहीं हो तुम, शून्य हो। शून्य के पीछे न छिप पाएगा। इसलिए बुद्ध ने ब्रह्म शब्द का उपयोग न किया, शून्य का उपयोग किया। बुद्ध ने शून्य का उपयोग किया इसलिए नहीं कि ब्रह्म शब्द से कुछ एतराज था, तुम्हारी चालाकियों से; तुम्हारी चालाकियों का होश था। ब्रह्म के पीछे तुम बड़े मजे से छिप जाओगे। कंबल बन जाएगा ब्रह्म और तुम उसके अंदर छिपकर विश्राम करने लगोगे। शून्य का तुम कंबल न बना पाओगे।
बुद्ध का शब्द-शब्द उपयोगी है। बड़े सोचकर, बड़े ध्यान से उन्होंने एक-
एक शब्द का उपयोग किया है। मोक्ष शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि मोक्ष में तो मैं बना रहेगा, मैं मुक्त हो जाऊंगा। उन्होंने कहा, निर्वाण। तुम तो रहोगे ही नहीं।

तीसरा प्रश्नः वर्षों पहले जब पहली बार मैंने आपको देखा, तब मेरी आंखें चौंधिया गयीं; और उसी दिन से एक ज्योति हर क्षण मेरी दृष्टि के मध्य प्रज्वलित रहती आई है। यह रहस्यमयी ज्योति क्या है? क्या यह मेरी दृष्टि की कोई खराबी तो नहीं है?

मन चाहेगा समझाना कि खराबी है। मन कहेगा, किस झंझट में पड़े हो? दिमाग खराब हो रहा है? ऐसे कहीं ज्योतियां दिखाई पड़ी हैं! मन तरकीबें खोजेगा, ताकि तुम मन के पार न जा पाओ।
अगर तुमने भर नजर मुझे देखा है तो ऐसा होगा ही कि आंखें चौंधिया जाएंगी। अगर नहीं चौंधियाई हैं तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि तुमने मुझे देखा ही नहीं, तुम इधर-उधर देखते रहे हो। तुमने सीधी आंख से आंख नहीं मिलाई। तुम बच-बचकर चलते रहे हो। तुमने होशियारी बरती है। तुमने पागलों की तरह मुझसे मुठभेड़ नहीं कर ली। तुम शिष्टाचारपूर्वक किनारे से निकल गए हो।
ऐसा होगा ही। और अक्सर ऐसा होता है कि पहली बार होगा, क्योंकि पहली बार तुम सावधान नहीं होते। जब पहली दफा कोई मेरे पास आता है तो सावधान नहीं होता; उसे पता ही नहीं किसके पास जा रहे हैं। सीधा चला आता है, झंझट में पड़ जाता है, उलझ जाता है। दूसरी दफा तो तुम कुशल हो जाते हो। तीसरी दफा तो तुम बड़े कुशल हो जाते हो। फिर तो कुशलता की पर्तें तुम्हें घेर लेती हैं।
पहला मिलन बहुत महत्वपूर्ण है।
ठीक हुआ। आंखें चौंधिया ही जाएंगी। आंखों की सामर्थ्य क्या! आंखों की बड़ी सीमा है। आंखों के पास अगर कभी भी अदृश्य का कोई भी जलवा आ जाए, अदृश्य का अगर कोई भी थोड़ा सा कतरा आ जाए, तो आंखें चौंधिया जाएंगी। डांवाडोल हो जाओगे, जैसे सिर पर पत्थर मार दिया गया हो। दिन में, भरे दिन में चांद-तारे दिखाई पड़ जाएंगे।
तब मन हजार-हजार व्याख्याएं करना चाहेगा, ताकि जो घटा है, उसको मन समझा ले, अपनी परिभाषा में बांध ले। अगर मन की परिभाषा में बंध जाए तो ठीक, फिर मन निश्चिंत हो जाता है, क्योंकि तब बात मन का हिस्सा हो गई। अगर मन की परिभाषा में न बंधे, जैसा कि हो रहा है... ।
"वर्षों पहले जब पहली बार मैंने आपको देखा, तब मेरी आंखें चौंधिया गयीं; और उसी दिन से एक ज्योति हर क्षण मेरी दृष्टि के मध्य प्रज्वलित रहती आई है।"
वह ज्योति सदा से प्रज्वलित थी, उस दिन तुम्हें दिखाई पड़ गई। उस चौंधियाने के क्षण में तुम भीतर मुड़ गए। मुझसे मुठभेड़ करके तुम अपने पर फेंक दिए गए। जैसे कोई दीवाल में गेंद को मारे तो गेंद लौट आती है; ऐसे ही तुम... मुझसे मुठभेड़ हो गई तुम्हारी। तुम्हारी आंख मुझसे टकराकर वापस लौट गई। वापस लौटती आंख ने तुम्हें वह दिखा दिया, जो सदा से भीतर जल ही रहा है। सबकी ज्योति जली हुई है, बुझी कभी नहीं। बुझ जाए तो फिर कोई जला न सकेगा। बुझ जाए तो तुम होओगे कैसे? तुम हो, यह काफी प्रमाण है कि ज्योति जली है। लेकिन तुम भीतर नहीं जाते अपने; तुम बाहर-बाहर जाते हो।
उस दिन अचानक तुम्हारी आंख चोट खाकर भीतर लौट गई। उस लौटने की यात्रा में, उसे अपनी ज्योति से मिलन हो गया। वह ज्योति तुम्हारी है; मेरा उससे कुछ लेना-देना नहीं। मैंने ज्यादा से ज्यादा एक दीवाल का काम किया, जिस पर तुम्हारी आंख की गेंद टकराई और वापस हो गई। मैंने तुम्हें तुम पर वापस फेंक दिया। इससे तुम चकाचौंध से भी भर गए, चकरा गए, चक्कर खा गए, लेकिन तुम्हें अपनी ज्योति ख्याल में आ गई।
और एक बार ख्याल में आ जाए तो फिर तुम उसे भुला न सकोगे; फिर वह बार-बार आने लगेगी।
अनुभव इतना अभूतपूर्व है, अनुभव इतना प्यारा है, स्थान ऐसा एकांत है
कि कभी-कभी, दृष्टि के परावर्तन में ही दिखाई पड़ता है। अपनी गहराई को उस दिन तुमने छुआ। उस चकाचौंध के क्षण में तुम्हें अपनी थोड़ी सी पहचान हुई।

और जो जान लिया, अब वह तुम्हारे भीतर खड़ा है। अब तुम जानते हो। अब जब भी आंख भीतर जाएगी, वह ज्योति तुम्हें उपलब्ध हो जाएगी। तुम आंख बंद करोगे, उपलब्ध हो जाएगी।
अब मन चेष्टा कर रहा है समझाने की कि ज्योति-व्योति कुछ भी नहीं, मन का धोखा न हो! आंख की खराबी न हो!
आंख तुम्हारी ठीक हो गई है, खराब पहले रही होगी। आंख तुम्हारी साफ हो
गई है, जाला पहले रहा होगा। धुंध तुम्हारी टूट गई है। जरा सी जगह बनी, जरा सा अवकाश हुआ है, वहां से ज्योति दिखाई पड़ने लगी। अगर पूरी आंख साफ हो जाएगी तो भीतर की ज्योति महासूर्य बन जाती है।
कबीर ने कहा है, हजार-हजार सूरज जैसे एक साथ उग आएं, ऐसा कुछ हुआ है। ऐसा तुम्हारे भीतर भी होगा।
मेरे पास तुम्हारे होने का एक ही प्रयोजन है, वह प्रयोजन यही है कि तुम अपने से परिचित हो जाओ। मेरे होने का एक ही प्रयोजन है कि तुम्हें मैं वापस तुम पर फेंक दूं। तुम मुझमें न उलझ जाना, तुम्हें अपने पर वापस जाना है। तुम्हारी आंख मुझे देखती रहे, इसमें कोई सार नहीं। तुम्हारी आंख मुझे देखकर तुम पर वापस लौट जाए, प्रतिक्रमण हो जाए, प्रत्याहार हो जाए दृष्टि का, तो ही कुछ सार है।
शुभ मानना इस अनुभव को; इसको पोषित करना। इससे बेचैन मत होना, न ही आंख
का इलाज करने की चिंता में पड़ जाना।
गा रहा मैं, गुनगुनाना सीख लो तुम
आंधियों में झिलमिलाना सीख लो तुम
मेरा गीत सुनकर तुम्हारे भीतर गुनगुनाहट आ जाए; मेरे पास होकर तुम अपने पास हो जाओ।
जो मुझे मिला है, वह तुम्हारे भीतर भी पड़ा है। मुझमें तुममें जरा भी फर्क नहीं। मुझे पता है, तुम्हें पता नहीं। खजाने के मालिक हम सब बराबर हैं। खजाना हम लेकर ही आते हैं, क्योंकि हमारा होना ही खजाना है। बस, तुम्हें जरा तुम्हारी तरफ मोड़ना है। तुम भागे चले जाते थे, मुझसे टकरा गए और ठिठक गए; तुम्हारी दृष्टि बाहर भागी चली जाती थी, मुझसे टकरा गई, चौंधिया गई, अपनी तरफ लौट गई; जिसको रिफ्लेक्शन कहें--प्रतिक्रमण; किसी चीज का वापस लौट जाना।
आईने पर सूरज की किरण पड़ती है, वापस लौट जाती है। इसलिए आईने से कभी- कभी आंखें चौंधियाई जा सकती हैं। कोई व्यक्ति अगर आईना लेकर धूप में तुम्हारी आंख पर प्रतिबिंब को फेंके तो तुम्हारी आंखें चौंधिया जाएंगी। दर्पण की तरह तुम्हारी दृष्टि मुझसे टकराकर लौट गई होगी। तुम सावचेत
न थे, तुम ऐसे ही चले आए थे। तुम्हें पता न था, क्या होने जा रहा है।
कल एक युवक संन्यास लिया। उसके भीतर ऊर्जा वर्तुलाकार घूम रही है, उसे पता नहीं। जैसे ही मैंने उसे छुआ, उसने कहा कि मेरे भीतर ऊर्जा वर्तुलाकार घूम रही है, चक्कर काट रही है। घूम ही रही थी। उसे मैंने छुआ इसीलिए, कि मैंने देखा कि उसके भीतर ऊर्जा चक्कर काट रही है। लेकिन वह शायद यही सोचेगा कि मेरे छूने से उसके भीतर ऊर्जा चक्कर काटी। बात बिल्कुल उलटी है; मैंने छुआ, क्योंकि देखा कि ऊर्जा चक्कर काट रही है। लेकिन जैसे ही मैंने छुआ, वह अपने पर लौट गया; जिसको उसने कभी भीतर झांककर न देखा था, देखा। क्षणभर बाद कहने लगा, घबड़ा रहा हूं! और ज्यादा नहीं। उसे लगा कि मैं कुछ कर रहा हूं। किए से तो यह होता ही नहीं; यह तो अकृत है। मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। तुम्हारी ज्योति मेरे दर्पण से टकराकर लौट जाए, बस! ज्योति तुम्हारी है, तुम्हीं को लौटा रहा हूं। ज्योति तुम्हारी है, तुम्हीं को वापस दे रहा हूं।
अनेक साधक आकर मुझे कहते हैं कि बड़ी हैरानी की बात है, रात हम सोचकर आते हैं कि यह प्रश्न पूछना है, सुबह आप उत्तर दे देते हैं।
कोई मैं तुम्हारी रातों का हिसाब नहीं रखता, तुम क्या-क्या सोचते हो; मुश्किल में पड़ जाऊंगा। लेकिन तुम जब मेरे सामने मौजूद होते हो तो तुम्हारा प्रश्न मुझसे टकराता है और लौटने लगता है। उस लौटते में ही

तुम्हें उत्तर मिलने लगते हैं। उत्तर तुम्हारे भीतर हैं। मुझे बस तुम्हें तुम्हारे ऊपर वापस फेंक देना है।
मंगलकारी अनुभव हुआ है। सौभाग्य मानना, परमात्मा के प्रति आभारी होना, अनुग्रह मानना। जो अचानक प्रसाद उपलब्ध हुआ है, उसे बिना धन्यवाद स्वीकार मत कर लेना।
नहीं कि परमात्मा को धन्यवाद की जरूरत है; तुम्हारे धन्यवाद देने से परमात्मा को कुछ भी नहीं मिलता, लेकिन तुम्हारे धन्यवाद देने से तुम्हारे प्रसाद पाने की संभावनाएं बढ़ती जाती हैं। तुम जितना धन्यवाद देते हो, तुम जितने अहोभाव से भरकर धन्यवाद देते हो, उतने तुम खुलते जाते हो; उतने तुम उपलब्ध होते जाते हो; उतना ज्यादा तुम्हारे भीतर होने लगेगा।
धन्यवाद का अर्थ है कि जो मिला है, उसको तुमने ऐसे ही उपेक्षा से स्वीकार नहीं कर लिया है। क्योंकि उपेक्षा का मतलब यह होगा कि शायद तुम पात्र भी नहीं थे। उपेक्षा का अर्थ यह होगा कि तुम अर्थ भी समझ न पाए। उपेक्षा का यह अर्थ होगा कि तुम्हारे भीतर अनुग्रह का भाव भी नहीं है; शायद तुम्हें जरूरत ही न थी, शायद तुम तलाश में ही न थे।
उपेक्षा का भाव तुम्हें बंद कर देगा। और प्रसाद की संभावना बंद हो जाएगी। इसलिए नहीं कि तुम्हारे उपेक्षा के भाव से परमात्मा नाराज हो गया, जो नाराज हो जाए, वह परमात्मा क्या! जो धन्यवाद की मांग करे, वह परमात्मा क्या! न वहां धन्यवाद की मांग है, न वहां नाराज होने का कोई सवाल है। परमात्मा बस जैसा है, वैसा है; सदा वैसा है--एक रंग, एक रूप।
लेकिन तुम्हें फर्क पड़ जाएगा। तुमने धन्यवाद दिया, तुम और खुले द्वार
हो जाओगे; और प्रसाद को अंगीकार कर पाओगे।
इसलिए छोटी सी भी किरण आए तो तुम ऐसे नाचना, जैसे सूरज आ गया है; जल्दी
ही सूरज भी आ जाएगा। एक सूरज आए तो ऐसे नाचना, जैसे हजार सूरज उतर आए हैं; जल्दी ही हजार सूरज भी उतर आएंगे।
रास्ता दो। तुम्हारा अनुग्रह प्रसाद को आमंत्रित करता है।

चौथा प्रश्नः पिछले प्रश्नोत्तर के समय कुछ बेबूझ घटना घटी, जिसे न समझ सकता हूं और न समझा ही सकता हूं। गुरु के प्रति अहोभाव कैसे प्रगट करूं, यह भी समझ में नहीं आता। और भीतर से चाहता हूं कि मेरी यह नासमझी बनी रहे।

ठीक है, नासमझी स्वीकार हो तो सरलता बन जाती है। नासमझी से जो छूटना चाहता है, वह चालाक बन जाता है। नासमझी में जो डूब जाता है, वह भोला-भाला हो जाता है, निर्दोष हो जाता है। नासमझी पाप नहीं है। समझदारी में मैंने बहुत पाप देखा है, नासमझी में नहीं देखा। नासमझी बड़ी निर्दोष है।
नासमझ रहो। नासमझी के बड़े सुख भी हैं, क्योंकि नासमझ को बहुत कुछ मिलता है, जो समझदार को कभी नहीं मिलता। क्योंकि समझदार तो पाने की चेष्टा में होता है और समझदार तो दावेदार होता है कि मिलना चाहिए। समझदार तो संघर्ष करता है। नासमझ जानता ही नहीं, कैसे संघर्ष करे! जानता ही नहीं कि मैं कैसे पा सकूंगा? मेरे कृत्य से क्या होगा? नासमझ सिर्फ प्रतीक्षा करता है, धैर्य रखता है। नासमझ कहता है, जब तुम्हारी कृपा होगी, होगी। मैं मूढ़ करूं भी तो क्या?
बहुत कुछ घटता है, अकृत घटता है, प्रसाद बरसता है। नासमझ तुम बने रहना। अज्ञान में बुराई नहीं है। ज्ञानियों को भटकते देखा है। ज्ञान संसार देता है, अज्ञान परमात्मा ने दिया है।
इसे कभी तुमने सोचा--इस तरह सोचा? अज्ञान परमात्मा ने दिया है, ज्ञान संसार के अनुभव से आता है, पढ़ने-लिखने से आता है, सुनने-सोचने से आता है, अज्ञान लेकर आए हो तुम। अज्ञान यानी कोरी किताब, जिस पर कुछ भी लिखा नहीं; जिस पर काली स्याही के धब्बे न लगे। तुम इस किताब को ऐसे ही रख देना, कुछ लिख मत लेना।
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया
खूब जतन से ओढ़ी कबीरा

बड़े जतन से रखना इस किताब को; इसे ऐसी की ऐसी रख देना।
सूफियों की एक किताब हैः द बुक आफ द बुक्स। उसमें कुछ लिखा नहीं है, वह खाली है। खाली किताब है। पुश्त दर पुश्त, एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को उस किताब को देती गई है। सूफी उसे पढ़ते भी हैं। सुबह खोलकर बैठ जाते हैं। कुरान, गीता, बाइबिल, धम्मपद इस किताब के मुकाबले कुछ भी नहीं। इनमें कुछ लिखा है, इनमें स्याही के धब्बे पड़े हैं, वह खाली किताब है। उसमें कुछ भी लिखा नहीं है, कोरा आकाश है। वह जरा भी गंदी नहीं हुई है।
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया
अज्ञान को अहोभाव से स्वीकार करो; तब तुम्हें अज्ञान अज्ञान जैसा मालूम न पड़ेगा, भोलापन बन जाएगा। तब तुम अज्ञान से बचना न चाहोगे, क्योंकि अज्ञान से जो बचना चाहता है, वही अहंकार है। वह कहता है, मैं जानूंगा, क्योंकि जानकर मैं हो सकूंगा। बिना जाने कैसे रहूं? जानना ही होगा। सत्य को मुट्ठी में लेना है, मोक्ष को हाथ में लेना है, सब पाना है--फिर चाहे धन हो या धर्म।
तुमने कभी ख्याल किया! ज्ञान एक तरह का अतिक्रमण है। वैज्ञानिक, जो कि ज्ञान का खोजी है, सदा अतिक्रमण करता रहता है। जहां घूंघट नहीं उठाने थे, वहां भी घूंघट उठा लेता है। जहां रहस्य रहस्य रहता तो अच्छा था, वहां भी रहस्य को टिकने नहीं देता। साए की भी जरूरत है, अंधेरा भी चाहिए। क्योंकि प्रकाश उत्तेजक है, अंधेरा विश्राम देता है। वैज्ञानिक कहीं अंधेरा नहीं रहने दे रहा है, सब तरफ से अंधेरा मिटाए दे रहा है। जीना मुश्किल हो जाएगा। जीवन की सारी गहन बातें अंधेरे में घटती हैं। कभी देखा? बीज टूटता है पृथ्वी के गहन अंधकार में; जमीन पर रख दो, बंद का बंद रह जाता है, टूट नहीं सकता। यह इतने राज की बात है, घूंघट इतना सबके सामने उठा कैसे दे? बड़ा शर्मीला है, बड़ा कुलीन है; वेश्या जैसा नहीं है, बाजार में घूंघट खोलकर नहीं खड़ा हो जाता है। पृथ्वी के गहन गर्भ में, अंधेरे में जब तुम उसे दबा देते हो, जब कोई देखने वाला नहीं होता, जब कोई आंख बाधा नहीं देती, तब चुपचाप उस अंधेरे में टूट जाता है। चुपचाप! आवाज भी नहीं होती। कलियां भी टूटती हैं तो थोड़ी आवाज होती है, जरा बेशर्म हैं। बीज टूटता है तो किसी को पता ही नहीं चलता, कानों-कान कहीं खबर नहीं होती, चुपचाप टूट जाता है।
मां के गहन गर्भ में, अंधकार में जीवन का जन्म होता है; वहां बच्चा निर्मित होता है। अब वैज्ञानिक कोशिश करते हैं, टेस्ट-ट्यूब में... कर लेंगे किसी दिन, लेकिन बड़ी बेशर्मी हो जाएगी; कुछ महत्वपूर्ण खो जाएगा। आदमी ऐसे पैदा भी हो गया टेस्ट-ट्यूब में तो कुछ महत्वपूर्ण खो जाएगा। वैज्ञानिक सब जगह खोदता फिरता है, सब जगह उघाड़ता फिरता है; हर चीज को नग्न करता फिरता है, अनावरण करता फिरता है। यह एक तरह का प्रकृति के ऊपर बलात्कार है। इसलिए मैं विज्ञान को बलात्कार कहता हूं। व्यभिचार है।
धर्म कहता है, हम क्यों बलात्कार करें? जिसने हमें बनाया, उसने सभी को बनाया। जिसने हमें बनाया, उसी ने सब कुछ बनाया। जो हममें है, वही सबमें है। तो कहीं न कहीं तो हम जुड़े हैं। ये बाहर के घूंघट हम क्यों उठाएं? अगर उसकी मर्जी होगी तो रहस्य का पर्दा अपने से उठेगा।
और जब अपने से उठता है तो मजा और!
तुम किसी स्त्री का घूंघट उघाड़ दो जबरदस्ती, छुरे का भय दिखाकर, मुंह
तो उघड़ जाएगा, लेकिन स्त्री का सौंदर्य न उघड़ेगा; सौंदर्य तो खो ही जाएगा। फिर स्त्री खुद अपना घूंघट उघाड़ती है--उसके लिए जिसके प्रति उसको प्रेम है--तब घूंघट ही नहीं उघड़ता, तब सौंदर्य भी उघड़ता है, लेकिन स्वेच्छा से। परमात्मा को या सत्य को जानने के दो ढंग हैंः एक तो बलात्कार है, जबरदस्ती है। विज्ञान बलात्कार है। धर्म बलात्कार नहीं, प्रेम है। धर्म कहता है, हम प्रतीक्षा करेंगे।
अज्ञानी भी जानते हैं, लेकिन उनके जानने का ढंग बिल्कुल अलग है। वे प्रतीक्षा करते हैं। वे समझदार होने की चेष्टा में नहीं लगते। वे कहते हैं, हम ठीक हैं, हम मूढ़ ही भले। राह देखेंगे, जिसने हमें बनाया, वही कह जाएगा कुछ जरूरी होगा तो। वही बता जाएगा कुछ जरूरी होगा तो। अगर नहीं बताता है तो शायद यही जरूरी है कि न बताए। ज्ञान की छीन-झपट नहीं करते,

चोरी-चपाटी नहीं करते। ज्ञान आता है मुक्त दान की भांति, परमात्मा की तरफ से प्रसाद की भांति, तो स्वीकार है; नहीं आता तो यह न आना स्वीकार है। जिस भांति रखे वह, जिस विधि रखे वह, उसी भांति रहना स्वीकार है।
ठीक है, नासमझ ही रहो। और यह जो घटना घटी--कि पिछले प्रश्नोत्तर के समय कुछ बेबूझ घटना घटी--यह इसीलिए घटी; अगर ज्ञानी होते तो न घटती।
पंडित भी आ जाते हैं भूले-भटके यहां, उन्हें कुछ भी नहीं घटता। मैं उनको देखकर कह सकता हूं। कभी-कभी एक भी पंडित यहां आकर बैठ जाता है तो विघ्न हो जाता है। उसकी मौजूदगी... यहां एक सरोवर है, वह एक टापू की तरह हो जाता है। उसे मैं देख पाता हूं कि उसके आसपास ऊर्जा का प्रवाह नहीं है, वहां एक मुर्दा चीज रखी है। जिंदा लोगों में एक लाश रखी है। उसके आसपास से प्रवाह बहकर निकल जाता है--टापू है, पथरीला है; आर-पार नहीं जाती बात उसके, किनारे-किनारे से निकल जाती है।
अगर तुम नासमझ हो तो सौभाग्यशाली हो। बड़ी मुश्किल से मिलती है नासमझी। नासमझी तो मिली ही हुई है, बड़ी मुश्किल से मिलती है यह समझ कि हम नासमझ बने रहें।
स्वभावतः, जो हुआ है, उसे तुम समझा न सकोगे। वह होता ही न, अगर तुम उन लोगों में से होते, जो समझा सकते हैं।
इसे फिर दोहरा दूंः हुआ ही इसलिए है कि तुम अबोध हो, छोटे बच्चे की भांति हो; होता ही नहीं अगर तुम समझाने-समझने वाले होते।
यह बड़ी मुश्किल बात है। उनके जीवन में ही महत्वपूर्ण घटनाएं घटती हैं, जो कह भी नहीं पाते कि क्या हुआ; बता भी नहीं पाते। जो बताने और कहने में बहुत कुशल हैं, उसके कारण ही बाधा हो जाती है।
और ध्यान रखना, जिन्होंने कहा भी है, वे भी कहां कह पाए हैं! मैं तुमसे कितना कह रहा हूं, कहां कह पाता हूं? जो कह पाता हूं, वह कुछ और है; जो कहना चाहता था, वह कुछ और है। रोज फिर कोशिश करता हूं कि चलो, आज फिर सही, कल हारे तो आज कहेंगे; फिर पाता हूं कि बात... ।
जो गीत गाना है, वह गाया नहीं जा सकता, लेकिन उसे गाने की चेष्टा करनी पड़ेगी। शायद पूरा-पूरा गीत न भी गाया जा सके, उसकी थोड़ी लय भी तुम तक पहुंच जाए; शायद पूरी कड़ियां तुम्हारे पास तक उतर भी न सकें, कुछ खंड-खंड अंश भी पहुंच जाएं; शायद तुम्हारा पेट भर भी न सके, लेकिन तुम्हारे कंठ तक भी स्वाद पहुंच जाए तो भी कुछ कम नहीं; इसलिए कहने की चेष्टा चलती है। कह तो कोई भी नहीं पाया है। यह घटना ही ऐसी है कि इसे कोई कह नहीं सकता।
जो कहा जा सके, वह सत्य नहीं। जो सत्य है, उसे कहा नहीं जा सकता। यह कहने-सुनने के पार है।
"गुरु के प्रति अहोभाव कैसे प्रगट करूं, यह भी समझ में नहीं आता।"
प्रगट हो गया! प्रगट करने की कोई जरूरत भी नहीं। बस, ख्याल आ गया अहोभाव का, बात हो गई। कुछ बैंड-बाजे थोड़े ही बजाने प.ड़ेंगे, कुछ शोरगुल थोड़े ही मचाना पड़ेगा। तुम्हारे मन में ख्याल आ गया, बात हो गई। अहोभाव आ गया, बात हो गई। बताने की थोड़े ही बात है, अहोभाव भाव की बात है। प्रार्थना से जो उठा है पूत होकर
प्रार्थना का फल उसे तो मिल गया
अगर प्रार्थना से तुम नहाकर उठ आए, बात हो गई। प्रार्थना से पवित्र होकर उठ आए, बात हो गई। प्रार्थना से भरकर लौट आए, बात हो गई।
प्रार्थना से जो उठा है पूत होकर
प्रार्थना का फल उसे तो मिल गया
प्रार्थना का कोई और फल थोड़े ही है, प्रार्थना ही फल है। इसलिए नारद भक्ति-सूत्र में कहते हैं, भक्ति फलरूपा है। भक्ति स्वयं फल है।
प्रार्थना की, फिर प्रतीक्षा मत करना फल की; नहीं तो चूके जा रहे हो।
बात ही गलत हो गई। प्रार्थना ही फल है।
कल प्रार्थना घटी। तुमने सुना, कुछ भीतर हुआ, कोई चोट पड़ी, तुम नहा गए।
उसी नहाने में अहोभाव भी स्वभावतः उठ आता है, स्वाभाविक फूल है प्रार्थना का। कहने की कोई जरूरत भी नहीं।

और नासमझ ही बने रहना, ताकि यह घटता रहे। यहीं खतरा खड़ा होता है। अब चूंकि यह घट गया, डर है कि तुम समझदार हो जाओगे। तुम कहोगे, हो गया, एक बात जान ली, पहचान ली। अब तुम समझोगे कि तुमने समझ लिया। यह समझ लेना आगे के लिए बाधा बन जाएगा। फिर दुबारा यह घटना मुश्किल हो जाएगी। और जब यह न घटेगी तो तुम इसकी अपेक्षा करोगे, आकांक्षा करोगे, मांगोगे। जितना तुम मांगोगे, आकांक्षा करोगे, अपेक्षा करोगे, उतना ही मुश्किल हो जाएगा और भी घटना; क्योंकि यह घटी थी तुम्हारे बिना मांगे।
तुमने मांगा थोड़े ही था कल। तुम्हें पता ही न था और यह हो गई। तुम मौजूद न थे, तब यह घटी। तुम मुझे सुनते-सुनते खो गए होओगे, तार जुड़ गया होगा मुझसे। तुम सुनते-सुनते एक लय में डूब गए होओगे। सुनते-सुनते तुम्हारा मन स्तब्ध हो गया होगा, विचार क्षणभर को ठहर गए होंगे। सुनते-सुनते विराम आ गया होगा। सुनते-सुनते मेरे साथ सुर सध गया होगा, तालमेल बैठ गया होगा। बस, यह घट गई। तुमने कुछ किया थोड़े ही था--अकृत! तुम कुछ करते होते तो घटती ही नहीं; तो बाधा पड़ जाती।
लेकिन अब खतरा है, इसलिए सावधान। अब तुम सोचोगे यह घटी, इसका रस पाया, रस-विभोर हुए। अब यह रस मन की आकांक्षा न बन जाए।
मन यह कहने लगे कि अब रोज घटना चाहिए; कल घटी, आज भी घटनी चाहिए, आने वाले कल भी घटनी चाहिए। आज क्यों नहीं घट रही? तो बस, तुमने उपद्रव ले लिया। तो तुम चूक गए; हाथ आते-आते सूत्र छूट गया।
तुम इसको भूल ही जाओ। तुमने तो कुछ किया न था, इसलिए तुम कौन हो इसे याद रखने वाले? तुमने तो कुछ किया न था, इसलिए तुम कौन हो इसे मांगने वाले? तुमने तो कुछ किया न था, इसलिए अपेक्षा क्या!
अहोभाव हुआ, बात समाप्त हुई, खतम हुई। भूलो, विस्मरण करो। तुम फिर वैसे ही अज्ञानी हो जाओ, जैसे इसके पहले थे। तुम फिर अपनी पुरानी अवस्था में खड़े हो जाओ। फिर-फिर घटेगी, और-और घटेगी, गहरी-गहरी घटेगी, बहुत गहरी छन सकती है।
मगर जैसे ही पहली बार घटती है, उपद्रव खड़ा होता है। तुम मांग करने लगते हो। मन इसको जकड़ लेता है, इसको भी वासना बना लेता है। और जैसे ही मांग आई, प्रार्थना गई।
प्रार्थना एक क्षण है, एक भावदशा है।
प्रार्थना से जो उठा है पूत होकर
प्रार्थना का फल उसे तो मिल गया
बात भूलो। बात खतम हो गई है, फिर नए हो जाओ। यह लकीर तुम्हारे मन पर न
रह जाए। इसको ही मैं नासमझी कह रहा हूं, इसको ही मैं अज्ञान कह रहा हूं। तुम फिर अज्ञानी हो जाओ। इस बात के घटने के पहले तुम जहां थे कल, वहीं कृपा करके फिर पहुंच जाओ। यह बात जैसे हुई ही नहीं। यह बात जैसे तुमने सुनी कि किसी और को हुई। इस बात को तुम अपनी संपदा न बनाओ, अन्यथा ज्ञान निर्मित होने लगा। और ज्ञान बाधा है।

आखिरी प्रश्नः ध्यान में जड़ता आने लगी है, विचार भी खास तंग नहीं करते, मगर पूरा होश भी नहीं रहता है। यह कैसी स्थिति है और मुझे क्या करना चाहिए?

ध्यान के बहुत पड़ाव हैं।
पहला पड़ावः जब कोई व्यक्ति ध्यान करना शुरू करता है तो मन इतना बेचैन होने लगता है, जितना ध्यान के पहले भी न था। इतनी अशांति आने लगती है, जितनी कभी न आई थी। डर लगता है, यह तो और उलझन बढ़ी; सुलझाने आए थे, यह तो और उपद्रव गले पड़ा। चाहते थे शांति, यह तो और अशांति आ गई।
लेकिन यह इसलिए होता है--इसलिए नहीं कि अशांति बढ़ती है--सिर्फ इसलिए होता है कि तुम्हारा बोध बढ़ता है। अशांति तो तुम्हारे भीतर पड़ी है, भरी पड़ी है, बाजार भरा है, राशि लगी है। लेकिन तुम इतने व्यस्त हो कि तुम इस पर ध्यान नहीं दे पाते। जब तुम ध्यान करते हो तो तुम भीतर की तरफ मुड़ते हो, तो पहली दफा तुम अपने सारे उपद्रव से परिचित होते हो।

तो पहले पड़ाव पर तो बड़ी घबड़ाहट आ जाती है, बड़ी बेचैनी बढ़ जाती है। विचार विक्षिप्त की भांति दौड़ने लगते हैं। शोरगुल बढ़ता मालूम पड़ता है।
उपद्रव बढ़ता मालूम पड़ता है। और ऐसा लगता है, यह क्या हुआ? हम तो ध्यान से आकांक्षा किए थे शांत होने की, और भी अशांत हो गए। तब घबड़ाहट आती है, मन होता है, लौट जाएं। लेकिन अगर तुम करते ही चले गए तो धीरे-धीरे यह अशांति खो जाती है; तब मन शांत होने लगता है।
यह जो दूसरी घड़ी आती है--ध्यान में जड़ता आने लगी है--यह जड़ता नहीं है, लेकिन विचार की गति क्षीण हो रही है। तो तुमने अब तक गति ही एक जानी हैः विचार की। चैतन्य की गति का तुम्हें कोई पता नहीं है। और जब विचार की गति कम होने लगती है, तो लगता है, कहीं जड़ तो नहीं हो रहा! यह क्या हो रहा है? अब शांत हो रहे हो तो जड़ता मालूम पड़ती है।
ऐसा ही समझो कि तुम सदा बाजार में रहे; हिमालय पर चले जाओगे तो बड़ी ऊब मालूम होगी, कुछ मजा नहीं आता; कुछ सार ही नहीं मालूम पड़ता, यह तो सब जड़ मालूम होता है। बाजार की आदत वहां भी पीछा करेगी। तुम बाजार चाहते हो। बाजार में चहलकदमी मालूम होती है, गति मालूम होती है, जीवन मालूम होता है। यह पहाड़ पर तो सब जड़ मालूम होता है।
ऐसे ही यह दूसरा पड़ाव आया; इससे भी पार जाना पड़ेगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जिसे तुम पहले गति समझते थे, वही जड़ता थी। एक नई गति का अनुभव तुम्हें भीतर होगा, जो चैतन्य की गति है। एक नए जीवन की प्रतीति होगी, जो चैतन्य का जीवन है।
पर पुराना जीवन छूटे और नया आए, इन दोनों के बीच में एक अंतराल तो पड़ेगा। एक घर छूटा, दूसरे घर में गए, तो पहले तो पहला घर छूटेगा, तब उपद्रव होगा; सारा सामान अस्तव्यस्त होगा, बांधो, बोरिया-बिस्तर भरो, सब गड़बड़ हो जाएगा। अभी तुम दूसरे घर में भी नहीं पहुंचे। रास्ते में रिक्शा-तांगे में अटके हो। सामान लादे जा रहे हैं दूसरे घर में। अभी दूसरा घर भी तो नहीं आया है। तो और भी मुश्किल हो गई, सब सामान अस्तव्यस्त हो गया, बंद हो गया, सब उलझन हो गई। दूसरे घर में जाओगे, व्यवस्थित होओगे, धीरे-धीरे फिर बसोगे, फिर से चीजों को जमाओगे, तब राहत मिलेगी।
अभी जड़ता मालूम होगी। यह मध्यकाल है। इससे भयभीत मत होना। इस मध्यकाल में न तो बेहोशी रहेगी पूरी और न होश रहेगा पूरा। कुछ-कुछ होश भी मालूम होगा, कुछ-कुछ बेहोशी भी मालूम होगी। और भी उलझन मालूम होगी कि यह क्या हुआ? एक कन्फ्यूजन, विपरीत चीजों का मिला-जुला संगम, एक खिचड़ी की अवस्था होगी। इससे तो लगेगा, पूरे सोए थे वही अच्छा था; कम से कम एकस्वरता तो थी। न पूरे जगे, न पूरी नींद रही; ये बीच में अटक गए! त्रिशंकु जैसी हालत मालूम होगी।
तीर छूट चुका प्रत्यंचा से और अभी लक्ष्य पर नहीं पहुंचा। न प्रत्यंचा का सहारा रहा, न लक्ष्य का--लक्ष्य में छिद जाए तो सहारा मिले-- मध्य में अटका है।
पर यह स्वाभाविक है, कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं। जो कर रहे हैं ध्यान, उसे जारी रखें; यह मध्यकाल अपने आप बीत जाएगा।
है अनिश्चित किस जगह पर सरित गिरि गह्वर मिलेंगे
है अनिश्चित किस जगह पर बाग वन सुंदर मिलेंगे
किस जगह यात्रा खतम हो जाएगी यह भी अनिश्चित
है अनिश्चित कब कुसुम कब कंटकों के शर मिलेंगे
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा तू न, ऐसी आन कर ले
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा तू न, ऐसी आन कर ले
बस, एक ही स्मरण रहे--रुकना नहीं है, चलते जाना है। और बहुत सी संभावनाएं हैं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है; इसलिए बहुत पड़ाव साफ-साफ नहीं बताए जा सकते।
है अनिश्चित किस जगह पर सरित गिरि गह्वर मिलेंगे
सूचनाएं दी जा सकती हैं, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति बड़ा अलग है, बड़ा भिन्न है। इसलिए तुम्हें जहां पहाड़ मिलेंगे, वहां दूसरे को न मिलें। और तुम्हें जहां जड़ता मिले, वहां दूसरे को न मिले। निर्भर करता है कि

तुम्हारे जीवन की आदतें कैसी हैं, तुम्हारे जीवन का ढांचा कैसा था। जो आदमी पहाड़ पर ही रहता रहा है, उसको पहाड़ पर जड़ता मालूम न पड़ेगी; उसे पहाड़ पर सब ठीक है। तुम जाओगे, जड़ता मालूम पड़ेगी। तुम बाजार में रहे हो। तुम बाजार के कीड़े हो। तब बहुत कठिनाई होगी। पहाड़ वाले आदमी को बाजार में ले आओ, उसे विक्षिप्तता मालूम पड़ेगी; यह पागलपन हो रहा है। वह भाग जाना चाहेगा। गुरजिएफ अपने शिष्य आस्पेंस्की पर प्रयोग कर रहा था। तीन महीने तक उसे निपट मौन में रखा, पूर्ण मौन में रखा, एक एकांत मकान में; बाहर न जाने दिया। न बोलना, न सोचना, न पढ़ना; आंख के इशारे भी बंद थे। किसी तरह का इशारा भी भाषा है। गुरजिएफ ने तीस लोग चुने थे प्रयोग के लिए, सत्ताइस को पंद्रह दिन के भीतर विदा कर दिया। कुछ तो खुद भाग गए घबड़ाकर, कुछ जो न भागे, उनको उसने विदा कर दिया। क्योंकि वह पूरे वक्त घूमता रहता मकान के भीतर। और कहना उसका यह था कि अगर मुझे तुम देखो भी तुम्हारे पास से निकलते हुए तो तुम ऐसे ही रहो, जैसे कोई नहीं निकल रहा। अगर तुम्हारा पैर मेरे पैर पर भी पड़ जाए तो क्षमा मांगने का भाव भी मत उठाना, क्योंकि कोई यहां है ही नहीं, तुम अकेले हो। इतना एकांत, मौन!
तीन आदमी बचे। तीन महीने पूरे होने पर उन तीनों को गुरजिएफ नगर में ले गया। आस्पेंस्की ने अपने संस्मरण में लिखा है कि बाजार में जाकर मुझे ऐसा लगा कि यह सारी दुनिया इतनी पागल है, इसका मुझे पहले पता ही न था। पागल पागलों से बात कर रहे हैं, पागल दुकान चला रहे हैं, पागल सामान खरीद रहे हैं, पागल चले जा रहे हैं, यह क्या हो रहा है? उसने गुरजिएफ का हाथ पकड़ लिया। उसने कहा, मुझे वापस! यहां तो मैं पागल हो जाऊंगा; यह तो पागलखाना है।
तीन महीने अगर तुम मौन, शांति को अनुभव किए हो, हिमालय उतरा भीतर, तो सारा संसार तुम्हें पागल मालूम पड़ेगा।
तुम पर निर्भर है कि तुम्हारी क्या स्थिति, क्या आदत, कैसा जीवन का ढांचा, कैसी व्यवस्था, क्या शैली रही है।
है अनिश्चित किस जगह पर सरित गिरि गह्वर मिलेंगे
है अनिश्चित किस जगह पर बाग वन सुंदर मिलेंगे
किस जगह यात्रा खतम हो जाएगी यह भी अनिश्चित
हरेक की अलग-अलग जगह होगी। भीतर तो एक ही घटेगा यात्रा के अंत पर, पर बाहर बड़ी अलग-अलग स्थितियां होंगी।
कहते हैं, महावीर को जब परम समाधि मिली तब वे उकडूं बैठे थे। अब कोई सोचो, उकडूं भी कोई बैठने की बात है! गौदोहासन कहते हैं जैन उसको; उकडूं नहीं कहते, क्योंकि उकडूं कहना जरा ठीक मालूम नहीं पड़ता। गौदोहासन में बैठे थे। महावीर को कोई गौ नहीं दोहनी, क्या कर रहे थे उकडूं बैठ कर?
किस जगह यात्रा खतम हो जाएगी यह भी अनिश्चित
बुद्ध वृक्ष के नीचे बैठे थे। तब से कई लोग वृक्षों के नीचे बैठे रहे हैं, इससे थोड़े ही कोई लेना-देना है!
सबकी यात्रा अलग-अलग जगह खतम होगी। कुछ कहा नहीं जा सकता, कैसे घट जाएगी बात! तुम्हारे भीतर तो एक ही घटना घटेगी, लेकिन अलग-अलग घटेगी। मीरा नाचती थी, नाचने में घटी। करीब-करीब असंभव है कि कैसे घटेगी।
मैं एक सूफी फकीर की जीवनी पढ़ रहा था। वह आलू छील रहा था, तब उसको घटना घटी। अब आलू और आत्मा का कोई संबंध है? आलू और आत्मा से विपरीत चीजें और तुम कोई खोज सकोगे? तब से उसके शिष्य आलू छील रहे हैं। शायद आलू छीलने से कोई संबंध हो!
किस जगह यात्रा खतम हो जाएगी यह भी अनिश्चित
है अनिश्चित कब कुसुम कब कंटकों के शर मिलेंगे
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा तू न, ऐसी आन कर ले
बस, चलते जाना है।
बुद्ध का वचन हैः चरैवेति! चरैवेति!
चलते जाओ, चलते जाओ, जब तक कि तुम्हारा होना न गिर जाए, बस! आज इतना ही।

इकतालीसवां प्रवचन

## शब्दः शून्य के पंछी

सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति।। 91।।

यो सहस्सं सहस्सेन संगामे मानुसे जिने।
एकं च जेयमत्तानं स वे संगामजुत्तमो।। 92।।

अत्ता हवे जितं सेय्यो या चायं इतरा पजा।
अत्तदन्तस्य पोसस्स निच्चं सांतचारिनो।। 93।।

नेव देवो न गन्धब्बो न मारो सह ब्रह्मुना।
जितं अपजितं कयिरा तथारूपस्स जन्तुना।। 94।।

मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सतं समं।
एकं च भवितत्तानं मुहूत्तमपि पूजये।
सा येव पूजना सेय्या यं चे पस्ससतं हुतं।। 95।।

मनुष्य दो भांति से बोल सकता हैः एक तो इसलिए कि मौन रहना कठिन है; एक इसलिए कि मौन से शब्दों का जन्म हो रहा है। दोनों बड़ी विपरीत दशाएं हैं।

साधारणतः हम बोलते हैं, क्योंकि बिन बोले रहना कठिन है। न बोलें तो बेचैनी होती है, न बोलें तो समझ में नहीं आता कि क्या और करें? चुप्पी काटती है।

और किसी दूसरे व्यक्ति की मौजूदगी में अगर चुप रह जाएं तो बड़ी बेचैन करने वाली स्थिति बन जाती है। चुप तो हम क्रोध में रहते हैं। चुप तो हम किसी का अपमान करना हो तो रहते हैं। चुप तो हम उदास होते हैं, तब रहते हैं। चुप के साथ हमने सारे गलत संयोग जोड़ रखे हैं। चुप्पी का विधायक, मौन का सार्थक आयाम खो ही गया है।

तुम किसी के घर जाओ और वह चुप रहे, चुप बैठा रहे, कुछ न बोले, तुम अपमानित अनुभव करोगे। बोलने में स्वागत है, बोलने में सत्कार है। मौन का सत्कार तो हमें समझ में भी नहीं आ सकता। क्योंकि हम शब्द ही समझ सकते हैं, निःशब्द को समझने की हमारी क्षमता नहीं है। तुम कुछ पूछो, कोई चुप रह जाए; तो तुम समझोगे, उत्तर नहीं दिया।

मौन भी उत्तर हो सकता है। और कुछ चीजों का तो केवल मौन ही उत्तर होता है। कुछ प्रश्न ही ऐसे हैं कि शब्द में कोई संभावना ही नहीं कि उनका उत्तर बन पाए। वस्तुतः जीवन के जितने महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, सभी मौन में ही सुलझाए जाते हैं। लेकिन अगर कोई चुप रह जाए, मौन रह जाए, तुमने पूछा हो कुछ, तो तुम यही समझोगे कि तुम्हारे प्रश्न का सम्मान नहीं किया गया; या तुम समझोगे कि जो चुप रह गया, उसे कुछ पता ही न था।

तो जिन्हें पता नहीं है, वे भी बोलते हैं। न बोलें तो पता चल जाएगा कि उन्हें पता नहीं। मूढ़ बहुत मुखर हैं। मूढ़ों की इस मुखरता से मन व्यर्थ के शब्दों से भर गया है। हम बोलते ही रहते हैं--दिन और रात, सोते और जागते; जैसे शब्द से कोई छुटकारा ही नहीं हो पाता।

और शब्द किनारा है; अगर तुम उससे उलझे रहे तो जीवन की मझधार से वंचित हो जाओगे; तो तुम जान ही न पाओगे कि जीवन की धारा क्या थी।

शब्द तो बाहर से पाया है, भीतर से नहीं आया है। जब तुम पैदा हुए थे, निःशब्द पैदा हुए थे। जब तुम अवतरित हुए थे, निष्कलुष, निर्विकार, निर्विचार आए थे; शब्द तो बाहर से आया। गंगा उतरती है तो किनारे लेकर नहीं उतरती, किनारे तो बाहर मिलते हैं।

सीमा बाहर से आती है, तुम तो असीम आते हो। तुम तो मौन आते हो, फिर शब्द का आंगन तुम्हारे चारों तरफ दीवाल उठाता है। कोई हिंदू है, क्योंकि हिंदू

शब्दों की दीवाल है उसके पास; वेद की ईंटें लगी हैं उसकी दीवाल पर। कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, फर्क क्या है? शब्दों का फर्क है। निःशब्द में तो तुम समान हो, न कोई हिंदू है, न कोई ईसाई है, न कोई मुसलमान है। निःशब्द में तो कोई विशेषण नहीं है; वहां तो तुम शून्य, खाली हो; वही तुम्हारा असली होना है।
जब तक तुमने जाना कि तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, तब तक तुमने जाना ही नहीं कि तुम कौन हो, तब तक तुमने शब्द जाने। समाज तुम्हें शब्दों से भर देता है; इसी को हम शिक्षण कहते हैं। विद्यालय, विश्वविद्यालय शब्दों से भर जाते हैं।
धर्म निःशब्द का विद्यापीठ है। समाज तुम्हें शब्दों से भर देता है, धर्म तुम्हें फिर शब्दों से मुक्त करता है। इसलिए धर्म न तो हिंदू हो सकता है, न इस्लाम हो सकता है, न बौद्ध हो सकता है, न जैन हो सकता है। संप्रदाय हो सकते हैं, क्योंकि संप्रदायों का संबंध शब्दों से है; धर्म का संबंध निःशब्द से है।
समाज ने जो सिखाया, धर्म तुम्हें फिर भूलने की क्षमता देता है। समाज
ने जो लकीरें खींचीं, धर्म उन्हें तुम्हें फिर पोंछ देने की कला सिखाता है। समाज अगर शिक्षण है, सीखना है, तो धर्म अनसीखना है, फिर कोरे होना है, फिर सीमाएं तोड़नी हैं, फिर गंगा को सागर होना है, किनारे छोड़ने हैं। किनारों में होने की सुविधा है, क्योंकि किनारों के बीच होना साफ-साफ होता है। किनारों के बीच होने पर तुम दोनों तरफ सुरक्षित दुर्ग के भीतर होते हो, किनारे छूटते ही तुम अपने से भी छूट जाओगे। गंगा सागर में गिरकर गंगा तो न रहेगी, सागर हो जाएगी।
बुद्ध के आज के वचन इस दिशा में हैं।
"निरर्थक पदों से युक्त हजार पदों से भी एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर मनुष्य उपशांत हो जाता है।"
कौन से पद निरर्थक हैं? तुम्हारे भीतर शब्दों से ही जो शब्द पैदा होते हैं, वे निरर्थक हैं। तुम्हारे भीतर अगर निःशब्द से कोई शब्द पैदा होता है तो सार्थक है। सार्थक का अर्थ होता हैः जिसे तुमने जन्माया; जिसे तुमने अपने प्राणों के अंतर्तम में जन्म दिया; जो तुमसे आया।
समाज कुछ डालता है, फिर उसी की प्रतिध्वनि तुमसे आती है; वह निरर्थक है। पहाड़ पर तुम जाते हो, आवाज करते हो, घाटियां और पहाड़ियां तुम्हारी आवाज को प्रतिध्वनित कर देती हैं; वह निरर्थक है। घाटियों ने कुछ भी कहा नहीं, उसमें कुछ अर्थ हो ही नहीं सकता। घाटियों ने कुछ कहा ही नहीं, घाटियों ने सिर्फ दोहराया। घाटियों ने पुनरुक्त किया। घाटियों ने तो वही लौटा दिया, जो उन तक फेंका गया था--भला विकृत किया हो, लेकिन सार्थक तो नहीं हो सकता।
तो अगर समाज के शब्द तुम्हारे पास आकर सिर्फ घाटियों की तरह वापस लौट जाते हैं, तुम केवल प्रतिध्वनि मात्र करते हो, सार्थक नहीं हो सकती। सार्थक पद का अर्थ तो होता हैः जो तुमसे जन्मे, जो तुम में भीतर न गया हो, बस भीतर से ही आया हो। सत्य के अनुभव से ही सार्थकता पैदा हो सकती है। बुद्ध कहते हैं, "निरर्थक पदों से युक्त हजार पदों से भी एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर मनुष्य उपशांत हो जाता है।"
और जो उसकी उन्होंने परिभाषा की है कि कैसे तुम पहचानोगे, वह पहचान यह
है कि जो शब्द शांति से आता है, वह तुम्हें भी शांत कर जाता है। जो शब्द भीतर के निःशब्द से आता है, वह तुम्हें भी क्षणभर को ही सही, निःशब्द की गूंज से भर जाता है, उपशांत कर जाता है। तुमने अगर कभी ऐसे व्यक्ति को सुना, जिसने जाना है, तो उसके शब्दों में तुम्हें शब्दों से कुछ ज्यादा मिलेगा। उसके शब्दों के आसपास शून्य भी सरकता मिलेगा। उसके होने में उसके शब्द पगे होंगे। उसके शब्दों में मिठास होगी किसी और ही लोक की। उसके शब्द तो बहाने होंगे।
उसकी चलती तो वह बिना शब्द के चला लेता। उसकी चलती तो तुमसे चुप ही रहकर कह देता; लेकिन चुप्पी तुम समझ न पाओगे। मजबूरी है, विवशता है, इसलिए शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन शब्दों का उपयोग शब्दों के लिए नहीं,

शब्दों का उपयोग शून्य के लिए। उसके शब्द बड़े विरोधाभासी होंगे। वह कहेगा कुछ, कहना कुछ और ही चाहता है। कहता हुआ कुछ और मालूम पड़ेगा, कहना कुछ और ही चाहता था। इसलिए अगर तुमने सहानुभूति से न सुना तो तुम उसे न समझ पाओगे। सत्य को उपलब्ध व्यक्ति के वचनों को सुनने का ढंग है, शैली है, व्यवस्था है, कला है। उसके श्रवण को, सुनने को साधारण सुनना नहीं कहा जा सकता। इसलिए महावीर और बुद्ध ने उसके लिए अलग ही शब्द चुना हैः सम्यक श्रवण, राइट लिसनिंग। सुनते तो सभी हैं, मगर ऐसे सुनने से काम न चलेगा। तुम्हें ऐसे सुनना पड़ेगा जैसे तुम मस्तिष्क से नहीं, हृदय से सुनते हो। तुम सोचते नहीं उसे सुनते समय, तुम सिर्फ सुनते हो। तुम गुनते नहीं, तुम सिर्फ उसे पीते हो। पीने की तरह सुनना होगा--बड़ी गहन सहानुभूति से। अगर तुम्हारे भीतर विवाद चले, विचार चले, तो जो कहा गया, वह चूक जाएगा। बड़ा नाजुक है, बड़ा बारीक है, बड़ा सूक्ष्म है; शब्द से भी ज्यादा सूक्ष्म है। लेकिन अगर ऐसा एक भी शब्द तुम अपने प्राणों में पड़ जाने दो तो तुम उपशांत हो जाओगे। तुम तत्क्षण पाओगे, शांति बरस गई। तुम तत्क्षण पाओगे, किसी और ही लोक की प्रभा ने तुम्हें घेर लिया। तुम पाओगे तुम्हारे पैर इस जमीन पर नहीं पड़ रहे, किसी और ही आकाश को छूने लगे। तुम उड़ने लगोगे, चलोगे नहीं।
उसके शब्दों में एक मदिरा होगी, जो तुम्हें अपरिचित, अजनबी मस्ती से
भर जाएगी। फूलों की गंध तुम उसमें पाओगे, भौंरों की गुनगुनाहट पाओगे, लेकिन शास्त्रों का गुंजन नहीं। झरनों का कलरव तुम्हें उसमें सुनाई पड़ जाए भला, पक्षियों के गीत उसमें तुम्हें सुनाई पड़ जाएं भला, लेकिन प्रत्यय, धारणाएं, सिद्धांतों की झलक उसमें न होगी।
माना कि वह भी उन्हीं शब्दों को प्रयोग करने के लिए मजबूर है, जिनका तुम प्रयोग करते हो; वह भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग करता है, जिनका प्रयोग शास्त्रों ने किया है; लेकिन उसका अंदाज और है। वह शास्त्रों के शब्दों का ही प्रयोग करने को मजबूर है, लेकिन उन शब्दों का कुछ ढंग, उन शब्दों को प्रयोग करने की कोई प्रक्रिया बुनियादी रूप से भिन्न है। वह तुम्हें कुछ समझाने को कम, तुम्हें कुछ बताने को शब्दों का उपयोग करता है। समझाने को कम, इशारा करने को ज्यादा। वह तुम्हें किन्हीं सिद्धांतों के लिए राजी नहीं कर लेना चाहता, किसी यात्रा के लिए आमंत्रण देता है।
बड़ा फर्क है। सिद्धांतों के लिए समझा लेना तो बड़ा सुगम है; तुम जैसे हो, जहां हो, वैसे ही रहोगे, सिद्धांत तुम्हारे लिए और आभूषण बन जाएंगे। तुम थोड़े और समझदार हो जाओगे। तुम्हारी नासमझी और थोड़ेशृंगार कर लेगी। तुम्हारी मूढ़ता के चारों तरफ तुम और चांद-तारे लटका लोगे। तुम्हारा अज्ञान और थोड़ा छिप जाएगा; और वस्त्रों में, वसनों में छिप जाएगा। तुम बदलोगे नहीं।
बुद्ध पुरुष जब बोलते हैं तो तुम्हें मिटाने और तुम्हें नया जन्म देने को। वे तुम्हारी कब्र भी खोदते हैं और तुम्हारे लिए गर्भ का निर्माण भी करते हैं। उनके शब्द खतरनाक भी हैं, वे तुम्हें मारेंगे। और उनके शब्द अमृत जैसे भी हैं, क्योंकि वे तुम्हें पुनः जिलाएंगे। उनके शब्द में सूली भी है और पुनर्जीवन भी। अगर तुमने सुना तो उनका एक शब्द भी तुम्हें उपशांत कर जाएगा।
तो अगर तुम किसी तार्किक की बात सुनने जाओ तो तुम और उद्विग्न होकर लौटोगे; तुम और परेशान होकर लौटोगे। तुम वैसे ही परेशान थे, वह तुम्हें और परेशान कर जाएगा। यह भी हो सकता है, तुम उससे राजी भी हो जाओ, लेकिन तब भी तुम शांत न हो सकोगे। उससे राजी होने में भी बेचैनी होगी, परेशानी होगी, कांटे चुभते रहेंगे, जैसे कहीं कुछ गलत हुआ है। साफ भी नहीं होता कि क्या गलत हुआ है, लेकिन कहीं कुछ गलत हुआ है। क्योंकि शांति तो हृदय की बात है, मस्तिष्क की नहीं। उसने तो तुम्हारे मस्तिष्क को सहलाया। उसने तो तुम्हारे मस्तिष्क को भुलाया। उसने तो तुम्हारे मस्तिष्क में कुछ और विचार, कुछ और शब्द डाले। तुम वैसे ही बोझिल थे, तुम और थोड़े बोझ से भर गए। लेकिन जब तुम किसी बुद्ध पुरुष का वचन सुनकर लौटते हो तो हो सकता है, तुम उससे राजी भी न होओ, लेकिन बेचैन न हो सकोगे। हो सकता है, तुम उसके पीछे

चलने की तैयारी भी न दिखाओ, तब भी तुम पाओगे, जैसे कोई स्नान हो गया। जैसे धूल से भरे, यात्रा के थके, तुम किसी झरने में डुबकी लगा आए। पसीने से तरबतर थे, एक मेघ आया और बरस गया, सब शीतल हो गया। लेकिन सुनने की कला चाहिए।
तार्किक को सुनने के लिए कोई कला की जरूरत नहीं, क्योंकि उसके लिए तो समाज ही तुम्हें तैयार कर देता है। तर्क की भाषा के लिए तुम पूरी तरह निष्णात हो। सत्य की भाषा के लिए तुम्हारी कोई तैयारी नहीं है। सत्य की भाषा अनिवार्य रूप से विरोधाभासी होगी।
उपनिषद कहते हैं, परमात्मा पास से भी पास, दूर से भी दूर। अगर इतना कहें, पास से भी पास, ठीक; अगर इतना ही कहें, दूर से भी दूर, तो भी ठीक; लेकिन एक ही वक्तव्य में विरोध है; पास से भी पास और दूर से भी दूर। तर्क के बाहर हो गई बात।
बुद्ध से पूछो, तुम जो भी पूछोगे बुद्ध से, सभी उत्तर विरोधाभासी आएंगे।
सत्य का स्वभाव विरोधाभासी है। क्यों? क्योंकि सत्य इतना विराट है कि सभी विरोध उसमें समाए हैं। तर्क बड़ा छोटा है; उसकी साफ-सुथरी सीमा-रेखा है। सत्य की कोई सीमा-रेखा नहीं। सत्य सागर है, तर्क छोटे-छोटे पोखर हैं, डबरे हैं; उनकी सीमा-रेखा है। छोटी सी बुद्धि में सीमा-रेखा की बातें समा जाती हैं, समझ में आ जाती हैं। तुम से बड़ी बात है सत्य की; तुम उसे छू लो तो काफी; तुम उसे मुट्ठी में न बांध पाओगे।
बुद्ध ने कहा है, "निरर्थक पदों से युक्त हजार पदों से भी एक सार्थक पद श्रेष्ठ है।"
कौन सा पद सार्थक है? ऐसे तो हम जो भी बोलते हैं, अगर भाषाशास्त्री से पूछोगे तो सभी सार्थक हैं। जो व्याकरण के नियमानुसार कहा गया, जिसने भाषा का कोई नियम, रीति उल्लंघन न की, वह सभी सार्थक है। सार्थकता व्याकरण में है, सार्थकता भाषा के नियमों में है।
बुद्ध पुरुष इसे सार्थक नहीं कहते। बुद्ध पुरुष कहते हैं, सार्थकता बोलने वाले के अनुभव में है; व्याकरण के नियम पालन हों या न हों।
कबीर कोई व्याकरण नहीं जानते, लेकिन काशी में जितने भी पंडित थे उस समय, सब भी एक तरफ रख दिए जाएं तराजू पर और कबीर अकेले एक तरफ तराजू पर रख दिए जाएं, तो भी सारे पंडित मिलाकर कबीर के पलड़े को ऊपर न उठा सकेंगे; वे नीचे जमीन पर ही बैठे रहेंगे। पंडित अधर में ही अटके रहेंगे। पूरी काशी भी एक कबीर के पलड़े को ऊपर नहीं उठा सकती।
एक कबीर पूरी काशी से ज्यादा हैं; हालांकि व्याकरण तो नहीं है, भाषा
तो नहीं है। कबीर तो गंवार हैं, पढ़े-लिखे नहीं हैं।
कहा है कबीर नेः मसि कागद छुयो नहीं।
कभी छुआ ही नहीं कागज-कलम। मगर जो कहा है, वेद के ऋषि भी झेंप जाएं, उपनिषद के स्रष्टा शर्माएं--एक गंवार की भाषा में। न कोई तुक है, न कोई व्यवस्था है, लेकिन फिर भी जो कहा है, वह जानकर कहा है। अर्थ भीतर से आ रहा है, अर्थ बाहर की किसी व्यवस्था से संयुक्त नहीं है। अर्थ भीतर के अनुभव से आ रहा है।
ऐसा समझो कि तुमने प्रेम के संबंध में बहुत से शास्त्र पढ़े हैं और फिर प्रेम के संबंध में तुम कुछ लिख दो, जरूर सार्थक मालूम होगा, होगा नहीं। सार्थक मालूम तो होगा, क्योंकि तुम जो भी लिखोगे, उसमें व्यवस्था होगी, संगति होगी, तर्कसरणी होगी; लेकिन सार्थक हो नहीं सकता, क्योंकि प्रेम तुमने जाना नहीं।
और अक्सर ऐसा होता है कि प्रेम को जो नहीं जानते, वे प्रेम के संबंध में बोलते हैं, लिखते हैं, गीत गाते हैं। ये प्रेम की कमी को पूरा करने के उपाय हैं। जिन्होंने प्रेम को जान लिया, वे शायद चुप भी रह जाएं; या अगर कुछ कहें तो शायद तुम्हारी समझ में न पड़े, बेबूझ मालूम पड़े, क्योंकि तुमने भी प्रेम तो जाना नहीं; जिसने जानकर कहा है, उसकी बात तुम्हें जंचेगी नहीं।

मैंने सुना है, एक नाव पड़ी थी एक नदी के किनारे और चार कछुए छलांग लगाकर उसमें बैठ गए। हवा तेज थी, उनके धक्के से नाव चल पड़ी, वे बड़े प्रसन्न हुए। लेकिन एक बड़ा दार्शनिक सवाल उठ आया कि नाव कौन चला रहा है? हम तो नहीं चला रहे।
एक कछुए ने कहा, नदी चला रही है। देखते नहीं? नदी की धार बही जा रही है, वही नाव को लिए जा रही है।
दूसरे ने कहा, पागल हुए हो? यह हवा है, नदी नहीं, जो नाव को चला रही है।
बड़ा विवाद छिड़ गया। तीसरे ने कहा, यह सब भ्रम है--वह और भी बड़ा दार्शनिक रहा होगा--यह सब भ्रम है; न हवा चला रही है, न नदी चला रही है; न कोई चल रहा, न कहीं कोई जा रहा, यह सब सपना है; हम नींद में देख रहे हैं। चौथा लेकिन चुप रहा। उन तीनों ने चौथे की तरफ देखा और कहा, तुम कुछ बोलते क्यों नहीं? लेकिन चौथा फिर भी चुप रहा; उसने कहा, मुझे कुछ भी पता नहीं।
उसकी यह बात सुनकर वे जो तीनों आपस में लड़ रहे थे, सब साथी हो गए, और उस चौथे को उन्होंने धक्का देकर नदी में गिरा दिया कि बड़ा समझदार बना बैठा है। उसने बेचारे ने इतना ही कहा था कि मुझे कुछ पता नहीं, कौन चला रहा है। उसने बड़े गहरे अनुभव की बात कही थी। किसको पता है, कौन चला रहा है? पता हो भी कैसे सकता है।
वेद के ऋषियों ने कहा है, किसने बनाया इस जगत को, कौन कहे? कैसे कहे? किसको पता है? जिसने बनाया हो, शायद उसे पता हो, शायद उसे भी पता न हो। बड़ी अनूठी बात कही हैः शायद उसे पता हो, शायद उसे भी पता न हो। क्योंकि बना लेने से ही कुछ पता चल जाता है, ऐसा तो नहीं।
एक मूर्तिकार मूर्ति बना लेता है; इससे क्या पता चल जाता है? उससे पूछो, वह कहेगा, एक भाव उठा, पता नहीं कहां से आया? क्यों आया? न आता तो भी कोई उपाय नहीं था। आ गया तो पकड़े गए उस भाव में, उस भाव ने पकड़ ली गर्दन और मूर्ति को बनाना पड़ा। कैसे बनी? किसने बनाई? उपकरण हो गया था। एक कवि से पूछो--जिसने गीत रचा हो--पूछो, कैसे बनाया? कहेगा, पता नहीं।
जिन्हें पता है, वे शायद कहें, पता नहीं; और जिन्हें पता नहीं है, वे निश्चित उत्तर देंगे कि पता है, क्योंकि इसी भांति वे अपने अज्ञान को ढांक सकेंगे।
वे तीन कछुए आपस में लड़ते थे, लेकिन उनका विवाद खतम हो गया, जब इस चौथे कछुए ने शांत रहकर कहा कि मुझे पता नहीं। किसको पता है? उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने कहा कि बड़ा रहस्यवादी बनता है, बड़ा समझदार बनता है। इतनी समझदारी की बात कर रहा है, हमें पता नहीं, किसी को पता नहीं! धक्का मारकर नीचे गिरा दिया।
सत्य जब भी बोला गया है तो बाकी कछुओं ने उसे धक्का मारकर गिरा दिया है। सत्य को कभी स्वीकार नहीं किया गया। क्योंकि तुम कुछ पहले से ही स्वीकार किए बैठे हो, इसलिए सत्य से भी वंचित रह जाते हो और सत्य की अभिव्यक्ति के पास जो उपशांत होने की संभावना थी, उससे भी वंचित रह जाते हो। तुम पहले से ही माने बैठे हो कि तुम्हें पता है।
मेरे पास तुम हो, अपनी सब जानकारी अलग रख दो; गठरी में बांधकर नदी में डुबा आओ; तो तुम मुझे सुनते-सुनते उपशांत होने लगोगे। तुम्हें शायद कुछ करना भी न पड़े, शायद सुनते-सुनते ही तुम एक नए अर्थ से भर जाओ, आपूरित हो जाओ--हो ही जाओगे, हो ही जाना चाहिए; कोई कारण नहीं है, बाधा नहीं है कोई। लेकिन अगर तुम अपनी जानकारी लेकर सुन रहे हो, तुम अपने शास्त्र को बचा-बचाकर सुन रहे हो, तुम अपने सिद्धांतों को पकड़े-पकड़े सुन रहे हो, तो तुमने सुना ही नहीं; तब तुम विवाद में रहे, संवाद न हो सका। संवाद हो जाए और एक सार्थक पद पड़ जाए तुम्हारे भीतर, बस, काफी है।
बुद्ध कहते हैं, "एक सार्थक पद श्रेष्ठ है हजारों पदों से भी।"
पर क्या है सार्थकता की उनकी परिभाषा? जो भीतर के अनुभव से आया हो, अनुभवसिक्त हो, जानकर आया हो; उधार न हो, नगद हो, तो ही सार्थक है।
ज्ञान की आराधना दिन का शयन है
क्लेश से निस्तार केवल कर्म से है

दर्शनों से सिद्धियां किसको मिली हैं
जीव का उद्धार केवल धर्म से है
दर्शनों से सिद्धियां किसको मिली हैं
कितना ही समझो, सोचो, विचार करो, शास्त्र पढ़ो, अध्ययन-मनन-चिंतन करो, दर्शनों से सिद्धियां किसको मिली हैं? कौन सिद्ध हुआ है शास्त्रों को पढ़कर? हां, जो सिद्ध हुए हैं, उनसे जरूर शास्त्र जन्मे हैं; वह बड़ी और बात है।
जीव का उद्धार केवल धर्म से है
धर्म का क्या अर्थ है? धर्म का अर्थ हैः अनुभव में आ जाए जो।
अभी तो तुम जिसे धर्म कहते हो वह भी धर्म नहीं है, दर्शन है। मेरे पास कोई आ जाता है, वह कहता है, मैं जैन-धर्म में मानता हूं। मैं कहता हूं, कहो जैन-दर्शन में; मत कहो जैन-धर्म में। क्योंकि जैन-धर्म का तुम्हें कहां पता? महावीर को था, तुम्हें कहां? जैन-दर्शन में, महावीर ने जो कहा, उसमें तुम मानते हो। महावीर ने किसी का कहा नहीं माना, महावीर ने जाना। तुम मानते हो, मान्यता दर्शन तक जाती है। मान्यता एक दृष्टि है, एक दृष्टिकोण है, अनुभव नहीं।
और इसकी कसौटी यही है कि अगर तुमने सुनने की शर्त पूरी की तो तुम उपशांत हो जाओगे।
अनेक बार लोग मुझसे पूछते हैं, सदगुरु की पहचान क्या है? मैं कहता हूं, सदगुरु की तुम फिक्र मत करो, तुम सिर्फ सुनने की कला सीख लो। बस, सदगुरु तुम पहचान लोगे। सदगुरु छिपाएगा तो भी छिपा न सकेगा; तुम पहचान ही लोगे। तुम उसके पास आकर उपशांत होने लगोगे।
जैसे बगीचे के पास आकर शीतल हवाएं तुम्हें छूने लगती हैं, बगीचा दिखाई भी न पड़ता हो तो भी तुम जानते हो, करीब आने लगे बगीचे के। और करीब आते हो, फूल की गंध हवाओं में तिरने लगती है; अभी भी बगीचा दिखाई न पड़ता हो, रात अंधेरी हो, तो भी तुम जानते हो कि दिशा ठीक है। गंध बढ़ती चली जाती है, बगीचा करीब आता चला जाता है। लेकिन अगर तुम्हारे नासापुट खराब हों, अगर तुममें सूंघने की क्षमता खो गई हो, तब बड़ी मुश्किल होगी।
तुम यह मत पूछो कि बगीचा कहां है, तुम यह पूछो कि नासापुट कैसे उपलब्ध हों? सूंघने की क्षमता कैसे उपलब्ध हो?
सदगुरु की पूछते हो कि सदगुरु को कैसे पहचानें? तुम कैसे पहचानोगे सदगुरु को? तुम इतना ही करो कि तुम सुनने में समर्थ, तुम इतना ही करो कि तुम सदगुरु को उपलब्ध हो सको, सदगुरु के लिए खुले रह सको; वह तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे तो ऐसा न हो कि तुम सोए रहो और तुम्हें सुनाई न पड़े--बस, इतना काफी है।
जिसने सुनना सीख लिया, जिसे श्रवण की कला आ गई, उसे तत्क्षण समझ में आना शुरू हो जाएगा, कहां मिलती है उपशांति। तब वह चिंता न करेगा कि मंदिर जाऊं, कि मस्जिद जाऊं, कि जैन मुनि को सुनूं, कि हिंदू साधु को सुनूं, कि मुसलमान फकीर को सुनूं, इसकी चिंता न करेगा।
ये चिंताएं नासमझों की हैं। फिर तो वह एक ही भाव करेगा, जहां उपशांत होता हूं, वहां जाऊं। फिर चाहे वह मुसलमान फकीर हो, चाहे जैन मुनि हो, चाहे बौद्ध भिक्षु हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
फिर वह मस्जिद हो कि मंदिर, इससे क्या फर्क पड़ता है? असली कसौटी हाथ में आ गई कि जहां सब शांत होने लगता है, जहां हृदय की वीणा शांति के स्वर बजाने लगती है, जहां रोआं-रोआं पुलकित होने लगता है; जहां लगता है, धूल झड़ी, स्नान हुआ; जहां लगता है, ताजगी मिली; जहां लगता है, पोषण मिला; जहां लगता है, जीवंत होकर लौटे, ज्योति मिली--जैसे किसी ने तुम्हारे प्राणों के दीए को, ज्योति को उकसा दिया हो।
"हजार-हजार पद भी व्यर्थ हैं, एक सार्थक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर मनुष्य उपशांत हो जाता है।"
"संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीतने वाले से भी उत्तम संग्राम-विजेता वह है, जो एक अपने को ही जीत ले।"

पहली बातः उसे खोज लेना, जिसके पास कुछ अर्थ की संपदा हो। क्योंकि जब
तक तुम्हें खजाना न दिखाई पड़े, तब तक तुम्हें अपने भीतर के खजाने की खोज, प्यास पैदा न होगी। हो भी कैसे? जब तक तुमने किसी को नाचते न देखा हो, तो नृत्य का भाव कैसे उठे? जब तक तुमने किसी को मस्ती में डोलते न देखा हो, तब तक मस्त होने की कामना कैसे उठे? जब तक तुमने किसी को शांति का, शून्य का अवतार अनुभव न किया हो, तब तक तुम्हारे भीतर शांत होने की कल्पना कैसे उठे? शांत होने की कल्पना कैसे पंख फैलाए?
जिन लोगों के बीच तुम रहते हो, उन्हें तुम अपने से ज्यादा अशांत पाते हो। सुबह से अखबार पढ़ते हो, संसार भर के उपद्रव, चोरी, बेईमानी, हत्या, सब पढ़ते हो; पढ़-पढ़कर तुम्हें लगता है, इससे तो हमीं भले। अखबार पढ़ने का राज ही यही है; इतने रस से लोग पढ़ते हैं, उसका कुल कारण यही है कि पढ़कर ऐसा लगता है कि इससे तो हमीं भले।
जिस संसार में तुम्हें ऐसा लगता हो कि इससे तो हमीं भले, वहां तुम्हारी प्रगति नहीं हो सकती; वहां तुम्हारी गति नहीं हो सकती। ऊंट को पहाड़ के करीब आना होगा, तभी उसे पता चलेगा, अरे! मैं बहुत छोटा हूं। पृथ्वी पर जब भी कोई बुद्ध पुरुष चलता है तो जो भी उस पहाड़ के करीब आने
की हिम्मत रखते हैं--हिम्मत रखनी पड़ती है, क्योंकि ऊंट को बड़ा डर लगता है पहाड़ के पास जाने में। यह बात ही माननी कि कोई मुझसे बड़ा हो सकता है, यह स्वीकार करना ही कठिन मालूम होता है। हम तो हजार उपाय करके, हजार सहारे लेकर माने रखते हैं कि हम बड़े हैं। ऐसी कहीं जगह, ऐसा कोई स्थान, जहां यह प्रतिमा खंडित हो जाए, जहां यह भाव गिर जाए, दुखदायी मालूम होता है; वहां हम जाते ही नहीं। चले भी जाएं, आंखें बंद कर लेते हैं, बचाकर निकल जाते हैं।
तो पहली तो बात बुद्ध कहते हैं, जहां अर्थ का फूल खिला हो, ऐसे किसी व्यक्ति के पास जाना। जाते ही लगेगा, तुम्हारा सारा जीवन व्यर्थ है। जिसके पास तुम्हें अपना जीवन व्यर्थ लगे, समझना कि वहां कोई सार्थकता खिली है; उसकी ही तुलना में तो तुम्हें व्यर्थता का बोध हुआ।
ऐसा यह संसार है जैसे सेमर फूल
दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल
कबीर का वचन है। जैसे सेमर फूल बड़ा शुभ्र मालूम होता है, ऐसा यह संसार है। दिन दस के व्यवहार में--पर ज्यादा देर टिकता नहीं।
दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल
बिखर जाता है। हवा का जरा सा झोंका--और सेमर का फूल बिखरा; हजार खंडों में टूट जाता है, हजार दिशाओं में बह जाता है।
जिस किसी व्यक्ति के पास आकर तुम्हें यह अनुभव में आ जाए कि मेरा जीवन व्यर्थ, क्षणभंगुर; मैंने अब तक जो कमाया, कमाया नहीं, गंवाया; अब तक जैसे मैं चला, चला नहीं, भटका; अब तक जिसको मैंने संपत्ति समझी, वह विपत्ति थी; और अब तक जिसको मैंने वरदान समझा, वह अभिशाप था; जिसे मैंने प्रेम जाना, वह प्रेम नहीं था; जिसे मैंने सत्य माना, वह सत्य नहीं था।
जब किसी व्यक्ति के पास आकर तुम्हें ऐसा अनुभव होने लगे तो घबड़ाकर भाग मत जाना। मन तो कहेगा, भाग चलो, हट चलो; हम अपने अंधेरे में बेहतर। मन तो कहेगा, यह और कहां की झंझट में पड़ते हो? यह यात्रा बड़ी मालूम पड़ेगी। मन तो कहेगा, जैसे चलते थे, परिचित रास्ता है, उसी पर चलते रहो। मन लकीर का फकीर है। मन नए के पीछे जाने में घबड़ाता है। लेकिन जब भी तुम कभी कोई सार्थक वचन सुनोगे तो नया ही मालूम होगा, ताजा मालूम होगा--सद्यस्नात! और उसी के कारण तो उपशांति मिलेगी। उसी ताजगी की वर्षा तुम पर होगी तो मन उपशांत होगा।
साहस रखना। सदगुरु को खोजने की फिक्र मत करना, तुम सुनने की क्षमता रखना। और जब सुनने में कहीं तुम्हारे पास कोई सार्थकता का अनुभव आने लगे तो घबड़ाकर भागना मत। क्योंकि सदगुरु सार्थक दिखेगा तो तुम निरर्थक दिखोगे।

अब इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना। अगर गुरु पर ध्यान रखोगे तो उपशांति मिलेगी। अगर अपने पर ध्यान करोगे तो बड़े अशांत हो जाओगे। जब भी कोई चीज सार्थक दिखाई पड़ेगी तो पृष्ठभूमि में बहुत कुछ व्यर्थ हो जाएगा।
तुम कंकड़-पत्थर बीने बैठे थे और मैंने तुम्हें बताया कि ये कंकड़-पत्थर हैं; मैंने तुम्हें हीरा दिखाया। तो तुम्हारे पास दो विकल्प हैंः या तो तुम कंकड़-पत्थर छोड़ो, हीरे की खोज में लग जाओ। अगर तुमने ऐसा चुना तो मन तत्क्षण शांत हो जाएगा कि जितने जल्दी छूटे उतना ही ठीक; जब छूटे तभी ठीक; जब जागे तभी सुबह; और दिन न खोए, सौभाग्य।
तुम दूसरा विकल्प भी ले सकते हो, जो कि साधारणतः सौ में से निन्यानबे लोग लेते हैं; वह यह कि तुम मुझ पर नाराज हो जाओ कि हमारे हीरे-जवाहरातों को कंकड़-पत्थर किए दे रहे हो। तुम सदा के लिए मेरे दुश्मन हो जाओ; तो तुम अशांत हो जाओगे।
और ध्यान रखना, अब तुम लाख उपाय करो, तुम्हारे कंकड़-पत्थर फिर से हीरे
न हो सकेंगे। अब तुम बड़े अशांत हो जाओगे। अब तुम बड़ी पीड़ा में पड़ जाओगे। अब तुम लाख मानने की कोशिश करो कि ये हीरे-जवाहरात हैं, ये हीरे-जवाहरात अब न हो सकेंगे। तुम कितने ही नाराज होओ, कितने ही क्रोधित होओ, कितनी ही गालियां मेरी तरफ फेंको, अब ये हीरे-जवाहरात हीरे-जवाहरात नहीं हैं। कितने ही छाती से चिपटाओ, भ्रम टूटा सो टूटा। जो बात गई, सो बात गई; अब उसे लौटाया नहीं जा सकता।
जो झूठ तुम्हें एक बार भी दिखाई पड़ गया कि झूठ है, उसे फिर सत्य नहीं बनाया जा सकता। और जो सत्य तुम्हें एक बार भी झलक गया कि सत्य है, अब तुम उसे झुठला न सकोगे।
तो ध्यान रखना, जिसके पास परम उपशांति मिल सकती है, उसके पास से तुम अशांत होकर भी जा सकते हो। अपने कारण तुम अशांत हो जाओगे।
अगर तुमने उपशांति का सूत्र पकड़ लिया, अगर तुम सार्थकता की खोज में संलग्न हो गए, अगर तुम्हारे भीतर यह भाव उठा कि जैसा प्रकाश इस व्यक्ति के जीवन में उठा है, ऐसा प्रकाश मेरे जीवन में भी हो, तो तुम आत्मविजय की यात्रा में संलग्न हुए।
"संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीतने वाले से भी उत्तम संग्राम-विजेता वह है, जो एक अपने को ही जीत ले।"
सब जीत आखिर में हार सिद्ध होती है। सब जीत! बेशर्त कहता हूं; सब जीत अंततः हार सिद्ध होती है। सब सफलताएं आखिर में विफलता के खड्ड में गिरा जाती हैं। और जिसे तुम जीवन कहते हो, वह बेचूक कब्र में जाकर पूरा होता है-- बेचूक। उसका कोई और अंत नहीं है।
ऐसा यह संसार है जैसे सेमर फूल
दिन दस के व्यवहार में झूठे रंग न भूल
एक अपने को जीतना ही जीतना सिद्ध होता है। एक अपने को पाना ही पाना सिद्ध होता है, क्योंकि फिर उसे मौत नहीं छीन पाती। वही जीवन है, जिसे मौत न छीन पाए। फिर उसे चिता की लपटें नहीं जला पातीं। वही संपदा है, जिसे आग न जला पाए। फिर उस पद को कोई तुमसे छीन नहीं सकता। संसार की हवाएं उस सिंहासन से तुम्हें नीचे नहीं उतार सकतीं। वही पद है पाने योग्य, जो फिर छीना न जा सके। एस धम्मो सनंतनो। वही है शाश्वत धर्म, जिसके सामने मृत्यु हार जाती है।
पागल की गल्प नहीं
अर्थरहित जल्प नहीं
मानव के अंतर में
जो कुछ उत्तमतर है
उसके अभिव्यंजन का
जीवन यह अवसर है
सुख में वह केवल जो
इस तप में तत्पर है
यह जीवन या तो पागल के द्वारा कही गई कथा हो जाएगी। शेक्सपीयर का प्रसिद्ध वचन हैः ए टेल टोल्ड बाई एन ईडीयट, फुल आफ फ्युरी एंड न्वाइज,

सिगनीफाइंग नथिंग। एक मूर्ख के द्वारा कही गई कथा, शोरगुल बहुत, अर्थ कुछ भी नहीं। पागल की गल्प, अर्थरहित जल्प।
साधारणतः तो जीवन ऐसा ही है--जैसे सेमर फूल। इधर खिला नहीं, इधर बिखरने की तैयारी हुई। इधर आया नहीं कि जाना शुरू हो गया। जन्म क्या हुआ, मौत में हुआ। सफलता का कदम ही विफलता का कदम बन जाता है।
इसे जरा गौर से देखो! यश क्या मिला, गालियां पड़ने लगीं। फूल क्या हाथ में लिया, कांटे चुभ गए। प्रेम क्या किया, घृणा की आंधियों को निमंत्रण दे दिया। सुख क्या मांगा, दुख बरसने लगा।
थोड़ा जीवन को देखो! जो चाहते हो, उससे उलटा हो रहा है। जो मांगते हो, उससे उलटा हो रहा है। जो मानते हो, वैसा कभी होता ही नहीं; और जो होता है, उसको तुम देखते नहीं।
तुम पागल हो। हजार बार सुख मांगकर दुख पाते हो, फिर भी यह नहीं देखते
कि सुख की मांग में ही दुख का आना छिपा है। तुमने मांगा, तुमने पुकारा सुख को, सुनता है दुख, आता है दुख। तुम आवाज सुख को ही देते चले जाते हो, दुख आता ही चला जाता है। ऐसा लगता है कि सुख दुख का नाम है; सफलता विफलता का नाम है। और जिसे तुम जीवन कहते हो, वह मृत्यु का आवरण है।
यह तुम्हें दिखाई पड़े, यह तुम्हें थोड़ा समझ में आए, तो इसमें चलना, इसमें जीवन की ऊर्जा को व्यय करना, इसमें अवसर को खोना, सब जैसे एक पागल कहानी कह रहा हो, जिसमें न कोई ओर-छोर है, न कोई सार-संगति है। मरते वक्त तुम ऐसा ही पाओगे कि यह सब जो घटा, एक दुख-स्वप्न था या सच में हुआ?
नहीं, लेकिन यह तुम्हारी भूल है; यह जीवन का स्वभाव नहीं है। यह तुम्हारे देखने का गलत ढंग है।
पागल की गल्प नहीं
अर्थरहित जल्प नहीं
मानव के अंतर में
जो कुछ उत्तमतर है
उसके अभिव्यंजन का
जीवन यह अवसर है
सुख में वह केवल जो
इस तप में तत्पर है
अगर दिशा ठीक हो, दृष्टि साफ हो, तो अभी जो एक बेबूझ पहेली मालूम होती है, वह बड़ी सारपूर्ण हो जाती है।
मगर यह सार्थकता शुरू होगी, तुम्हारा हाथ स्वयं पर पड़ जाए तो; तुम अपनी विजय कर लो तो। जिसने अपने को जीता, उसका सारा जीवन संगतिपूर्ण हो जाता है। फिर यहां कोई असंगति नहीं रह जाती; फिर सारी चीजें अपने आप ठीक स्थान पर खड़ी हो जाती हैं। और हर चीज का उपयोग हो जाता है।
तब यह जीवन एक व्यर्थ की दौड़-धूप नहीं होती, आत्म-अभिव्यंजना होती है।
तब यह जीवन ऐसा ही दुख-स्वप्न नहीं होता--एक पीड़ा, एक निरर्थक श्रम--वरन सार्थक होने लगता है।
जिसने भीतर की थोड़ी सी भी समझ पाई, जिसने भीतर अपने पैर गड़ाए, स्वभाव में जड़ें पकड़ीं, जिसने आत्मा को थोड़ा जाना, स्वयं को पहचाना, अपनी पहचान हुई, उस क्षण के साथ ही यह सारा संसार अपना रूप बदल लेता है।
ठीक उलटी कथा हो जाती है। अभी जीवन के पीछे मौत छिपी है, तब मौत के पीछे जीवन छिपा मिलता है। अभी हर फूल के पीछे कांटा छिपा है, तब हर कांटे के पीछे फूल मिलता है। अभी हर सुख के पीछे दुख मिलता है, तब हर दुख के पीछे सुख मिलने लगता है। तुम क्या बदले, सब बदल जाता है।
ऐसा लगता है कि तुम अभी शीर्षासन कर रहे हो, तो सब उलटा दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम उलटे खड़े हो। तुम सीधे खड़े हो जाओ, सब सीधा हो जाता है। सारी बात तुम्हारे होने पर निर्भर है।
"संग्राम में हजारों मनुष्यों को जीतने से भी उत्तम संग्राम-विजेता
वह है, जो एक अपने को ही जीत ले।"
कठिनाई क्या है? अड़चन क्या है? बुद्ध पुरुष चिल्लाते रहे शिखरों पर खड़े होकर, छप्परों पर खड़े होकर; अड़चन क्या है? क्यों हम सुनते नहीं? अड़चन

कहीं कुछ भारी होनी चाहिए; इतनी भारी होनी चाहिए कि हम बुद्ध पुरुषों की फिक्र छोड़ देते हैं और अपना गोरखधंधा जारी रखते हैं।
अड़चन यह है कि जिसे तुमने अभी समझा है कि तुम हो, इसे गंवाना पड़ेगा, अगर उसे पाना हो, जो कि तुम वस्तुतः हो। तुम्हारा नाम, तुम्हारा धाम, तुम्हारा पता-ठिकाना, तुम्हारी आइडेंटिटी, तुम्हारा तादात्म्य, सब झूठा है। जो भी तुमने जाना है, मैं हूं, वह तुम बिल्कुल नहीं हो। तुमने जिसे अब तक आत्मा माना है, वह आत्मा है ही नहीं। ये भी ख्याल तुम्हें दूसरों ने दे दिए हैं।
किसी ने कहा, तुम सुंदर हो, और तुमने अपने को सुंदर मान लिया। तुमने अपना चेहरा अभी देखा ही नहीं। किसी ने कहा, तुम बुद्धिमान हो, तुमने अपने को बुद्धिमान मान लिया। तुमने अपना चेहरा अभी देखा ही नहीं। फिर एक भूल दूसरी भूल में ले जाती है, फिर दूसरी भूल तीसरी भूल में ले जाती है, फिर भूलों का अंबार लग जाता है। और जो तुमसे कहते हैं, तुम सुंदर हो, उनका प्रयोजन कुछ और होगा।
मैंने सुना है, तीन उचक्के एक दुकान पर गए। भीड़ लगी थी, मिठाई की दुकान थी। उस गांव में सबसे जाहिर और प्रसिद्ध दुकान थी। वे भीड़ में तीनों खड़े हो गए। फिर एक ने कहा कि अब बड़ी देर हो गई रुपया दिए, न मिठाई आती है, न बाकी पैसे वापस लौट रहे हैं। उस दुकानदार ने आंख उठाई, उसने कहा, कैसा रुपया! झगड़ा-झांसा शुरू हो गया। वह आदमी कह रहा था कि मैंने आठ आने की मिठाई मांगी, तो आठ आने वापस चाहिए। न मिठाई मिली है, न आठ आने वापस मिले हैं। उसने कुछ रुपया वगैरह दिया नहीं था।
दूसरे उचक्के ने कहा कि नहीं, यह हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह दुकानदार बड़ा ईमानदार आदमी है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं, तू गलती में है। बड़ा झगड़ा-झांसा मच गया। जब यह सब चल रहा था, तब उस दूसरे उचक्के ने कहा कि मियां लाला! कहीं इस झंझट में मेरा रुपया मत भूल जाना।
अब सेठ जरा मुश्किल में पड़ा कि अगर वह कहे कि तूने भी रुपया नहीं दिया,
तो यह सारी भीड़ मेरे ही खिलाफ हो जाएगी कि तुम्हीं एक सेठिया सराफ, सारी दुनिया चोर-बेईमान! और यह आदमी तो बड़ा भला आदमी है, यह तो कह ही रहा है कि सेठ बड़ा भला आदमी है, ईमानदार है; यह कभी ऐसा कर ही नहीं सकता है।
इसके पहले कि कुछ वह बोले, तीसरा उचक्का बोला कि यह तो ठीक है, इनका तो रुपये-रुपये का मामला है, मेरा पांच का नोट है। उस सेठ ने सोचा कि अब जल्दी ही हां कह देना ठीक है, नहीं तो यह पूरी भीड़ खड़ी है, कोई कुछ भी कहने लगे, कोई सौ का ही नोट बताने लगे। उसने कहा, भाई बिल्कुल ठीक है; तुम तीनों ले लो, मुझसे भूल हो गई है।
तुमने कभी गौर किया, जो तुमसे कहता है, तुम बड़े सुंदर, तुम बड़े बुद्धिमान, तुम बड़े तेजस्वी, तुम बड़े ईमानदार, उसके कुछ प्रयोजन होंगे, उसके कुछ अपने निहित स्वार्थ होंगे।
तुम चकित होओगे कि संसार में दूर जिनसे तुम्हारा कोई लेना-देना है, उनके स्वार्थ होंगे वह तो ठीक ही है, जो तुम्हारे बिल्कुल निकट हैं, उनके भी स्वार्थ हैं।
मां भी अपने बेटे से कहती है कि तुझसे सुंदर कोई भी नहीं है। सभी मां ऐसा मानती हैं। उसमें भी स्वार्थ है। स्वार्थ यह है कि मेरा बेटा असुंदर हो कैसे सकता है? मेरा बेटा है। बेटे के सौंदर्य पर तो मां का सौंदर्य निर्भर है, क्योंकि फल से तो ही वृक्ष पहचाना जाता है। बाप कहता है, तुम बड़े बुद्धिमान, बड़े होशियार।
मेरे पास लोग आते हैं, वे अपने बच्चों की तारीफ करते हैं। मैं चकित होता हूं। अगर सबके बच्चे इतने अदभुत हैं तो यह दुनिया बड़ी अदभुत हो जाए, लेकिन ये सब, बाद में सब खो जाते हैं।
बच्चे अदभुत होने ही चाहिए, इसमें मां-बाप का स्वार्थ है। ये उनके सबूत हैं, प्रमाण हैं। फिर जब ये बच्चे अदभुत सिद्ध नहीं होते तो मां-बाप पीड़ित, परेशान होते हैं। इसलिए तुम मां-बाप को कभी भी प्रसन्न न पाओगे। एक झूठ दूसरी झूठ में ले जाती है। कोई मां-बाप प्रसन्न नहीं होता, बच्चे कुछ भी बन जाएं।

मैंने तो एक कहानी सुनी है कि एक यहूदी महिला मरी; उसके मन में सदा से
एक ही प्रश्न था कि अगर स्वर्ग गई तो मुझे मरियम से--जीसस की मां से पूछना है एक सवाल। जब वह मरी, भाग्य से स्वर्ग पहुंची। उसने पहली ही बात जो पूछी दरवाजे पर, वह यह कि मुझे मरियम के पास जाना है, एक सवाल मुझे पूछना है। वह मरियम के पास ले जाई गई। मरियम ने कहा, मुझे पता है, यह सवाल तेरे मन में सदा से है; अब तू पूछ ही ले।
उसने कहा कि सवाल मेरा यह है कि संसार में मैंने कभी किसी मां-बाप को...
जब बच्चे पैदा होते हैं, तब उनके गुणगान करते सुना है सदा; बच्चे जब पैदा होते हैं तो किसी मां-बाप को मैंने उनकी निंदा करते नहीं सुना। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं और जीवन में उतरते हैं तो सभी मां-बाप को उनकी निंदा करते सुना है, तब मैंने कभी प्रशंसा करते नहीं सुना। इससे मैं बड़ी बेचैन और परेशान रही हूं। तुमने तो कम से कम अपने बेटे की प्रशंसा की होगी। तुम्हारा बेटा तो जीसस!
मरियम, कहते हैं, उदास हो गई; उसने कहा, हमने तो सोचा था डाक्टर बनेगा। मां-बाप भी तुमसे जो कह रहे हैं, वह तुम्हारा सत्य नहीं है, वे उनकी आकांक्षाएं हैं। बाहर भी लोग तुमसे जो कह रहे हैं, वह भी तुम्हारा सत्य नहीं है, उनकी सुविधाएं हैं। और इन्हीं सब के आधार पर तुम अपनी प्रतिमा निर्मित करते हो कि तुम कौन हो। ये बाहर के चीथड़े-थेगड़े इकट्ठे करके, अखबारों की कतरनें लगाकर, जोड़कर तुम अपनी प्रतिमा बना लेते हो।
इस प्रतिमा के कारण ही तुम्हें भीतर जाने में अड़चन होने लगती है--कैसे इसको छोड़ो! इसमें पूरा जीवन न्योछावर किया है, कैसे इसे तोड़ो! और आत्मविजय के लिए इसका टूट जाना जरूरी है। क्योंकि तुम अपने को तभी जान सकोगे, जब तुमने दूसरों से जो भी अपने संबंध में सुना है, वह सब तुम छोड़ दो; तभी तुम अपना साक्षात्कार कर सकोगे सीधा-सीधा; अपने आमने-सामने हो सकोगे।
जाग उठेगी रूह तुम तो सो जाओगे
सर चश्मए-जिंदगी में धो जाओगे
खो जाओगे जब मनाजिरे-फितरत में
अपने से बहुत करीब हो जाओगे
तुम टूटोगे एक तरफ और दूसरी तरफ तुम्हारा स्वभाव प्रगट होगा। इधर तुम खोने लगोगे, उधर तुम अपने पास होने लगोगे।
खो जाओगे जब मनाजिरे-फितरत में
अपने से बहुत करीब हो जाओगे
जाग उठेगी रूह तुम तो सो जाओगे
एक तरफ तो तुम सो जाओगे, गिर जाओगे, मिट जाओगे, दूसरी तरफ रूह जागने लगेगी।
दांव पर लगाना होगा अपने को पूरा-पूरा। सस्ता सौदा नहीं होने वाला है।
तुम मुफ्त चाहते हो आत्मा। कभी-कभी तुम कुछ-कुछ छोड़ते भी हो आत्मा के लिए--कुछ दान करते हो, कुछ मंदिर बनाते हो, कुछ मस्जिद खड़ी करते हो--उससे भी काम नहीं होगा। आत्मा को पाने की एक ही शर्त है कि तुम अपने को गंवाने को राजी हो जाओ।
जो अपने को गंवाने को राजी है, उसी को मैं संन्यस्त कहता हूं। उसी को बुद्ध ने भिक्खु कहा है। भिक्खु का अर्थ हैः जो अपने होने की सारी संपदा को गंवाने को राजी है, भिखारी होने को तैयार है। जो कहता है, मैं कुछ भी न पकडूंगा। अब तक जो संपदा मानी, अपना तादात्म्य समझा, वह छोड़ता हूं। न-कुछ होने की तैयारी भिक्षु होना है।
"इन इतर प्रजाओं को जीतने की बजाय अपने आप को जीतना श्रेष्ठ है। अपने
को दमन करने वाला और नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है, उसकी जीत को न देवता, न गंधर्व और न ब्रह्मा सहित मार ही अनजीता कर सकते हैं।"
सारे संसार को भी कोई जीत ले तो भी कुछ जीत नहीं होती। इन हारे हुए लोगों को जीत लेने में सार भी क्या हो सकता है? इन मरे हुए लोगों को जीत लेने में सार भी क्या हो सकता है? यह तो ऐसे ही है कि कोई जाए और मरघट पर झंडा गाड़ दे; क्या सार है?

यह मरघट है, जिसको तुम संसार कहते हो। और जिनको तुम जीतने चले हो, ये मरे हुए लोग हैं। और मजा यह है कि तुमने अभी अपने को नहीं जीता और तुम दूसरे को जीतने चल पड़े। तुम जीत भी कैसे पाओगे? तुम जबरदस्ती किसी की छाती पर बैठ सकते हो, जीत न पाओगे। दूसरे की छाती पर बैठ जाना अनिवार्य रूप से दूसरे का हार जाना नहीं है। दूसरे की छाती पर तुम्हारा बैठ जाना अनिवार्य रूप से तुम्हारी जीत नहीं है। संसार में जिसे हम जीत कहते हैं, वह जबरदस्ती है। जबरदस्ती भी कहीं जीत हो सकती है?
जिन्होंने अपने को जीता, उस जीत के साथ ही बहुतों के ऊपर भी उनकी जीत
का जादू फैल जाता है; दूर-दूर तक उनका जादू फैल जाता है। जिनको भी फिर स्वयं को जीतना है, वे उनके जादू में आ जाते हैं। और मजा यह है कि जबरदस्ती नहीं है कोई।
बुद्ध के चरणों में कितने लोग आकर झुके। सिकंदर ने भी बहुत लोगों को चरणों में झुकाया, लेकिन वे झुके नहीं थे, झुकाया था।
जब तुम किसी को झुका लेते हो, तब जरा गौर से देखना, वह तो अकड़ा ही खड़ा है; सिर्फ देह झुकती है। जब कोई अपने से झुकता है, स्वेच्छा से, तभी झुकता है। प्रेम में और सिर्फ प्रेम में ही जीत होती है; और तो कोई जीत नहीं है। लेकिन अपने को जीता हो तभी प्रेम की संभावना है। जिसने अपने को जीता हो, वही प्रेम को देने में समर्थ हो पाता है। बहुत उसके पास आकर हार जाते हैं। और मजा यह है कि उस हार में वे सब अपनी विजय का पहला कदम उठाते हैं। हार भी जीत की तरफ पहला कदम होती है।
हारना हो तो बुद्धों से हारना; क्योंकि उससे ही तुम जीतने की तरफ आगे बढ़ोगे। हारना हो तो उनसे हारना जिन्होंने अपने को जीत लिया हो; तो तुम भी जीत की यात्रा पर निकल जाओगे।
"इन इतर प्रजाओं को जीतने की बजाय अपने आप को जीतना श्रेष्ठ है। अपने
को दमन करने वाला और नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है, उसकी जीत को न देवता, न गंधर्व और न ब्रह्मा सहित मार ही अनजीता कर सकते हैं।"
एक ही जीत है, जिसे कोई दूसरा अनजीता नहीं कर सकता; जिसे कोई दूसरा हार में नहीं बदल सकता; बाकी तो सब जीतें कोई दूसरा हार में बदल सकता है। जो दूसरे के द्वारा हार में बदली जा सकती है, वह जीत का धोखा है, जीत नहीं। जो किसी के भी द्वारा हार में नहीं बदली जा सकती, वही जीत है; वही शाश्वत जीत है।
सूत्र क्या है?
"अपने को दमन करने वाला।"
बुद्ध के समय में दमन शब्द के अर्थ बड़े दूसरे थे, अब वैसे नहीं हैं। फ्रायड के बाद दमन का अर्थ पूरा का पूरा बदल गया। अब दमन एक निंदित शब्द है। बुद्ध के समय में दमन का गुण-धर्म और था।
बुद्ध क्या अर्थ करते थे दमन का? वे यही अर्थ करते थे, जो हम आज शांत
का करते हैं, दान्त का--वही अर्थ था उन दिनों। जिसके भीतर की सभी वासनाएं शांत हो गई हैं, जिसने अपनी वासनाओं को शांत कर लिया। दमन, दम; शांति की प्रक्रिया का नाम था।
अब इस शब्द का उपयोग खतरनाक है, क्योंकि फ्रायड की खोजों के बाद इस शब्द ने एक नया अर्थ ले लिया है, वह है रिप्रेशन काः जिसने अपनी वासनाओं को दबा लिया। अब दमन का अर्थ होता हैः दबा लेना, तब दमन का अर्थ होता थाः मुक्त हो जाना। इस भेद को ख्याल में रखना।
फ्रायड ने जो दमन का अर्थ किया है, उस अर्थ में दमन खतरनाक है, बहुत खतरनाक है। क्योंकि तुम जो भी दबा लोगे, वह बार-बार प्रगट होगा। तुम जो भी दबा लोगे, उसमें रस और बढ़ जाएगा, घटेगा नहीं। तुम जो भी दबा लोगे, उसको करने की और इच्छा हो जाएगी।
मैं कल एक कविता पढ़ता था अज्ञेय की--
बापू ने कहा, विदेश जाना
तो और जो करना हो सो करना
गौ-मांस मत खाना।
बापू ने कहा, विदेश जाना

तो और जो करना हो सो करना गौ-मांस मत खाना।
अंतिम पद निषेध का था
स्वाभाविक था उसका मन से उतरना
बाकी बापू की मानकर
करते रहे और सब करना
बाकी बापू की मानकर
करते रहे और सब करना
सिर्फ एक बात, वह जो गौ-मांस की थी, वही भर न कर पाए।
जिस बात को भी रोका जाएगा, जिस बात का भी निषेध किया जाएगा, उसी में आकर्षण, महत आकर्षण पैदा हो जाता है। तुम से अगर कहा, यह मत करना, कि तुम्हारे मन में तत्क्षण करने की भावना उठने लगती है। सुनते ही, मत करना, तुम्हारे भीतर कोई गहन अहंकार उठ आता है कि करके रहेंगे।
अगर तुम न करोगे तो तड़फोगे कि कैसे करें? अगर करोगे तो अपराध का भाव मालूम होगा। यह तो मुक्ति का उपाय न हुआ। किया तो फंसे, क्योंकि अपराध और ग्लानि मालूम होगी कि गलत किया, पाप किया। न किया तो फंसे रहे, क्योंकि करने की आकांक्षा प्रज्वलित होती रही, ईंधन पड़ता रहा। यह तो दोनों तरफ फंस गए। यह तो कहीं कोई बचाव न रहा। फ्रायड दमन का यही अर्थ करता है। इस अर्थ में दमन शब्द रोग है; उससे बचना।
लेकिन बुद्ध या पतंजलि जब दमन का उपयोग करते हैं, तो उन दिनों दमन का बड़ा और अर्थ था। उसका अर्थ थाः वासनाओं को समझना, वासनाओं का साक्षी होना, वासनाओं को देखना, उनकी समझ पैदा करना। उनकी प्रज्ञा और प्रत्यभिज्ञा से धीरे-धीरे वासनाएं शांत हो जाती हैं, दान्त हो जाती हैं, दम को उपलब्ध हो जाती हैं, सक्रिय नहीं रह जातीं।
किसी दूसरे ने अगर तुमसे कहा कि मत करो, इससे लाभ न होगा। जब तुम्हीं समझोगे जीवन के प्रगाढ़ अनुभव से न करने की बात; क्योंकि कर-कर के तुम जलोगे, कर-कर के तुम दुख पाओगे; उस दुख से ही जब बोध उठेगा और समझोगे कि यह न करने जैसा है--इसलिए नहीं कि शास्त्र कहते हैं, इसलिए नहीं कि सदगुरु कहते हैं, बल्कि इसलिए कि सारा जीवन तुम से कहता है, तुम्हारा अनुभव तुम से कहता है।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना। जब तुम्हारा अनुभव तुम से कहता है, तुम्हारे भीतर कोई द्वंद्व पैदा नहीं होता। जब तुम्हीं अपने से कहते हो कि यह बात व्यर्थ है, करने योग्य नहीं--लेकिन तुम्हारे अनुभव से आनी चाहिए यह बात। किताब पढ़कर, शास्त्र पढ़कर भी तुम कह सकते हो कि नहीं, यह करने योग्य नहीं। तब तुम तत्क्षण भीतर पाओगे, द्वंद्व खड़ा हो रहा है। एक मन करना चाहता है, एक मन न करना चाहता है। अगर द्वंद्व पैदा हो तो समझना कि तुम फ्रायड वाले दमन के चक्कर में पड़ रहे हो। अगर द्वंद्व पैदा न हो, तुम्हारा अनुभव, तुम्हारी समझ कहे, करने योग्य नहीं और छूट जाए, तो ही बुद्ध के अर्थों में दमन हुआ।
"अपने को दमन करने वाला और नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है...
।"
यह बड़ी अनूठी सूक्ति है; इसे तुम जरा गहरे से समझना।
"और नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है... ।"
धम्मपद पर बहुत टीकाएं लिखी गई हैं, लेकिन कोई भी टीका ने इस सूक्ति
के परम मूल्य को नहीं समझा। सूक्ति का परम मूल्य छिपा है नित्य शब्द में-- "नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है... ।"
व्रत लेकर संयम मत करना। व्रत का मतलब होता है, आज कसम खाते हो, कल संयम करने की। नित्य संयम का अर्थ होता हैः कल जीवन को देखेंगे और जीवन जहां ले जाएगा, जो बोध देगा, उसके अनुसार चलेंगे। प्रतिपल तुम्हारा संयम हो, बासा न हो।
जिनको तुम मुनि, साधु-संन्यासी कहते हो, उनका सब संयम बासा है। कसम ले
ली थी कभी, अब उस कसम को पाल रहे हैं, क्योंकि कैसे उस कसम को तोड़ें? अहंकार आड़े आता है। यह संयम बासा है। ये कल की पकाई रोटी आज खा रहे हैं।

बुद्ध कहते हैं, रोज ताजा संयम; यह बड़ी अनूठी बात है। इसका मतलब हैः रोज-रोज जीना, प्रतिपल जीना, होशपूर्वक जीना। होश ही संयम है। व्रत नहीं, होश। नियम की प्रतिज्ञा नहीं, नियम का बोध।
ऐसा मत कहना कि कसम खाता हूं, अब क्रोध न करूंगा। यह तो दमन बन जाएगा फ्रायड के अर्थों में। क्योंकि कल अगर क्रोध आएगा, फिर तुम क्या करोगे? आज कसम खा ली कि कल क्रोध न करेंगे, कल क्रोध आएगा तो तुम क्या करोगे?
और तुम यह नहीं कह सकते कि कसम खाने से न आएगा, क्योंकि कसम खाने से क्रोध के आने-जाने का क्या लेना-देना, क्या संबंध है? सच तो यह है कि तुम कसम ही इसलिए खा रहे हो कि तुमको भी पता है कि कल आएगा। नहीं तो कसम क्यों खाते? कसम किसके लिए खाते? कल अगर आना ही नहीं है तो बात ही खतम हो गई, कसम क्यों खाते?
तुम भी डरे हो, तुम भी जानते हो अपने को भलीभांति--अपने स्वभाव को, अपनी आदतों को, अपने अतीत को। तुम जानते हो कि कल यह फिर होगा; कसम खा लो, कसम को अटका दो बीच में; शायद कसम रोकने में सहयोगी बन जाए। फिर कल क्रोध आएगा तो तुम दमन करोगे।
बुद्ध कहते हैं, आज क्रोध आया, समझो, जागो, ध्यान करो; इस क्रोध को बोधपूर्वक विसर्जित होने दो। यह क्रोध अंधेरे में विसर्जित न हो जाए, अन्यथा फिर आएगा। इसको सम्यकरूपेण विदा दो। इसको द्वार-दरवाजे पर लाकर नमस्कार करके विदा दो। इसको होशपूर्वक विदा दो।
कसम मत खाओ, सब कसमें अंधेरे में हैं। बेहोश आदमी कसम खाते हैं, होश से भरा आदमी कभी कोई कसम नहीं खाता। कसम का सवाल क्या है? होश पर्याप्त है। सब कसमें होश में पूरी हो जाती हैं। फिर कल अगर क्रोध आएगा तो जो होश आज साधा था, उसको कल फिर साधेंगे। धीरे-धीरे होश को बढ़ाएंगे, होश को साधेंगे; क्रोध विसर्जित हो जाएगा।
होशपूर्ण व्यक्ति क्रोध करता ही नहीं; क्रोध के लिए बेहोशी अनिवार्य शर्त है।
मुझे ऐसा कहने दोः क्रोध के लिए बेहोशी अनिवार्य शर्त है और कसम के लिए भी बेहोशी अनिवार्य शर्त है। कसम बेहोश आदमी खाते हैं और बेहोश आदमी ही क्रोध करते हैं। बेहोश आदमी ही कामवासना में पड़ते हैं और बेहोश आदमी ही ब्रह्मचर्य का नियम लेते हैं। बेहोशी में दमन होने लगता है।
बुद्ध कह रहे हैं, "नित्य अपने को संयम करने वाला जो पुरुष है... ।"
मैं बड़ा चकित होकर देखता रहा हूं, क्यों धम्मपद के ऊपर चिंतन, स्वाध्याय करने वाले लोग इस नित्य शब्द को चूकते चले गए। यह इतना साफ है, इसमें कुछ कहने की जरूरत नहीं है, बिल्कुल सीधा है।
"नित्य अपने को संयम करने वाला... ।"
ताजा, रोज-रोज, फिर-फिर होशपूर्वक जीने वाला। कल की बासी प्रतिज्ञा नहीं, आज की ताजी प्रज्ञा; आज का होश।
"... जो पुरुष है, उसकी जीत को न देवता, न गंधर्व, न ब्रह्मा और न मार ही अनजीता कर सकते हैं।"
कोई उसकी जीत को अनजीता नहीं कर सकता। जिसकी जीत की बुनियाद होश में रखी गई है, उसकी जीत की बुनियाद को कोई भी कभी उखाड़ नहीं सकता।
हृदय नग्न तो सात पटों के भी आवरण वृथा हैं
वसन व्यर्थ यदि भलीभांति आवृत भीतर का मन है
कितने तुम अपने को ढांको, सात वस्त्रों में ढांक लो, और अगर भीतर नंगापन है तो रहेगा।
वसन व्यर्थ यदि भलीभांति आवृत भीतर का मन है
फिर तुम नग्न भी खड़े हो सकते हो--अगर भीतर का नंगापन ही न रहा--तो भी तुम नग्न नहीं हो।
मुझे ऐसा कहने दोः महावीर नग्न खड़े होकर भी नग्न नहीं हैं, और तुम कितने ही वस्त्रों में अपने को ढांक लो, नग्न ही रहोगे।
"जो महीने-महीने सौ वर्ष तक हजारों रुपयों से यज्ञ करे और यदि परिशुद्ध मन वाले पुरुष को मुहूर्तभर भी पूज ले, तो सौ वर्ष के हवन से वह मुहूर्तभर की पूजा श्रेष्ठ है।"

"जो महीने-महीने सौ वर्ष तक हजारों रुपयों से यज्ञ करे... ।"
बुद्ध यज्ञ की सम्यक दिशा की तरफ इशारा कर रहे हैं। यज्ञ बुद्ध के समय में बड़ा प्रचलित था। अग्नि को जलाओ, आहुतियां डालो, घी जलाओ, अन्न फेंको; न मालूम कितने तरह के यज्ञ प्रचलित थे। हिंसक यज्ञ प्रचलित थे--अश्वमेध करो, गोमेध करो, नरमेध भी यज्ञ होते थे, जिनमें आदमियों को भी चढ़ाओ। भयंकर हिंसा यज्ञ के नाम से चलती थी।
बुद्ध की क्रांतियों में से एक क्रांति यह भी थी कि उन्होंने कहा, अगर यज्ञ ही करना है तो अपने को चढ़ाओ। और अपने को ही चढ़ाना है तो बाहर की अग्नि में चढ़ाने से क्या होगा? खोजो सदगुरु की अग्नि। कहीं कोई पावन जहां अंतर्शिखा जलती हो, वहां झुको, वहां चढ़ा दो अपने को, वहां जलो जाकर। अगर जलना है तो परवाने बनो। खोजो कोई शमा।
"जो महीने-महीने सौ वर्ष तक हजारों रुपयों से यज्ञ करे और यदि परिशुद्ध मन वाले पुरुष को मुहूर्तभर भी पूज ले, तो सौ वर्ष के हवन से वह मुहूर्तभर की पूजा श्रेष्ठ है।"
एक क्षणभर को! मुहूर्त तो क्षण से भी छोटा है--दो क्षणों के बीच में जो खाली जगह है, उसका नाम मुहूर्त--जरा सा है, बड़ा संकीर्ण है। लेकिन मुहूर्त यानी वर्तमान। एक क्षण गया, वह अतीत का हो गया। जो अभी आ रहा है, वह आया नहीं, भविष्य का है। दोनों के बीच में जो है, वही मुहूर्त।
वर्तमान में ही सत्संग हो सकता है सदगुरु से। अतीत के गुरु काम न आएंगे, भविष्य के गुरु काम न आएंगे; जो अभी है, जो यहां है, जो है, वही काम आ सकता है। मुहूर्तभर को भी उसको पूज ले तो सैकड़ों वर्षों की पूजा से श्रेष्ठ है। क्योंकि उस पूजा में तुम झुके, उस पूजा में तुम जले, उस पूजा में तुम गए।
इसको हम कहेंः आत्ममेध यज्ञ। हो चुके थे बहुत नरमेध, अश्वमेध, गोमेध; बुद्ध और महावीर ने आत्ममेध--अपने को मिटा देने का... ।
मिट ही जाओगे। तुम मिटोगे तो ही पूजा हो पाएगी। अगर तुम बने रहे तो पूजा न हो पाएगी। किसी बुद्ध पुरुष के चरण में झुकने का अर्थ ही यह है कि तुम बिल्कुल झुके, तुम गए। एक मुहूर्तभर को भी अगर तुम न हो गए, तो पूजा हो गई।
निचले हर शिखर पर देवल
ऊपर निराकार तुम केवल
बाकी सब मंदिर तो नीची-नीची चोटियों पर हैं। कितनी ही ऊंची मालूम पड़ती हों चोटियां--बद्री हो कि केदार--लेकिन सब देवल नीची-नीची चोटियों पर हैं।
निचले हर शिखर पर देवल
ऊपर निराकार तुम केवल
और जब कभी तुम किसी सत्पुरुष के पास आ जाओगे तो तुम आंख ऊपर उठाते जाओगे, उठाते जाओगे, लेकिन ओर-छोर न पाओगे।
ऊपर निराकार तुम केवल
ऐसे निराकार आकाश के नीचे झुक जाने का नामः आत्ममेध।
ऐसा मुहूर्तभर को हो जाए, बस एक बार हो जाए, तो तुम फिर लौट न सकोगे।
क्योंकि जिसने उस झुकने का आनंद जान लिया, वह फिर उठेगा नहीं।
नहीं कि शरीर न उठेगा; शरीर तो उठेगा, चलेगा, काम करेगा, लेकिन भीतर कुछ झुका ही रहेगा--झुका ही रहेगा; फिर भीतर कोई कभी न उठेगा।
पूजा का एक क्षण, एक मुहूर्त शाश्वत हो जाता है।
एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।